वर्तमान वैज्ञानिक अनुसंधान

संपादक
सुरेश कुमार जिन्दल
फूलदीप कुमार

रक्षा वैज्ञानिक सूचना तथा प्रलेखन केंद्र (डेसीडॉक)
रक्षा अनुसंधान तथा विकास संगठन (डी आर डी ओ)
रक्षा मंत्रालय, मेटकॉफ हाउस, दिल्ली

वर्तमान वैज्ञानिक अनुसंधान
सुरेश कुमार जिन्दल
फूलदीप कुमार

वर्तमान वैज्ञानिक अनुसंधान

वर्तमान वैज्ञानिक अनुसंधान

सम्पादक

सुरेश कुमार जिंदल

फूलदीप कुमार

प्रकाशक

रक्षा मंत्रालय
रक्षा अनुसंधान तथा विकास संगठन (डी आर डी ओ)
रक्षा वैज्ञानिक सूचना तथा प्रलेखन केंद्र [डेसीडॉक]
मेटकॉफ हाउस, दिल्ली

डी आर डी ओ विशेष प्रकाशन श्रृंखला
वर्तमान वैज्ञानिक अनुसंधान
द्वारा रक्षा वैज्ञानिक सूचना तथा प्रलेखन केंद्र (डेसीडॉक), दिल्ली

श्रृंखला सम्पादक

सम्पादक
सुरेश कुमार जिंदल
फूलदीप कुमार

मुद्रण
एस के गुप्ता
हंस कुमार

सम्पादकीय सहायक
अशोक कुमार

विपणन
आर पी सिंह

आई एस बी एन 978-81-86514-48-1

© 2013 सर्वाधिकार सुरक्षित, डेसीडॉक, मेटकॉफ हाउस, दिल्ली

इस पुस्तक के सर्वाधिकार सुरक्षित हैं। भारतीय कॉपीराइट अधिनियम 1957 में स्वीकृत प्रावधानों के अतिरिक्त प्रकाशक की पूर्व लिखित अनुमति के बिना इसके किसी भी अंश को फोटोकॉपी एवं रिकार्डिंग सहित इलैक्ट्रॉनिक अथवा मशीनी, किसी भी माध्यम से, अथवा ज्ञान के संग्रहण एवं पुनः प्रयोग की प्रणाली द्वारा किसी भी रूप में, आंशिक या पूर्ण रूप से, पुनरूत्पादित, संचारित तथा प्रसारित नहीं किया जा सकता है।

इस पुस्तक में प्रकाशित रचनाओं की मौलिकता का उत्तरदायित्व पूर्णतः संबंधित लेखकों का हैं। आलेखों में व्यक्त विचार एवं दृष्टिकोण लेखकों की निजी अभिव्यक्ति हैं। डेसीडॉक अथवा संपादक मंडल का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

रक्षा वैज्ञानिक सूचना तथा प्रलेखन केंद्र (डेसीडॉक), डी आर डी ओ, मेटकॉफ हाउस, दिल्ली–110 054 द्वारा अभिकल्पित एवं प्रकाशित।

भूमिका

विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में विश्व की प्राचीनकाल की उपलब्धियों से लेकर इस शताब्दी में प्राप्त महान सफलताओं की एक लम्बी और अनूठी परंपरा रही है। प्राचीन विश्व में विज्ञान, गणित, खगोल शास्त्र और दर्शन शास्त्र का अद्वितीय विकास हुआ। विश्व कणाद, कपिल, भारद्वाज, नागार्जुन, चरक, सुश्रुत, वराहमिहिर, आर्यभट, गैलीलियो, आर्किमिडीज, अरस्तू, और भास्कराचार्य जैसे वैज्ञानिकों की जन्मभूमि और कर्मभूमि रहा है। इन वैज्ञानिकों ने गणित, ज्योतिष, चिकित्सा शास्त्र, रसायन शास्त्र, खगोल शास्त्र, दर्शन शास्त्र, इत्यादि क्षेत्रों में अभूतपूर्व योगदान दिया। कालांतर में विश्व भर में विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी के माध्यम से आर्थिक और सामाजिक परिवर्तन आया।

परम्परागत कुशलताओं को परिष्कृत करके तर्कसंगत एवं स्पर्द्धात्मक बनाने और विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी के अग्र क्षेत्रों में अग्रिम क्षमताओं का विकास करने के प्रयास होते रहे।

विश्व में विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में उन्नति लाने वाले दृष्टिवेभाओं को विश्वास था कि विश्व को आधुनिक, औद्योगिक समाज बनाने में विज्ञान की महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती है। अनुभव और परिणाम से यह सिद्ध हो गया है कि उनका विश्वास बिल्कुल ठीक था।

आज विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी एवं नई प्रक्रियाएं और भी प्रासंगिक प्रतीत होती हैं। वैज्ञानिक ज्ञान और अनुभव, प्रौद्योगिकी, नई प्रक्रियाएं, उच्च प्रौद्योगिकीय औद्योगिक संरचना और कुशल कार्यबल इस नए युग की संपत्ति हैं। आज के विश्व में विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी आर्थिक प्रगति और विकास के महत्वपूर्ण वाहक हैं। भारतीय विज्ञान के लिए वर्तमान स्थिति अति महत्वपूर्ण है और यदि सकारात्मक बड़े तथा ठोस कदम इस क्षेत्र में उठाए जाएं तो भविष्य में देश स्थायी और तीव्र प्रगति कर सकता है।

आज के युग में अनेक खोज एवं अन्वेषण कार्य चल रहे हैं जिनसे मानव को प्रकृति को समझने में मदद मिल रही है तथा इस ज्ञान के उपयोग से नित नये संसाधनों की रचना हो रही है। इन संसाधनों से मानवीय कार्य को दक्षता एवं सुविधाजनक रूप से पूर्ण करने में मदद मिल रही है।

प्रस्तुत पुस्तक **वर्तमान वैज्ञानिक अनुसंधान** जिसमें विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों जैसे कि कृषि विज्ञान, चिकित्सा, भौतिकी, रसायनिकी, जीव विज्ञान, इलैक्ट्रॉनिकी, तथा रक्षा प्रौद्योगिकी के आलेखों को संकलित किया गया है। ये आलेख डी आर डी ओ द्वारा 05–07 दिसम्बर 2013 के दौरान विश्व की प्रगति में विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी का योगदान नामक विषय पर आयोजित अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन हेतु प्राप्त आलेखों से चयनित किए गए हैं।

आशा है कि उच्च कोटि के वैज्ञानिकों एवं अकादमीगणों के इन आलेखों से इन विषयों पर नवीन जानकारी उभर कर आएगी। यह पुस्तक राजभाषा हिन्दी में गहन वैज्ञानिक विषयों पर जानकारी उपलब्ध कराने की वाहक सिद्ध होगी।

सुरेश कुमार जिंदल

फूलदीप कुमार

अनुक्रमणिका

क्र.सं.	आलेख का शीर्षक	लेखक का नाम	पृष्ठ सं0
01.	अभिघटन–एक मृदा स्थायिकर्ता के रूप में	विपुल ठाकुर एवं धीरज मंडलोई	01
02.	सतत् वैश्विक–विकास के सन्दर्भ में जैव प्रौद्योगिकी का महत्व	शौकत अहमद वाजा, दिनेश कुमार सिंह, धर्मेन्द्र कुमार, तथा प्रदीप सिंह	08
03.	सुरक्षित निहित प्रक्रियाओं के लिए अभिनव दृष्टिकोण	जी एस ग्रोवर	12
04.	पश्मीना ऊन की प्रदूषण रहित पूर्व परिसज्जा, विरंजन, रंजन एवं परिसज्जा पद्धतियाँः संभावनायें	प्रियदर्शी जारूहार	17
05.	रबी फसलों में उन्नत कृषि यंत्रों का उपयोग एवं महत्त्व	यू सी दुबे, बी के गुमास्ता, आर एस यादव, तथा आर डी सोनी	21
06.	दैहिक विभेदित कोशिकाओं का नवीनीकरण	ओ पी जांगिड, सुनिता गौतम, निधि उडसरिया, अंबिका यादव, गोविन्द गुप्ता, जोनी मिड्ढा, तथा मिथिलेश शर्मा	28
07.	क्या शैक हमारी प्राचीन इमारतों को हानि पहुँचा रहे हैं?	विन्ध्येश्वरी उपाध्याय, दलीप कुमार उप्रेती, तथा सुमन त्रिवेदी	35
08.	फलों एवं सब्जियों का वैज्ञानिक भण्डारण	प्रदीप कुमार सिंह, सर्वेश सिंह, दिनेश कुमार सिंह, तथा सुमति नारायण	38
09.	स्वास्थ्य प्रबंधन के लिए जिह्वानाड़ी परीक्षण पर आधारित सूचीभेदन का वैदिक विज्ञान	रामगोपाल एवं देवाशीष बक्शी	41
10.	वायु–प्रदूषण एवं जैव क्षरण अध्ययन के संदर्भ में उत्तर प्रदेश की शैक विविधता	अपूर्वा श्रीवास्तव, संजीव नायक, तथा दलीप कुमार उप्रेती	51
11.	इलैक्ट्रॉनिक अपशिष्ट–वर्तमान परिदृश्य में	विधि व्यास एवं धीरज मंडलोई	57
12.	हिमालयी औषधीय पौधों के संरक्षण एवं औषधीय उत्पादों के विकास में रक्षा जैव ऊर्जा अनुसंधान संस्थान का योगदान	डॉ हेमन्त कुमार पाण्डेय एवं एम सी आर्या जकवान अहम्मद	61
13.	नियंत्रक आधारित खाद व बीज बुवाई यंत्र का विकास	करन सिंह, कमल नयन अग्रवाल, अनुराग कुमार दुबे, तथा महा प्रताप चंद्र	70
14.	मधुमेह रोग मे सेवन करने वाले आयुर्वेदिक उत्पादों का आकलन	मो. शाहिद खान एवं के प्रसन्ना	75

15.	सिन्ड्रोम एक्स (Syndrome X) के रोगियों में सिन्ड्रोम जेड (Siyndorme Z) की व्यापकता के आकलन हेतु चिकित्सालय आधारित प्रारम्भिक अध्ययन	अभिषेक दूबे एवं सूर्यकान्त	78
16.	गुणवत्ता को बनाए रखने के नियमित निगरानी आवश्यक है	मंजुला भाटी	80
17.	ग्रामीण क्षेत्रों के लिये प्रौद्योगिकी का विकास (ऊर्जा के वैकल्पिक स्रोत–बायोगैस के सन्दर्भ में)	डॉ प्रेम प्रकाश राजपूत	82
18.	डाइएटम एक प्राकृतिक संसाधनः विज्ञान एवं तकनीकी	रचना नौटियाल	86
19.	उपग्रह स्थित नीतभारों का संरचना विश्लेषण	पुरुषोत्तम गुप्ता	89
20.	विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी के युग में औद्योगिक समाज की भूमिका	सरताज अहमद, मो. आमिर आबिद गाजी, तथा मशरुल अहमद	99
21.	लखनऊ की किशोरियों द्वारा ग्रहण किए जाने वाले पोषक पदार्थों की मात्रा तथा उनका पोषण स्तर	स्वाती दीक्षित, जेवी सिंह, नीलम सिंह, सूर्यकान्त, तथा जीजी अग्रवाल	101
22.	उंगली के निशान पर आधारित जीव सांख्यिकी (बॉयोमैट्रिक) सुरक्षा तंत्र	नीरज कुमार सिंह	107
23.	भारतीय कृषि में जैव प्रौद्योगिकी	अनुराधा तिर्की एवं सुशीला कुजुर	116
24.	अंतरिक्ष के क्षेत्र में भारत की प्रगति	शशि किरण कुजूर एवं भूमि राज पटेल	119
25.	प्रौद्योगिकी के विकासात्मक पहलू भारत के संदर्भ में	मीना गुप्ता एवं अरुणा कुजूर	121
26.	जखराना नस्ल की बकरियों के उत्पादन एवं जनन गुणों में आनुवांशिक सुधार	साकेत भूषण एवं गोपाल दास	124
27.	भारतीय सैनिकों में कम स्तर के मस्तिष्क कैंसर का एफ डोपा और एफ डी जी द्वारा तुलनात्मक मूल्यांकन	सचिन कटारिया	128
28.	सामाजिक कौशल और खुशी में संबंध	संदीप पांचाल एवं ह ल जोशी	130
29.	रसायनिक रूप से परिवर्तित स्टार्च की खाद्य पदार्थों की गुणवत्ता बढ़ाने में भूमिका एवं उपयोगिता	देव कुमार यादव एवं प्रकाश ई पत्की	134
30.	वर्षा आधारित चरागाहों के विभिन्न प्रारूपों का बकरी पालन हेतु मूल्यांकन	प्रभात त्रिपाठी, तापस कुमार दत्ता, मनोज कुमार त्रिपाठी, उमेश बाबू चौधरी, तथा रवीन्द्र कुमार	136
31.	सूचना और प्रौद्योगिकी क्रांति द्वारा मानव जीवन में लाए गए परिवर्तन	दिव्या मदान, सृष्टि मदान, तथा फूलदीप कुमार	139
32.	हरित विपणनः सतत् विकास का साधन	पूनम हुड्डा एवं सुनील कुमार शर्मा	141

33.	शीतोष्ण फल आनुवांशिक संसाधनों के संरक्षण हेतु जैव प्रौद्योगिक दृष्टिकोण	संध्या गुप्ता	144
34.	सब्जियों में एकीकृत कीट प्रबन्धन	अखिलेश कुमार, मृगेन्द्र सिंह, श्रीमती अल्पना शर्मा, तथा एस सत्पथी	146
35.	खेती के सुनहरे भविष्य हेतू औषधीय पौधों का संरक्षण करता राष्ट्रीय जीन बैंक	वीना गुप्ता	155
36.	उच्च तुंगता स्थलों पर सामान्यतः पाई जाने वाली जठर आंत्र संबंधित समस्याएं एवं उनके निवारण हेतु विभिन्न प्रोद्यौगिकीय विकास में इनमास का योगदान	बृज गौरव शर्मा एवं असीम भटनागर	159
37.	राकेट के स्थैतिक परीक्षण में मोटर का सतह तापमान मापन	कैलास राऊत, गोरख काची, जयश्री श्रीनाध, रेणु गिल, दत्तात्रेय एरंडे, प्रकाश क्षीरसागर, प्रवीण देशमुख, हिमांशु शेखर, तथा विनायक रासने	163
38.	अवरक्त तापमापी	राजीव कुमार	166
39.	वनस्पतियों के वैदिक तथा ज्योतिष ज्ञान का वैज्ञानिक प्रतिलेखन, महत्व और वर्तमान में उपयोगिता	दीपक व्यास, प्रीति व्यास, तथा प्रवीण पाण्डेय	168
40.	अंगूर निर्यात में विज्ञान तथा तकनीकी हस्तक्षेप	अजय कुमार शर्मा, कौशिक बनर्जी, अजय कुमार उपाध्याय, तथा पा गु अड़सूले	178
41.	भारत चीन संबंध तथा राष्ट्रीय सुरक्षा की चुनौतियां	सत्यव्रत	182
42.	शतरंज का प्रबंधन में प्रयोग	मनमोहन गोयल	186
43.	सिट्रस के मूलवृन्तों के बीच डी एन ए चिन्हकों द्वारा अन्तर करने हेतु तकनीक	अम्बिका बी गायकवाड, सुनील अर्चक, तथा दीक्षांत गौतम	189
44.	रक्षा अनुसंधान तथा विकास संगठन: राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए तत्पर	ललिता दासगुप्ता	192
45.	वायुयान इंजन के अवयवों का आघात–रोधी परीक्षण मे नई जांच तकनीक का लाभ तथा उसका परिणाम विश्लेषण	अनुराधा नायक, एस रामचंद्र, डी एम पुरुषोत्तम, आर बंगेर, तथा श्वेता वर्मा	194
46.	उपग्रह संचार प्रौद्योगिकी का आपातकालीन राहत और आपदा प्रबंधन में योगदान	संजय कुमार	200
47.	सैन्य शक्ति वृद्धि का नया विकल्प–विद्युत चुम्बकीय बंदूक	उपिका मित्तल	203

अभिघटन–एक मृदा स्थायिकर्ता के रूप में

विपुल ठाकुर एवं धीरज मंडलोई
देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, खण्डवा रोड, इंदौर, मध्य प्रदेश

मृदा स्थायीकरण का परिचय

भूमि पर आधारित संरचना उसके आधार जितनी ही मजबूत होती है। इसी कारण निर्माण परियोजना की सफलता को प्रभावित करने में मृदा एक समालोचनात्मक तत्व होती है। मृदा या तो आधार का हिस्सा हेाती है, या निर्माण विद्या में एक प्राकृत सामग्री के रूप में प्रयोग में लायी जाती है। मृदा स्थायीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जो न्यस्त निर्माण उद्देश्य के लिए मृदा को अधिकतम उपयुक्त बनाती है। प्राकृत सामग्री ईधन और आधार संरचना की सार्वभौम मांग बढ़ने से अभी–भी मृदा स्थायीकरण दोबारा एक लोकप्रिय प्रवृत्ति बन गयी है। तथापि, इस समय मृदा स्थायीकरण बेहतर अनुसंधान, सामग्री और उपकरणों से लाभान्वित हो रहा है। मृदा प्रकृति द्वारा प्रचुर मात्रा में दी गयी एक निर्माण सामग्री है। लगभग सभी निर्माण मृदा के साथ या उसके ऊपर निर्मित किये जाते हैं। जब प्रतिकूल निर्माण परिस्थितियों से सामना होता है तो संविदाकार के पास निम्नलिखित चार विकल्प होते है :

1. नए निर्माण स्थान की तलाश करना।
2. संरचना का पुनः रूपान्तरण करना जिसका निर्माण बेकार मृदा पर किया जा सके।
3. बेकार मृदा को हटाकर उसके स्थान पर अच्छी मृदा को लाना।
4. स्थान मृदा के आभियान्त्रिकी गुणों को सुधारना।

साधारणतया प्रथम और द्वितीय विकल्प आजकल अव्यवहारिक हो गये हैं, जबकि पहले तृतीय विकल्प ही प्रायः सबसे अधिक प्रयोग में लायी जाने वाली रीति थी। तथापि, तकनीक में सुधार से और परिवहण की बढ़ती कीमत के कारण आजकल प्रायः चतुर्थ विकल्प ही प्रयोग में लाया जाता है और भविष्य में इसका प्रयोग नाटकीय रूप से बढ़ने की सम्भावना है। स्वस्थित्यां मृदा आभियान्त्रिक गुणों को सुधारने से निर्दिष्ट है या तो ''मृदा आपरिवर्तन'' या ''मृदा स्थायीकरण''। आपरिवर्तन पद मृदा के गुणों में छोटे बदलाव को ध्वनित करता है। जबकि स्थायीकरण से तात्पर्य है कि मृदा के आभियान्त्रिकी गुणों में इतना बदलाव किया जाये कि क्षेत्र निर्माण सम्भव हो सके।

मृदा स्थायीकरण की प्राथमिक रीतियां

1. रसायनिक या संयोजी
2. यान्त्रिक

''यान्त्रिक'' मृदा स्थायीकरण की सबसे सामान्य रीति है मृदा निबिडता जबकि ''रसायनिक'' या ''संयोंजी रीति'' में वज्रचूर्ण, चूर्णक, जतुक्य अथवा अन्य कारकों को मृदा में मिश्रित किया जाता है। रसायनिक मृदा स्थायीकरण के समय केवल दो आधार–परूप संयोजी ही प्रयोग में लाये जाते हैं : यान्त्रिक संयोजी और रसायनिक संयोजी। यान्त्रिक संयोजी जैसे मृदा वज्रचूर्ण जो मृदा में ऐसी सामग्री मिलाकर, मृदा को यंत्रवत् बदल देता है, जिसमें ऐसे आभियान्त्रिक लक्षण होते हैं जो वर्तमान मृदा की

भार सहने की क्षमता को बढा सकें। रसायनिक संयोजी जैसे चूर्णक, मृदा को ही रसायनतः बदल देता है, जिससे मृदा की भार सहने की क्षमता सुधर जाती है।

प्रलेख का उद्देश्य

इस लेख का उद्देश्य मृदा स्थायीकरण की आवश्यकता और उसके मार्ग का उल्लेख करता है। यह अन्य संरचना के निर्माण और संधारण में मृदा स्थायीकरण के व्यवहार में लायी जाने वाली प्रक्रिया का साधारण अति दृश्य है। यह मृदा स्थायीकरण विधा के सहजगुण का भी संक्षिप्त वर्णन करता है।

यह कब और कहां प्रयोग होता है ?

परम्परागत रूप से स्थायी उप–प्रक्रमों, उप–आधारों और/या आधरों को प्रवृत सुक्रमिक समुहों के प्रयोग से निर्मित किया जाता है, जिससे निर्मित स्तरों की भार सहने की क्षमता का अनुमान लगाना बहुत आसान हो जाता है। प्रवर सामग्री का प्रयोग करने से अभियन्ता यह जान जाता है कि आधार, रूपांकन भार को संभालने में सक्षम होगा।

क्रम–स्थापन मृदा का एक विशेष लक्षण है, जिसे समझना आवश्यक है। मृदा को या तो ''सुक्रमिक'' या ''समानतः क्रमिक'' {इसे ''हीन क्रमिक'' भी निर्दिष्ट किया जाता है} यह सामग्री में लव के आधार का निर्देशांकन है। समानतः क्रमिक सामग्री स्थूलरूपेण समान आकार के वैयक्तिक लवों से बनी होती है। सुक्रमिक सामग्री विभिन्न आकार के लवों की एक इष्टतम परिक्षेत्र से बनी होती है।

मृदा स्थायीकरण का ध्येय ठोस और स्थायी आधार प्रदान करना होता है। ''घनत्व'' किसी सामग्री की उपयुक्तता का विश्वसनीय माप है। कुछ शून्य उपस्थित है। शून्य नमी को रोकता है और सामग्री को कम स्थाई बनाता है, क्योंकि वह बदलते हुए दबाव, तापमान और आर्द्रता में इसे बदलने देता है।

समानतः क्रमिक सामग्री, अपने समान आकार के कारण, सुक्रमिक सामग्री से बहुत कम घनी होती है। समानतः क्रमिक सामग्री में प्रति परिमा शून्य का अधिक अनुपात इसे निर्माण उद्देश्य के लिए अनुपयुक्त बनाता है। सुक्रमिक सामग्री में छोटे–छोटे लव के बीच के शून्य में भर बढ़कर सामग्री को अधिक स्थायित्व प्रदान करते है इसीलिए निर्माण में इसकी बहुत अधिक मांग है।

मृदा स्थायीकरण को परिभाषित करना

सारतः मृदा स्थायीकरण द्वारा अभियन्ता कम सामग्री द्वारा बहुत बढ़े भार को लम्बे जीवन चक्र के लिए विभाजित कर सकता है। मृदा स्थायीकरण के अनेक लाभ हैंः

- स्थायीकृत मृदा, परियोजना के लिए कार्यवाहक मंच की तरह काम करती है।
- स्थायीकरण मृदा को जल रोधी बनाता है।
- स्थायीकरण मृदा–बल को सुधारता है।
- स्थायीकरण मृदा की कार्य–क्षमता को बढ़ाता है।
- स्थायीकरण पर्यावरिक धूलि को कम करता है।
- स्थायीकरण सीमान्त सामग्री की क्रमोन्नति करता है।
- स्थायीकरण टिकाऊपन को बढाता है।
- स्थायीकरण आर्द्र मृदा को सुखाता है।
- स्थायीकरण प्रतिशतता सामग्री का संरक्षण करता है।
- स्थायीकरण लागत को कम करता है।
- स्थायीकरण उर्जा का संरक्षण करता है।

प्रयोग

मृदा स्थायीकरण निर्माण उद्योग के कई शकलों में प्रयोग किया जाता है। सड़कों, भवन, स्थानों, हवाई पट्टियों, वाहनों को खडा करने के स्थानों, भू–भरण और मृदा प्रत्युपाय सभी में मृदा स्थायीकरण को किसी न किसी रूप में प्रयोग में लाया जाता है। इसे कृषि, खनन, जलमार्ग प्रबन्ध में भी प्रयोग किया जाता है।

रसायन मृदा स्थायीकरण

इस रीति में विद्यमान मृदा में रसायन या अन्य सामग्री मिलाकर इसके आभियान्त्रिकी गुणों को बढ़ाया जा सकता है। यह तकनीक लागत प्रभावी है। संयोजी यान्त्रिक भी हो सकते है, और रसायनिक भी, अभिप्राय यह है कि संयोजी प्रतिक्रिया के साथ या मृदा के रसायनिक गुणों को बदलकर आभियान्त्रिकी गुणों को सुधार देते हैं। इस तकनीक को समुचित ढंग से कार्यान्वित करने के लिए अभियन्ता के पास यह होना चाहिए :

- अपेक्षित नतीजों की स्पष्ट कल्पना।
- स्थान की मृदा के प्रकार और लक्षणों की समझ।
- संयोजियों के प्रयोग की समझ और उनकी विभिन्न प्रकार की मृदा और अन्य संयोजियों के साथ प्रक्रिया और वह आस–पास के वातावरण में कैसे अन्तः क्रिया करते हैं।
- संयोजी की और उसके समाविश्ट के साधन की समझ।
- परिणामी आभियान्त्रिक मृदा कैसे पालन करेगी, इसकी समझ होना।

मृदा के साथ संयोजियों को मिलाना विभिन्न प्रकार के यंत्रों से विशिष्ट रूप से किया जाता है। जो रीति अपनाई जाती है, वह प्राय तीन कारकों पर आधारित होती है :–

कौन से यंत्र उपलब्ध हैं, स्थान {शहरी या ग्रामीय}, और जो संयोजी प्रयोग में लाये जा रहे हैं, जहां तक सम्भव हो मिश्रण एकसम होना चाहिए।

सबसे सस्ती और समय का सद्पयोग करने की रीति है परिभ्रामी मिश्रक का प्रयोग। यह एक बड़ा यंत्र होता है जोकि संयोजी और मृदा को समाविष्ट करने के लिए एक बड़े मिश्रण वेश्म में डाल देता है। जिसका परिभ्रम रूपांक उसे तोड़कर मिलाता है। यह मृदा को विसर्जित कर इष्टतम समरूप प्रक्रम में लाने के साथ–साथ संयोजियों और पानी का एकसम प्रवेश कराने की क्षमता रखता है।

पगमिल {Pugmill} सारतः वज्रचूर्ण मिश्रक की तरह का एक बड़ा मिश्रण वेश्म होता है। मापित पूर्ववर्गित समूह, संयोजी और प्राय पानी पगमिल में मिलाये जाते हैं और फिर उसे एकसम स्थूलता में प्रयोग किया जाता है। यह उत्पाद उच्च श्रेणी का स्थायीकरण होता है परन्तु इसकी कीमत बहुत अधिक और उत्पादन की गति बहुत मंद होती है।

फलक मिश्रण {Blade Mixing} वहित्र श्रेणी बन्धक द्वारा किया जाता है। सारतः संयोजी को शेषपंक्ति पर रख दिया जाता है और श्रेणीबन्धक के फलक संयोजी और मृदा को कई बार ऊपर नीचे फेंककर बेतरतीव ढंग से मिलाते हैं। इस तकनीक में मिलाने की प्रतिशतता और गहराई को एकसमतः नियन्त्रित करना बहुत कठिन होता है।

संयोजी

साधारणतः संयोजी को जोड़ने वाले की तरह प्रयोग किया जा सकता है, यह आर्द्रता के प्रभाव को बदल देता है, मृदा के घनत्व को बढ़ा देता है, या मृदा में उपस्थित पदार्थ के हानिकर प्रभाव को निश्फल कर देता है।

निम्नलिखित कुछ संयोजी है और उनका प्रयोग कैसे होता है, बताया गया है:

आम्भस वज्रचूर्ण

यह एक यान्त्रिक संयोजी है जिसे मृदा आपरिवर्तन {मृदा की गुणवता सुधारने के लिए} या मृदा स्थायीकरण {मृदा को कठोर वज्रचूर्ण समूह में रूपान्तर करना} के लिए प्रयोग में लाया जा सकता है। करीब–करीब सभी प्रकार की मृदा वज्रचूर्ण स्थायीकरण से प्राप्त की गई शक्ति से लाभान्वित हो सकती है।

जीव चूर्णक/जलीयित चूर्णक

चूर्णक मध्यम, साधारणतया उत्तम और सूक्ष्मकणात्मक मृन्मय मृदा से अच्छी तरह प्रक्रिया करता है। मृन्मय मृदा में चूर्णक स्थायीकरण का मुख्य लाभ यह है कि यह मृदा की अभिघटिति को कम करता है : मृदा में पानी की मात्रा कम करता है, जिससे यह और कठोर हो जाती है। यह मृदा की शक्ति और कार्यक्षमता को भी बढ़ाता है और उसके फूलने की योग्यता को कम करता है। तीन से सात दिन का समय उपचार के लिए दिया जाता है जिससे चूर्णक मृदा के साथ प्रतिक्रिया कर सके और इन दिनों समय–समय पर स्थायीकृत मृदा के तल को गीला करते रहना चाहिए।

उड्डयन भस्म {Fly ash}

वज्रचूर्ण समान, कठोर पुंज उत्पन्न करने के लिए उड्डयन भस्म को चूर्णक और पानी के साथ मिलाकर कणात्मक सामग्री को कुछ सूक्ष्मक के साथ स्थायी होने देना चाहिए। स्थायीकरण प्रक्रिया में इसका भाग एक प्रोजोलन {Pozzolan} और/या एक पूरक उत्पाद की तरह कार्य करता है जो वायु शून्य को कम करें।

चूर्णातु निरेय

मृदा की आर्द्रता में चूर्णातु निरेय की विद्यमानता मृदा के भयान तापमान को कम करती है। इसी कारण शीत जलवायु प्रयोग के लिए चूर्णातु निरेय एक प्रमाणित स्थायीकारी संयोजी है। यह एक बन्धक की तरह भी भली भाँति काम करता है, जिससे मृदा आसानी से संघन हो जाती है और धूलि कम हो जाती है।

जतुकी

जतुकी मृदा को प्रबल और पानी एवं तुशार संगत बनाती है। जतुकी का प्रयोग निर्माण मे मौसम–सम्बंधी देरीयों में कमी ला सकता है और निबिडता को आसान एवं अधिक संगत बनाता है।

यान्त्रिक मृदा स्थायीकरण

यह या तो निबिडता या तन्तुमय और अन्य नॉन बायोडीग्रेडेबल {non-biodegradable} को मृदा के पुनर्बलन के लिए परिचय कराने की ओर संकेत करता है। यह प्रथा मृदा का रसायनिक बदलाव नही चाहती यद्यपि आपेक्षिक स्थायीकरण प्राप्त करने के लिए दोनों यान्त्रिक और रसायनिक साधन साधारणतया प्रयोग में लाये जाते है। इसे प्राप्त करने की अनेक रीतियां हैं :

निबिडता

निबिडता विशिष्ट रूप से मृदा घनन को बढ़ाने के लिए भारी भारण प्रयोजन में लाकर ऊपर से दबाव डालती है। इस उद्देश्य के लिए प्रायः यंत्रों का प्रयोग होता है :, बडे मृदा निबिडता यंत्र, आवेपी वज्रायस भेरी की मदद से बडी निपुणता से मृदा पर दबाव डालकर मृदा की घनता को आभियान्त्रिकी आपेक्षाओं के अनुसार बढ़ा देते हैं।

मृदा पुर्नबलन

भू–वान और आभियान्त्रित अभिघटन के जालों को इस प्रकार रूपांकित किया गया है कि वह मृदा को पकड़कर उसके अपक्षरण, आर्द्रता अवस्था और मृदा की अतिवेध्यता को नियन्त्रित कर सके।

बड़े समूह जैसे कर्कर, शिला और गण्डाश्म को प्रायः वहीं सेयायुक्त किया जाता है जहां अतिरिक्त पुंज और अनाम्यता, अनभीष्ट मृदा प्रव्रजन का निवारण कर सके या भार–सहन गुणों से सुधार सकें।

अभिघटन का मृदा स्थायीकरण के लिए प्रयोग

परिचय

- कभी–कभी बहुत अधिक गहराई में भी मृदा की स्थिति बहुत बेकार होती है और वहां पर गहरी नींव बनाना भी व्यावहारिक नही होता।
- ऐसी परिस्थितियों में मृदा स्थायीकरण और पुनर्बलन तकनीकों की विभिन्न रीतियों को उपयोग में लाया जाता है।
- उद्देश्य यह होता है कि कार्य–स्थल पर विशिष्टता लायी जाये और मृदा को भार सहने योग्य बनाया जाये और कल्पन–शक्ति को बढ़ाया जाये जिससे मृदा की संपीडयता कम हो जाए।
- अथापि, जैसा कि पर्यावरण चिन्ता इन दिनों एक महत्त्वपूर्ण विषय है, दक्ष अपवहन बहुत महत्त्वपूर्ण है और अभिघटन भी मृदा स्थायीकरण में प्रयोग किया जा सकता है।

साहित्य समीक्षा

यह जानने के लिए विभिन्न प्रकार के परीक्षण संचालित किये गये कि क्या अभिघटन में सम्भावी मृदा स्थायीकारक बनने की सम्भाव्यता है :

- सी बी आर {California Bearing Ratio} परीक्षण
- कल्पन–शक्ति परीक्षण
- समेकन परीक्षण
- फुल्लन परीक्षण
- संकोचन सीमा
- शुष्कीकरण से दरारें
- आम्भस संवाहिता

सी बी आर {California Bearing Ratio} परीक्षण

- सी बी आर परीक्षण के परिणामों में यह सम्मिलित किया गया कि तन्तु मात्रा में लघु वर्धन से सी बी आर मान वर्धित किया जा सकता है और इस प्रकार मृदु मृत्तिका के गुणों में सुधार हो सकता है।
- जीर्णक मृदा के सी बी आर मान पर वज्रचूर्ण समिश्रण और पॉलीप्रोपलीन {Polypropylene} तन्तु के प्रभाव का परीक्षण करने के लिए जीर्णक मृदा पर देशना गुण परीक्षण संचालित किये गये हैं।
- परीक्षणों में जल मात्रा, तरल सीमा, अभिघटन सीमा, प्रांगारिक अन्त वस्तु, आपेक्षिक भार और तन्तु मात्रा सम्मिलित है।
- न्यादर्श की ताकत में बढ़ोतरी का अनुसंसधान करने के लिए स्थायीकृत जीर्णक मृदा {जीर्णक वज्रचूर्ण और पॉलोप्रोपलीन तन्तु का मिश्रण} पर सी बी आर परीक्षण किये गये।

कल्पन–शक्ति परीक्षण

- मृदा यान्त्रिकी में कल्पन–शक्ति यह वर्णन करती है कि मृदा कल्पन प्रत्याबल में कितनी विशालता सहन कर सकती है।

- मृदा का कल्पन प्रतिरोध लव के संघर्षण और अन्तः पाशन और सम्भवतः लव संकुचन के वज्रण या बंधन का परिणाम है।
- अन्तः पाशन के कारण लव {Particulate} सामग्री कल्पन आयास के अधीन होने के कारण परिमा में विस्तृत व संकुचित हो सकती है।
- यह परीक्षण अभिघटित देशना और निरर्थक पुरूशाज सामग्री के अननुविद्ध मृन्मय मृदा पर कल्पन ताकत के प्रभाव का अनुसंधान करने के लिए किया गया।
- पुनर्बलित और अपुनर्बलित न्यादर्श के कल्पन शक्ति प्राचल को प्रत्यक्ष कल्पन प्रयोग के विषय में अनुसंधान करने के लिए मृन्मय मृदा प्रयोग विभिन्न अभिघटित देशना के साथ किया गया और निरर्थक सामग्री की विभिन्न प्रतिशतता के साथ मिश्रित किया गया।

समेकन परीक्षण

- समेकन एक ऐसी प्रक्रिया है, जिससे मृदा परिमा में न्यून हो जाती है।
- समेकन निशदन, फुल्लन और आम्भस संवाहिता पर समसम्भाविक तन्तु समावेश के प्रभाव का निर्धारण करने के लिए ए एस टी एम डी 2435–96 के अनुरूप शूनमान {Oedometer} परीक्षण किये गये।
- ऐसा तब पाया जाता है जब मृदा पर प्रत्याबल प्रयोग किया जाता है जिस कारण मृदा लव अधिक कसकर इक्टठे होकर इसकी प्रकाय परिमा को प्रह्रासित कर देता है। जब यह उस मृदा में घटता है जो जल से अनुविद्ध होती है तो जल निश्पीडन से मृदा से बाहर आ जाता है।

फुल्लन परीक्षण

- फुल्लन मृदा, या मंहगी मृदा उसे कहते हैं जो आर्द्रता के कारण परिमा में फूल जाती है।
- फुल्लन मृदा में विशष रूप से मृद खनिज होते हैं जिस कारण से जल को आकर्षित करती है और उसका प्रचूशण करती है।
- जब जल का मंहगी मृदा में प्रवेशन करते हैं तो जल व्यूहाणु मृदा के विभिन्न पट्टों के बीच रिक्त स्थानों में भर जाते हैं।

संकोचन सीमा

- संकोचन सीमा पानी की मात्रा है, जहां से आर्द्रता के और भी नुकसान होने से परिमा का प्रह्रासन नहीं होता।
- संकोचन सीमा में बढ़ोतरी का तात्पर्य है कि लम्बें तन्तुओं का मृदा से अधिक भूतल संस्पर्श, शुष्कीकरण से होने वाले परिमा बदलाव का प्रतिरोध करता हैं।
- यह कहा जा सकता है समसम्भाविक तन्तु समावेश मृदा के आनन–बल को बहुत प्रभावशाली ढंग से सुद्धत करता है और शुष्कीकरण से संकोचन का प्रतिरोध करता है।

शुष्कीकरण से दरारें

- यह साधारण ज्ञान है कि शुष्कीकरण से मृन्मय मृदा में दरार पड़ सकती है। समसम्भाविक तन्तु समावेश का, ''शुष्कीकरण से मृदा में दरार'' पर, प्रभाव का निरीक्षण करने के लिए Oedometer वलय का प्रयोग किया जाता है।

आम्भस संवाहिता

- मृदा को जब आम्भस प्रवणक के समक्ष रखा जाता है उस समय उसकी जल पारेष्ण की क्षमता को मापने का आम्भस संवाहिता एक मापन है।

- यह तन्तु मात्रा पर आश्रित है, इसका सामान्यतः तन्तु मात्रा के साथ वर्धन होता है, प्रायः तन्तुमय मृदा में।

निष्कर्ष

- निरर्थक तन्तु के साथ मृदा स्थायीकरण अननुविद्ध मृन्मय मृदा के बल व्यवहार को सुधारता है और सम्भाव्यतः भूमि सुद्धरण परिव्यय को प्रह्रासित करता है।
- समसम्भाविक वितरित पॉलीप्रोपलीन तन्तुओं के संकलन से मृन्मय मृदा के समेकित निश्द्न में पर्याप्त कमी आयी। इस मृदा के वैशेष्य पर तन्तुओं की लम्बाई का नगण्य प्रभाव पाया गया, यतः तन्तु मात्रा अधिक प्रभावशाली और परिणामी साबित हुई।
- तन्तु पुनर्बलन ने शुष्कीकरण से पड़ी दरारों के विस्तार और वितरण को सार्थक रूप से प्रह्रासित किया। ऐसा दरारों की मात्रा, गहराई और चौड़ाई का अवलोकन करने से ज्ञात हुआ। परिणाम यह दर्शाते है कि इसे निरर्थक सामग्री को ढकने में और इसे नहरों के प्रवण में भी प्रयोग किया जा सकता है।
- सबसे अधिक महत्वपूर्ण प्रश्न पर्यावरण चिन्ता है। मृदा में निरर्थक अभिघटन के प्रभाव की और इसके अत्यधिक प्रयोग और अपवहन की समस्यायें और संतर्जना। मृदा पुनर्बलन के आगमन से यह निरर्थक समुपचार का एक प्रभावी समाधान उत्पन्न करता है।

संदर्भ

1. Carol J. Miller and Sami Rifai, (2004), "Fiber Reinforcement for Waste Containment Soil Liners", (ASCE) Journal, (1-5).
2. S.A. Naeini and S.M. Sadjadi, (2008), "Effect of Waste Polymer Materials on Shear Strength of Unsaturated Clays", EJGE Journal, Vol 13, Bund k, (1-12).
3. Dr. K.R. Arora, "Soil mechanics and foundation engineering", published by tandard Publishers Distributors, Delhi.
4. Dr. D.S.V. Prasad, Dr. G.V.R. Prasada Raju and M Anjan Kumar, (2009), "Utilization of Industrial Waste in Flexible Pavement Construction", EJGE Journal, vol 13, Bund d,(1-12).

सतत वैश्विक–विकास के सन्दर्भ में जैव प्रौद्यौगिकी का महत्त्व

शौकत अहमद वाजा, दिनेश कुमार सिंह, धर्मेन्द्र कुमार, तथा प्रदीप सिंह
भारतीय प्रौद्यौगिकी संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

सारांश

प्रौद्योगिकीय बदलाव ज्यादातर सतत विकास के लिए जोखिम और अनिश्चितता तथा सामाजिक योजना कठिन बना देता है। इसीलिए यह एक खतरे के रूप में चित्रित किया जाता है। यह राजनीतिक विशेषज्ञों की धारणा है कि प्राकृतिक संरक्षण तकनीक नये आयाम की तुलना में बेहतर है। लेकिन इस रक्षात्मक दृश्य के लिए इस ग्रह पर टिकाऊ भविष्य के लिए एक बड़ा खतरा पैदा हो सकता है, क्योंकि हम भविष्य में नई प्रथाओं, प्रौद्योगिकियों के प्रयोग से निकट भविष्य में स्थिरता की चुनौती का सामना करने में सक्षम नहीं हो सकेंगे, अतः सतत विकास संसार के नीति निर्माताओं के लिए एक प्राथमिकता बन गया है। सतत विकास के प्रगतिशील दृष्टिकोण के संयुक्त उद्देश्य से सभी प्रौद्योगिकियों के गठबन्धन में सामाजिक वेत्ता, पर्यावरणविद् और आण्विक जीव वेत्ता एकजुट होते हैं। सतत विकास स्थिरता के लक्ष्य तक पहुँचने के लिए प्रौद्योगिकीय के व्यापक दूरी के अलावा, जैव प्रौद्यौगिकी, खाद्य उत्पादन, अक्षम उर्जा, कच्चे माल, प्रदूषण निवारण और बायोरेमेडियन (Bioremedian) के क्षेत्र में विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण जगह ले सकता है। हाल ही में सतत अग्रिम भविष्यवाणी की एक सच्चाई सामने आयी है कि सतत विकास में जैव प्रौद्योगिकीयका महत्त्वपूर्ण योगदान होगा। जैव प्रौद्योगिकीयके सामने कई चुनौतियाँ हैं जैसे–आर्थिक, पर्यावरण, स्वास्थ्य और सामाजिक लाभ, सरकार की नीति, सार्वजनिक सूचना, कानून, शिक्षा और वैज्ञानिक तकनीकी, बुनियादी ढाँचे आदि चुनौतियों की भरमार है और यह हमारे समाज के कई पहलुओं को प्रभावित करेगा। जैव प्रौद्योगिकीय समर्पित सतत विकास के लिए मुख्य क्षेत्र भोजन का उत्पादन होता है, जिसका उपयोग अग्रिम खरपतवार नाशी और कीट प्रतिरोधी ट्रांसजेनिक पौधों के विकास में किया गया है, लेकिन नाइट्रोजन स्थिरीकरण और पर्यावरण तनाव के प्रतिरोध के रूप में भविष्य के विश्व की खाद्य आपूर्ति जो बराबर महत्त्व की है। अन्य घटनाओं पर बड़ा प्रभाव डालती है, और पशु प्रजनन के लिए भी यह तकनीक लागू होती है। गुणात्मक सुधार की बात करने का कोई औचित्य ही नहीं है यह अभी भी प्रारम्भिक अवस्था में है। आनुवंशिकी संसाधनों में से जैव प्रौद्योगिकी का प्रमुख स्थान है और यह भविष्य में नस्ल सुधार के लिए तथा टिकाऊ कृषि को सुनिश्चित करने के लिए महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है तथा कृषि उत्पादन तथा उत्पादकता में सुधार करने में मदद करता है। कृषि में नई जैव तकनीक की भूमिका का दुनिया में बढ़ती जनसंख्या के लिए भूख मिटाने के लिए एक और हरित क्रान्ति के अग्रदूत के रूप में वर्णित किया गया है।

परिचय

पर्यावरण पर मानवता के प्रभाव का विवाद काफी वर्षो के बाद अब दिखाई दे रहा है। हमारी विनाशकारी गतिविधियाँ एक लम्बे समय तक नकारी नहीं जा सकती, लेकिन हमारी महत्त्वपूर्ण आर्थिक गतिविधियों को लगातार बढ़ाने के लिए हम उस पर आधारित है। अतः इसके लिए समझौता करने की जरूरत है। स्थायी विकास का मतलब सतत् विकास के अलग–अलग अवयवों का अलग–अलग

समूहों/लोगों से है। 1987 में ब्रटड्लैंण्ड (Brutedtland) आयोग की रिपोर्ट सबसे महत्त्वपूर्ण व व्यापक रूप में परिभाषित किया गया है– हमें "भविष्य की पीढ़ियों के लिए अपनी जरूरतों को पूरा करने की क्षमता से कोई समझौता किये बिना वर्तमान की अवश्यकताओं को पूरा करना चाहिए, दूसरे शब्दों में जब लोग यह सोचते हैं कि पृथ्वी के संसाधन जैसे– वन, जल, खनिज, जवाहारात, वन्य जीवन आदि का हम किस समय और कितना उपयोग कर रहे है, क्या वे प्रक्रियाओं के लिए इन संसाधनों का उपयोग किया और उनको पाने के लिए उपयोग किया जिनसे उन्हें दुबारा प्राप्त किया जा सकता है।" इसीलिए पीढ़ियों और समुदायों के बीच सतत विकास की अवधारणा मानव विकास की जरूरत है, अधिकारियों और पर्यावरण के प्रति एकजुटता के मामले के रूप में संसाधानों के प्रति जिम्मेदारी अच्छी तरह से समझी जानी चाहिए। प्रौद्योगिकीय बदलाव ज्यादातर सतत विकास के लिए जोखिम और अनिश्चितता उत्पन्न करता है तथा सामाजिक योजना को कठिन बना देता है। इसीलिए यह एक खतरे के रूप में चित्रित किया जाता है। यह राजनीतिक विशेषज्ञों की धारणा है कि प्राकृतिक संरक्षण तकनीक नये आयाम की तुलना में बेहतर है। लेकिन इस रक्षात्मक दृश्य को इस ग्रह पर टिकाऊ भविष्य के लिए एक बड़ा खतरा पैदा हो सकता है, क्योंकि हम भविष्य में नई प्रथाओं, प्रौद्यौगिकियों के प्रयोग से निकट भविष्य में स्थिरता की चुनौती का सामना करने में सक्षम नही हो सकेंगे, अतः सतत् विकास संसार के नीति निर्माताओं के लिए एक प्राथमिकता बन गया है।

प्रौद्योगिकियों की एक पूरी श्रृंखला पहले से ही विकसित की गई है जिसे अक्षय उर्जा नई सामग्री, पर्यावरण के अनुकूल रसायन, परिवहन और प्रोसेसिंग सिस्टम, पर्याप्त निगरानी और नियन्त्रण के तरीकों सहित अनुकूल होना चाहिए। जैव प्रौद्योगिकीय के तहत अधिकांश प्रौद्योगिकियों के संक्षेप में इन क्षेत्रों की भूमिका निभा सकते हैं। लेकिन क्या वे सभी स्थितियों में कुशल और प्रभावी आवश्यक निवेश का औचित्य साबित करने के लिए पर्याप्त है? वर्तमान दृष्टिकोण और परिणाम का एक महत्त्वपूर्ण मूल्यांकन के क्रम में यह निर्धारित करने की जरूरत है।

महत्व और उपयोग

आनुवंशिकी और पुनः संयोजक डी एन ए प्रौद्योगिकीयने पारंपरिक जैव प्रौद्योगिकीयमें क्रान्ति का नेतृत्व किया है। जैव प्रौद्योगिकीयका रेंज लगभग सभी क्षेत्रों की तुलना में व्यापक है। जो उत्पाद हमें बहुत बड़ी संख्या में चाहिए वे केवल जैव प्रौद्योगिकीयसे मिल सकते है। ऊपर दो पहलुओं का वर्णन किया गया है। जैव प्रौद्योगिकी के द्वारा हम जैविक ज्ञान के बारे में जानकारी मिलती है। साथ में ही मानव जाति की जीवन संरचना में परिवर्तन करने की क्षमता का ज्ञान होता है और यह इन दोनों क्षेत्रों की प्रकृति और निर्मित उत्पादों की बड़ी संख्या है, जिन्हें अब आनुवंशिकी संसाधन का प्रयोग करते हुए लागू करना सम्भव है। सतत विकास स्थिरता के लक्ष्य तक पहुँचने के लिए प्रौद्योगिकी का व्यापक विकास जैव प्रौद्योगिकी, खाद्य उत्पादन, अक्षय उर्जा, कच्चे माल, प्रदूषण निवारण और बायोरेमेडियन (Bioremedian) के क्षेत्र में विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है। हाल ही में सतत अग्रिम भविष्यवाणी की एक सच्चाई सामने आयी है कि सतत विकास में जैव प्रौद्योगिकीरण विकास का महत्त्वपूर्ण योगदान होगा। जैव प्रौद्योगिकीय के सामने कई चुनौतियां हैं जैसे– आर्थिक, पर्यावरण, स्वास्थ्य और सामाजिक लाभ, सरकार की नीति, सार्वजनिक सूचना, कानून, शिक्षा और वैज्ञानिक तकनीक, बुनियादी ढाँचे आदि चुनौतियों की भरमार है और यह हमारे समाज के कई पहलुओं को प्रभावित करेगा। जैव प्रौद्योगिकीय समर्पित सतत् विकास के लिए मुख्य क्षेत्र भोजन का उत्पादन होता है, जिसका उपयोग अग्रिम खरपतवार नाशी और कीट प्रतिरोधी ट्रांसजेनिक पौधों के विकास में किया गया है, लेकिन नाइट्रोजन स्थिरीकरण और पर्यावरण तनाव के प्रतिरोध के रूप में भविष्य में विश्व की खाद्य आपूर्ति जो बराबर महत्व की है और पशु प्रजनन के लिए भी यह तकनीक लागू होती है। गुणात्मक सुधार की बात करने

का कोई औचित्य ही नहीं है यह अभी भी प्रारम्भिक अवस्था में है। आनुवंशिकी संसाधनों में जैव प्रौद्योगिकीयका प्रमुख स्थान है और यह भविष्य के लिए नस्ल सुधार के लिए टिकाऊ कृषि को सुनिश्चित करने के लिए महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है तथा कृषि उत्पादन तथा उत्पादकता में सुधार करने में मद्द करता है।

वाणिज्यिक जैव प्रौद्योगिकी अन्तर्सम्बन्ध तकनीकी प्रक्रियाओं और स्वास्थ्य देखभाल, कृषि औद्योगिक पर्यावरण के क्षेत्र में व्यवहारिक अनुप्रयोगों के विस्तार हैं। व्यवहारिक जीवन में विज्ञान उत्पाद और सेवाओं में सहायक है जैसे शक्तिशाली प्रौद्योगिकी पूरक जैविक तकनीकी इन्जीनियरिंग द्वारा विभिन्न वस्तुओं का बदलाव करके नई वस्तु प्रयोग में लाते हैं। नई तकनीक पारम्परिक जैव प्रौद्योगिकीयद्वारा पौध प्रजनन खाद्य किण्वन और खाद के रूप में आधुनिक जैव प्रौद्योगिकी के एकीकरण का सबको एक उपयुक्त रूप में प्रयोग करना। सम्भावित आर्थिक प्रभाव का जैव प्रौद्योगिकी को कृषि में उपयोग करके एक उदाहरण के रूप में देखा जा सकता है। नई प्रौद्योगिकियों का विवकेहीन प्रयोग से और बीसवीं सदी की जनसंख्या वृद्धि से खाद्य, उर्जा और पर्यावरण की जरूरतों पर एक अभूतपूर्व बोझ रखा है। आज लगभग 800 मिलियन लोग भूख से पीड़ित हैं।

संयुक्त राष्ट्र के अनुसार संसार की जनसंख्या 2030 तक 8.1 मिलियन तक पहुँच जायेगी, और इस जनसंख्या की खाद्य आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए खाद्य उत्पादन में 50 फीसदी वृद्धि करने की जरूरत होगी। बढ़ती जनसंख्या से हमारे पास उपस्थित संसाधन जैसे भौगोलिक क्षेत्र, जल के स्थिर या गिरावट से इसको प्राकृतिक तौर पर बढ़ा पाना मुश्किल है अतः केवल खाद्य का उत्पादन ही हम बढ़ा सकते हैं और इसे नई तकनीकों का प्रयोग करके ही बढ़ाया जा सकता है।

भूख और गरीबी को दुनिया से मिटाने के लिए जैव प्रौद्योगिकीयरामबाण साबित हो सकती है। जैव प्रौद्योगिकी के सिद्धान्त का प्राचीनकाल से ही भोजन की आपूर्ति के लिए इस्तेमाल किया जा रहा है। भोजन में मात्रात्मक और गुणात्मक वृद्धि के लिए तथा अकाल और कुपोषण, बीमारी और गरीबी, कम करने के लिए जैव प्रौद्योगिकीयएक महत्त्वपूर्ण तंत्र है। जैव प्रौद्योगिकी द्वारा सूक्ष्म जीवों का और वांछित लक्षण प्रौद्योगिकी द्वारा रोपित कर उपयोग में ला लिया जाता है। उन पौधों में जीन को रोपित कर फसलों को कीट, रोग व सूखे के प्रति विरोधी बनाना जिससे कृषि पौध संरक्षण में रसायन व अन्य उर्वरकों के उपयोग की जरूरत नही होती है। इसमें आर्थिक नुकसान से बचा जा सकता है। किसी भी एक या अन्य सुधारों से अलग–अलग फसलों से देश की बढ़ती परिस्थितियों को देखते हुए जैव प्रौद्योगिकीयके नवाचारों को व्यापक रूप से अनुकूल बनाया जा सकता है जिसका भविष्य में टिकाऊ कृषि को सुनिश्चित करने के प्रयासो के लिए प्रमुख महत्व है।

नई जैव प्रौद्योगिकी में प्रत्यक्ष रूप से बुनियादी हेरफेर से आण्विक जैविक अनुसंधान खोजों का उपयोग में लाया जाता है, जिससे तरह–तरह के उत्पाद तैयार होते हैं। कोशिकीय डी एन ए में सीधा परिवर्तन करके आसानी से इसको अक्षय उर्जा, खाद्य पदार्थ, और जैव रासायनिक कारखानों में जीवों के सरलतम रूप में ला सकते हैं। इस प्रकार यह मानव के बाहर नहीं हो सकता ताकि जो फसल उगायी जा रही है व कीटों के लिए विषाक्त न हो और कीट उसको पसन्द न करें और पौधे दबावपूर्ण स्थिति में बिना पानी के जीवित रह सकें, खनन और रिफाइनिंग के द्वारा हम अपने भविष्य में आने वाली चिंताओं से बच सकते हैं। और यह सब कच्चा पदार्थ प्रयोग कर हम उसको प्रयोग में लाकर रिफाइन करते है। जब हम अपने ग्रह पर गैस और तेल से ऊर्जा का निचोड़ खत्म हो जायेगा तब हमको सूर्य से उर्जा की जरूरत होगी। जैव प्रौद्योगिकी के द्वारा वनस्पति में खाद्य वैक्सीन और नई फार्मास्यूटिकल्स का प्रयोग दुधारू पशुओं में किया जाता है। इसके अलावा जैव प्रौद्योगिकीयका प्रयोग औद्यौगिक और आर्थिक विकास में महत्त्वपूर्ण है और कच्चे पदार्थों का अच्छे से उपयोग हो जाता है। औद्योगिक में सबसे

बड़ा योगदान जैव प्रौद्योगिकी का फार्मास्यूटिकल इण्डस्ट्री में उपयोग है जहाँ पर तरह–तरह की दवायें आनुवंशिकी इंजीनियरिंग सूक्ष्म जीव का प्रयोग कर तैयार की जाती हैं। इसके सबसे अच्छे उदाहरण मानव इन्सुलिंन, इण्टरफेरोन और वृद्धि नियामक है। जैव प्रौद्योगिकी की विधियों का प्रयोग करके किसी भी अच्छे लक्षण को एक पौधे से दूसरे में अंतरित कर दिया जाता है और यह हमारे लिए लाभकारी सिद्ध होता है।

जहाँ पर बहुत सारे लाभदायक गुण होते है वहाँ हानिकारक गुण भी होना स्वाभाविक है। यह जोखिम दो तरह का है, पहला मानव और पशु की सेहत पर प्रभाव पड़ता है। दूसरा पर्यावरण पर प्रभाव। कुछ उदाहरण एलर्जी, जैवविविधता का ह्रास होना, वातावरण का संतुलन बिगड़ना और कई प्रभाव जो मानव समाज को प्रभावित करते हैं।

निष्कर्ष

वैश्विक जैव प्रौद्योगिकी अनुसंधान का गरीबों के लिए खाद्य पदार्थों को उन्नत बनाने के रूप में वर्णन किया गया है। यह सामाजिक या आर्थिक उद्देश्यों के लिए किया गया है, यह प्रौद्योगिकी ग्रामीणों और शहरों में रहने वाली गरीब जनता को एक अच्छा भोजन दिलाने में कारगर साबित हो सकती है, लेकिन जैव प्रौद्योगिकी का उपयोग करने के लिए सावधानी से विचार विमर्श कर तथा विभिन्न पहलुओं की रचनात्मक अन्वेषण की आवश्यकता है जिससे हम जोखिम, आदि हम चुनौतियों का सामना कर सकते हैं।

सुरक्षित निहित प्रक्रियाओं के लिए अभिनव दृष्टिकोण

जी एस ग्रोवर
राष्ट्रीय रासायनिक प्रयोगशाला, पुणे, महाराष्ट्र

रक्षा, फार्मास्यूटिकल्स, कीटनाशकों एवं पीड़कनाशी में होने वाले औद्योगिक रसायनों एवं बहुलकीय पदार्थों की विशाल श्रेणी के उत्पादन हेतु रासायनिक अनुसंधान एवं प्रौद्योगिकी विकास ने सदा ही राष्ट्र एवं मानवजाति के उत्थान हेतु भागीदारी की है। तथापि, इन पदार्थों के सुरक्षित एवं अधिक टिकाऊ उत्पादन हेतु गंभीरता से विचार करने की आवश्यकता है। इस प्रस्तुतीकरण में स्वास्थ्य, संरक्षा एवं पर्यावरण के मौलिक तत्वों के प्रयोग से रासायनिक संरक्षा में उच्च मानदण्ड प्राप्त करने हेतु मुख्य उपायों पर विचार किया जाएगा। संरक्षा निहित प्रक्रियाओं हेतु नवोन्मेषी दृष्टिकोण एवं पहल, जो जोखिम को कम करने में सहायता प्रदान करते हैं–इन विषयों पर कुछ अध्ययन मामलों और व्यावहारिक उदाहरणों द्वारा प्रकाश डाला जाएगा।

हम रसायनों की दुनिया में रह रहे हैं। हम जो हवा साँस द्वारा अपने अन्दर लेते हैं, जो अन्न हम खाते और पीते हैं, जिन दवाओं का तथा सौंदर्य प्रसाधनों का हम प्रयोग करते हैं तथा इनके अलावा हमारे दैनंदिन जीवन में प्रयोग में आने वाली अन्य कई चीजें–सभी में रसायन प्रयुक्त होते हैं। रसायनों से बनी ये चीजें हमारे जीवन को सुखद बनाती हैं किन्तु इनसे हमारे अच्छे स्वास्थ्य एवं संरक्षा के लिए खतरा भी पैदा हो सकता है। आज रसायन प्रक्रिया उद्योग आधुनिक विश्व की अर्थव्यवस्था का केन्द्र स्थान बना हुआ है, अतः इसका बड़ा महत्त्व है। यह पेट्रोरसायनों, बहुलकों, कृषि रसायनों, फार्मास्यूटिकल्स एवं रंजकों आदि के क्षेत्रों में कच्ची सामग्री को उत्पादों में परिवर्तित करते हैं। इस प्रकार रासायनिक अनुसंधान एवं प्रौद्योगिकी के विकास–दोनों ने हमारे राष्ट्र एवं मानवजाति के उत्थान हेतु भागीदारी की है। तथापि, रसायनों का उत्पादन सदा ही खतरनाक रसायनों के साथ जुड़ा रहा है। इसके अलावा रसायनों के उत्पादन, भण्डारण, ढुलाई (ट्रान्सपोर्ट) तथा प्रयोग में भी खतरा बना रहता है। इस सन्दर्भ में भारत जैसे देश ने विश्व के इतिहास में भीषणतम रासायनिक त्रासदी का अनुभव किया है। इस प्रकार की आपदाओं से हमने सबक सीखे हैं और कई कायदे–कानून बनाकर प्रशासन प्रणाली को चुस्त किया गया है।

यद्यपि, पिछले दो दशकों में (भोपाल गैस कांड के बाद) अन्तर्निष्ट संरक्षा डिज़ाइनों एवं उन्हें प्रत्यक्ष रूप में व्यवहार में लाने (प्रैक्टिस) की संकल्पनाओं के सम्बन्ध में संरक्षा सलाहकारों के बीच काफी जागरूकता आयी है, फिर भी डिज़ाइन संगठनों एवं वरिष्ठ प्रबन्धकों के बीच सामान्य जागरूकता का अभाव दिखायी देता है। कुछ क्षेत्रों में (अन्तर्निष्ठ संरक्षा की) भावना (संवेदना) अब सामान्य ज्ञान बन गई है, किन्तु सभी क्षेत्रों में ऐसा नहीं है और यह अब भी सामान्य प्रैक्टिस नहीं बन पाई है। कई संयंत्र (ज्ञात त्रुटियों के साथ) अब भी कार्यरत हैं।

रासायनिक दुर्घटनाओं से जूझने के लिए रसायन के जीवनचक्र का महत्त्वपूर्ण प्रभाव होता है तथा इस जीवनचक्र के विभिन्न घटक रासायनिक संरक्षा के उपाय निर्धारित करते हैं। रासायनिक संरक्षा एक ऐसा विषय/मुद्दा है जो रसायनों के उत्पादन, भण्डारण, ढुलाई, परिवहन एवं प्रयोग तथा निपटान के

विभन्न चरणों में रसायनों के खतरों से जुड़ी जोखिमों को कम करने के लिए समर्पित है। रसायनों का भण्डारण एक लंबा चरण/काल होता है जिसमें रसायन अधिकाधिक समय तक एक ही स्थान पर होते हैं और इससे उन रसायनों के खतरों की जोखिम भी बढ़ जाती है तथा कई बार इसका सामना भी करना पड़ता है। किसी पदार्थ/सामग्री का भंडारण एक मध्यक के रूप में हो सकता है जिस पर अगली रासायनिक प्रक्रिया की जानी है अथवा एक तैयार उत्पाद के रूप में हो सकता है जिसका परिवहन, वितरण अथवा प्रयोग किया जाना है। इसके बाद रसायन की उत्पादन अवस्था में निहित जोखिम की बात आती है। उत्पादन अवस्था में बहुत सी भौतिक एवं रासायनिक प्रक्रियाएँ होती हैं जो रासायनिक दुर्घटना के लिए संभाव्य अवसर प्रदान करती हैं। इस प्रकार उपर्युक्त समीक्षा से यह स्पष्ट है कि जिस रसायन की उत्पादन प्रक्रिया में जितने अधिक चरण/अवस्थाएँ होंगी उनमें दुर्घटनाओं की जोखिम उतनी अधिक होगी।

रसायन उत्पादन करने वाली प्रक्रियाएँ एवं प्रौद्योगिकी अधिकतम उत्पादन एवं मूल्य देने हेतु मानकीकृत की जाती हैं। सामग्री का उत्पादन करने वाले संयंत्र बिना किसी रुकावट के चलते हैं, किन्तु ऐसा भी समय आता है जब मनुष्य अथवा मशीनों की भूल से अवांछित घटनाएं घटती हैं, इस स्थिति में डिज़ाइन में मशीनों के प्रचालन में ऐसी निहित विशेषताओं को शामिल करना चाहिए जो प्रयोगकर्ता के अनुकूल हों तथा प्रचालक को भूल का अवसर न दे और तापमान, प्रवाह, दाब आदि के उतार–चढ़ाव (फलक्युएशन्स) को सह सकें तथा उत्पाद की गुणता, कार्यक्षमता एवं संरक्षा के साथ समझौता न करते हों। इसे संरक्षा निहित डिज़ाइन कहते हैं।

संरक्षा निहित प्रक्रिया एवं संयंत्रों सम्बन्धी दृष्टिकोण में चार प्रमुख बातों/विशेषताओं के चार ग्रूप बनाए गए हैं जिन्हें निम्नलिखित के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है–

न्यूनीकरण, तीव्रीकरण संरक्षा निहित डिज़ाइन की व्यापक स्तर पर प्रयोग में लायी जाने वाली विशेषता है। इसमें खतरनाक पदार्थों का न्यूनतम प्रयोग किया जाता है ताकि समूचे संयंत्र के घटकों को मुक्त कर देने पर भी कोई बड़ी दुर्घटना न हो। सामग्री के सक्रिय स्टॉक को न्यूनतम करने से न केवल संरक्षा बढ़ जाती है, अपितु कच्ची सामग्री, सम्बन्धित मशीनों एवं उनके प्रचालन की लागत भी कम हो जाती है। इसके अलावा स्केल, ऊर्जा की लागत भी घट जाती है। इसका मुख्य लक्ष्य यूनिट के आकार को छोटा करना है।

इस दृष्टिकोण को धीमी अभिक्रियाओं पर प्रयोग किया जा सकता है। यदि रुपान्तरण धीमा है, तो अधिकतम अभिकारक पुनः अरूपान्तरित अवस्था में पहुँच जाते हैं तथा उनसे उत्पादों की प्राप्ति हेतु प्रक्रिया के बाद उनका पुनःचक्रण करना होता है। उच्च स्तर के रुपान्तरण हेतु अधिक बैच टाइम की आवश्यकता होती है। इससे यह स्पष्ट है कि अधिकाधिक नयी सामग्री के कारण इन्वेन्टरीज की मात्रा भी बढ़ जाती है।

रसायन निर्माण के इतिहास में सबसे भीषणतम आपदा के रूप में दिनांक 3 दिसम्बर, 1984 को घटी भोपाल गैस दुर्घटना का जिक्र किया जाता है, जब एक गैस की टंकी का विस्फोट हुआ जिससे 40 टन एम आई सी घातक बादल के रूप भोपाल की घनी आबादी वाले क्षेत्र पर छा गई। इससे उस रात 2000 लोगों की मृत्यु हुई और बाद के तीन दिनों में 8000 लोगों की जानें गईं। तत्पश्चात के महीनों में हजारों लोग मारे गए और उससे भी अधिक इस गैस से पीड़ित हुए।

इस दुर्घटना की समीक्षा/विश्लेषण से यह पता चलता है कि उक्त संयंत्र में एमआईसी की प्रत्येक दो टंकियाँ भरी हुई थीं। एम आई सी अन्तिम उत्पाद न होकर केवल एक मध्यक होता है। दोनों टंकियों में से एक में से गैस का रिसाव होने लगा तब हर किसी को यह डर लगा कि एमआईसी की दूसरी

टंकी में भी विस्फोट हो सकता है। इस प्रकार की स्थिति से यह स्पष्ट हुआ कि अतिरिक्त टंकी को टाला जा सकता था। इसे ध्यान में रखते हुए विश्व में अन्य कई निर्माण संयंत्रों (सभी नहीं) ने खतरनाक पदार्थों की मात्रा घटा दी।

इसी प्रकार की एक विश्व प्रसिद्ध दुर्घटना, ह्मक्तफ्रक्सबोरो कांड 1974 में ह्मक्तब्रटेन में घटी थी, जो अनेक अभिकारकों की अत्यधिक इन्वेन्टरी का परिणाम था। 70,000 टी पी ए प्रक्रिया में 150 घन सेमी वायु के साथ साइक्लोहेक्सेन का ऑक्सीकरण शामिल था और इसमें छह रिएक्टरों की शृंखला में 10 बार प्रेशर था जिससे साइक्लोटेक्सानोल एवं काइक्लोहेक्सानोन सम्मिश्रण निर्मित किया जाता था (इस प्रक्रिया में अभिक्रिया धीमी थी) तथा अधिकतम इन्वेन्टरी को 6 बड़े निरन्तर होल्डिंग टंकियों में रखा गया था, जबकि शेष इन्वेन्टरी उत्पादों की प्राप्ति तथा अनरिएक्टेड पदार्थों हेतु पाइपलाइन में थी। उक्त संयंत्र में इन्वेन्टरी 200–500 टन थी, जो आवश्यकता से बहुत अधिक है।

यद्यपि उक्त दुर्घटना का प्रारंभिक कारण एक बायपास लाइन का फटना हो सकता है, किन्तु आग एवं तत्पश्चात विस्फोट वहाँ स्टॉक में बड़ी मात्रा में रखे गए ज्वलनशील पदार्थों के कारण हुआ जिससे वाष्प के बादल का विस्फोट हुआ और उसमें 28 कर्मचारियों की मृत्यु हुई और 36 लोग गंभीर रूप से घायल हुए।

नाइट्रोग्लिसरीन का उत्पादनः संयंत्र की घटाई गई इन्वन्टरी के माध्यम से प्रक्रिया संयंत्र को पुनः डिज़ाइन करने के आरंभिक एवं उत्कृष्ट उदाहरणों में से यह एक है जिससे प्रक्रिया अधिक सुरक्षित हुई। पारंपरिक अभिक्रिया लगभग एक टन के बैच साइज के विलोडित (स्टर्ड) टंकियों में बैच मोड में की जाती है। इस अभिक्रिया में ग्लिसरीन, नाइट्रेट अम्ल एवं सल्फ्यूरिक अम्ल का प्रयोग होता है। यह अभिक्रिया अति ऊष्माक्षेपी (एक्सोथर्मिक) किन्तु धीमी होती है और इसे एक बैच पूरा करने के लिए लगभग दो घंटे का समय लगा। इस प्रक्रिया में तापमान का मेन्टेनन्स बहुत महत्वपूर्ण था और ऑपरेटर लगातार इस पर नजर रखे हुए थे।

इस अभिक्रिया का संपूर्ण अभियांत्रिकी विश्लेषण किया गया और यह पाया गया कि अभिकारकों का मिश्रण पर्याप्त नहीं था जिससे अभिक्रिया दर बहुत घट गई। उक्त प्रक्रिया की समुन्नत डिज़ाइन में टयुब्युलर रिऐक्टर में अम्ल एवं ग्लिसरीन के फीड सहित निरन्तर प्रक्रिया का समावेश था। यह अभिक्रिया 2 मिनट में पूरी हुई और उसके बाद उत्पाद भी तैयार हुए। इस डिज़ाइन में अन्य कई संरक्षा विषयक विशेषताओं को शामिल किया गया। यहाँ यह ध्यान देना आवश्यक है कि इस विनिमय/एक्सचेंज के बाद सक्रिय अभिक्रिया द्रव्यमान (मास) की इन्वेन्टरी को एक टन से 2 किग्रा तक घटाया गया। इसके अलावा अभिक्रिया की कार्यक्षमता में भी बहुत सुधार हुआ।

यह एक और उदाहरण है जो यह दर्शाता है कि बैच प्रक्रिया की तुलना में निरन्तर प्रक्रिया द्वारा जोखिमों को कम किया जा सकता है। इससे इन्वेन्टरी एवं प्रक्रिया की स्थितियों का भार कम होता है। कुछ ऐसी भी नाइट्रेशन की अभिक्रियाएँ हैं जिनमें तीव्रीकरण से सहायता प्राप्त हुई।

विकल्प : तीव्रीकरण की नीति/उपाय पूरी तरह से लाभदायक न होने पर विकल्प के रूप में सुरक्षित पदार्थों/सामग्री का प्रयोग किया जा सकता है। इसमें ज्वलनशील अथवा विषैले पदार्थों के स्थान पर अज्वलनशील अथवा कम ज्वलनशील, कम विषैले विलायकों, प्रशीतकों अथवा ऊष्मा स्थानान्तरण पदार्थों/सामग्री का प्रयोग किया जा सकता है। उदाहरण के तौर पर–कुछ एथिलीन ऑक्साइड संयंत्रों में अभिक्रिया नलिकाओं को ठंडा करने हेतु सैकड़ों टन बॉयलिंग पैराफिन का प्रयोग होता है। यह उक्त नलिकाओं में एथिलीन एवं ऑक्सीजन के मिश्रण से भी अधिक खतरनाक है। अब आधुनिक संयंत्रों में पैराफिन के स्थान पर जल का प्रयोग किया जाता है।

विकल्पों का प्रयोग करते समय खतरों एवं जोखिमों से बचने हेतु बहुत ध्यान देने की जरूरत है। जैसे पर्यावरण की रक्षी एवं ओज़ोन की परत को क्षति से बचाने हेतु क्लोरोफ्लुओरोकार्बन प्रशीतकों के स्थान पर द्रवीभूत पेट्रोलियम गैस एवं अमोनिया का प्रयोग किया जा रहा है। तथापि, इस परिवर्तन को उचित रूप से नियंत्रित नहीं किया तो अधिक आग, स्वास्थ्य एवं संरक्षा जोखिमों का खतरा बना रहता है।

इसी प्रकार सल्यूरिक अम्ल जैसे संक्षारक अम्ल के स्थान पर घन अम्ल उत्प्रेरकों का प्रयोग किया जा सकता है। ये जिओलाइट आधारित अथवा धनायन विनिमय (कैटायन एक्सचेंज) रेजिन आधारित हो सकते हैं। कई ऐसी अभिक्रियाएँ हैं जिनमें परिवर्तन की संभावना पर विचार किया जा रहा है। इस प्रकार के विकल्प फार्मास्यूटिकल उद्योग तथा रक्षा विभाग के पदार्थों/सामग्री में प्रयोग किए जाने वाले रसायनों में अपनाए जा रहे हैं।

सक्रिय घटकों के विकल्प का एक अन्य उदाहरण है– समूचे विश्व में नगर निगमों द्वारा चलायी जाने वाली जलशुद्धिकरण प्रणाली हेतु क्लोरीन गैस के स्थान पर सोडियम हाइपोक्लोराइड (घन) का प्रयोग। इस विकल्प से निवासी क्षेत्रों में क्लोरीन गैस के रिसाव से उत्पन्न होने वाली कई खतरनाक स्थितियों से बचा जा सकता है, अतः इसका बड़ा महत्त्व है। इस विकल्प में बड़ी इन्वेन्टरी को भी टाला जा सकता है जो असामाजिक तत्वों का निशाना बन सकती है।

स्कूलों एवं कॉलेजों के प्रैक्टिकल्स में भी खतरनाक अभिकर्मकों एवं अभिक्रिया स्थितियों के विकल्पों की सिफारिश की गई है। विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग ने इसे बहुत ही प्रभावी तरीके से प्रस्तुत किया है।

संतुलनः यदि तीव्रीकरण एवं विकल्प से प्रक्रिया को कम जोखिमभरी बनाने का उद्देश्य पूरा नहीं होता है तो अगले विकल्प के रूप में संतुलन का प्रयोग किया जा सकता है। इसमें कम जोखिमवाली स्थितियों, कम खतरनाक सामग्री अथवा सुविधाओं का प्रयोग होता है जिनसे खतरनाक पदार्थ अथवा ऊर्जा बाहर पड़ने पर उसके प्रभाव को कम करते हैं।

उपर्युक्त उत्प्रेरक, जो उच्च तापमान एवं दाब की अति अभिक्रिया स्थितियों को संतुलित करते हैं, के प्रयोग से भी प्रक्रिया को संतुलित किया जा सकता है।

हाइड्रोफॉर्मिलेशन अभिक्रियाएँ (ओक्सो प्रक्रिया) जिन्हें अति उच्च दाब एवं तापमान में कोबाल्ट उत्प्रेरक के प्रयोग से संपादित किया जाता था, अब रुथेनियम आधारित उत्प्रेरकों के प्रयोग से उनमें परिवर्तन किए गए हैं। कई अन्य उत्प्रेरकीय अभिक्रियाएँ हैं जिनमें संतुलन से सहायता प्राप्त हुई।

सरलीकरणः इस प्रक्रिया को एक भिन्न दृष्टिकोण से देखने की आवश्यकता है। इसका उद्देश्य है प्रक्रिया, मशीनरी, प्रोटोकॉल का इस प्रकार सरलीकरण करना जिससे प्रक्रिया का प्रचालन तर्कसंगत पद्धति से किया जा सके तथा कालातीत/पुरानी पद्धति से उसका प्रचालन न हो। यह भी उद्देश्य है कि ऐसी सुविधाओं की डिज़ाइन बनाना जो अनावश्यक जटिलता को दूर करे तथा प्रचालक की भूलों की संभावना को कम करें। इस दाब (प्रेशर), तापमान आदि के उतार–चढ़ाव को भी सहनीय जैसा पर्याप्त लचीला होना चाहिए।

हाल ही की एक घटना का उदाहरण दिया जा सकता है जो 7 फरवरी, 2010 को घटी। एक नए प्राकृतिक गैस पर चलने वाले ऊर्जा संयंत्र की स्थापना के समय गैस पाइपलाइन को साफ करने हेतु ज्वलनशील गैसों के प्रयोग की घातक प्रैक्टिस की जा रही थी। अतः प्राकृतिक गैस ब्लोज की शृंखलाओं के कारण क्लीन एनर्जी नैचुरल गैस इलैक्ट्रिक जनरेशन प्लान्ट, जो मिडलटाउन में

कनेक्टिकट (अमेरिका) में निर्माणाधीन था, में विस्फोट हुआ। इस दुर्घटना में छह कर्मचारी गंभीर रूप से घायल हुए और लगभग 50 जखमी हुए।

अमेरिका के रासायनिक संरक्षा बोर्ड (सी एस बी) ने यह माना कि उपर्युक्त दुर्घटना को रोका जा सकता था, तथा यह निष्कर्ष पाया कि पाइपिंग को गैस ब्लोज द्वारा साफ करना निहित रूप से असुरक्षित है तथा इसे ऊर्जा संयंत्रों के निर्माण में प्रयोग में लाने की अनुमति नही दी जानी चाहिए। इसके सरलीकरण की दृष्टि से संभाव्य उपाय यह था कि इनर्ट गैस जैसेकि नाइट्रोजन से पाइपलाइन को लश किया जाए। इस हेतु प्रोटोकोल एवं कानून में परिवर्तन किया गया।

क्लीन एनर्जी की जाँच में रासायनिक संरक्षा बोर्ड ने पाया कि अगले पाँच वर्षों में 125 अथवा अधिक प्राकृतिक गैस पर चलने वाले ऊर्जा संयंत्र स्थापित किए जाने वाले थे। इन उदाहरणों में से कई में नए अथवा रिफिटेड संयंत्रों में निहित खतरों के बावजूद गैस ब्लोज का प्रयोग किया जा सकता है, क्योंकि गैस आसानी से उपलब्ध होती है। अतः प्राकृतिक गैस ब्लोज की प्रैक्टिस समाप्त करने से क्लिन एनर्जी जैसी दुर्घटनाओं को भविष्य में रोकने की संभावना है।

सी एस आई आर की कई प्रयोगशालाएँ रसायन से जुड़ी होने के कारण उन्होंने इन्डस मैजिक नामक एक अनुसंधान पहल आरंभ की है। अणु कार्यक्षम (एटम एफिशिएन्ट)(वांछित उत्पाद के प्रतिकिलो न्यूनतम अपशिष्ट उत्पाद निर्माण करने वाली), पर्यावरण अनुकूल एवं विश्वस्तर पर प्रतियोगी/स्पर्धात्मक प्रक्रियाएँ और प्रौद्योगिकी के लिए प्रक्रिया उपकरणों की डिज़ाइनिंग के नए एवं सृजनात्मक साधनों का विकास एवं प्रक्रिया केमिस्ट्री के साथ उनका एकीकरण इस कार्यक्रम का मुख्य लक्ष्य है। इस अनुसंधान कार्यक्रम में जादूई संयंत्रों की संकल्पना की गई है जो मॉडयूलर, दक्ष, तीव्रीकृत (इन्टेन्सिफाइड) एवं निरन्तर चलने वाले होते हैं। सी एस आई आर–राष्ट्रीय रासायनिक प्रयोगशाला इन्डस मैजिक परियोजना का नेतृत्व कर रही है। उद्योग जगत तथा उद्योग परिषदों (भारतीय रसायन परिषद आदि) के साथ विचार–विमर्श करके इन क्षेत्रों से सम्बद्ध विशिष्ट प्रक्रिया केमिस्ट्री की पहचान की जाएगी। तीव्रीकरण की गई प्रक्रियाओं में न्यूनतम इन्वेन्टरी से निश्चित ही मूलभूत खतरों के घटकों को कम किया जा सकेगा। नई प्रक्रिया प्रौद्योगिकी के अलावा नए युग के स्पेशल्टी उद्योग की सहायता करने हेतु नए उत्पादों एवं समाधानों का विकास किया जाएगा।

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हुआ कि रसायनों में निहित खतरे होते हैं किन्तु सभी अभिकारकों एवं प्रक्रिया स्थितियों के फिजिको–केमिकल गुणधर्मों, संलग्न उपकरणों एवं निहित संरक्षा विशेषताओं सहित संशोधित प्रोटोकेल को उचित रूप से समझने से इन खतरों को दरकिनार अथवा कम करके सुरक्षित रूप से अनुसंधान एवं संयत्र का प्रचालन किया जा सकता है।

पश्मीना ऊन की प्रदूषण रहित पूर्व परिसज्जा, विरंजन, रंजन एवं परिसज्जा पद्धतियाँः संभावनायें

प्रियदर्शी जारूहार
डॉ बी आर अम्बेडकर राष्ट्रीय प्रौद्योगिकी संस्थान, जालंधर, पंजाब

परिचय

'पश्मीना' फारसी के पश्म शब्द से बना है, जिसका अर्थ होता है, रेशम की तरह मुलायम। यह हिमालय की ऊँची घाटियों में पायी जाने वाली चांग्थानी नामक बकरी से प्राप्त होने वाली कैशमेयर ऊन की एक प्रकार है (चित्र 1)। पश्मीना शॉल में साधारणतः 80 से 90 प्रतिशत भाग शुद्ध पश्मीना ऊन का होता है, बाकि 10 से 20 प्रतिशत शुद्ध रेशम काजो मिश्रण के रूप में शॉल की मजबूती बढ़ाने के लिए और विशेषतः दस्तकारी के लिए प्रयुक्त होने वाले रंगीन धागे के रूप में होता। शुद्धतम और बेहतरीन रेशा बकरी के निचले पेट के भाग से प्राप्त होता है। पश्मीना रेशा काफी गर्म, छूने में नरम, सुन्दर ड्रेप और आरामदायक होता है। अधिक क्रिम्प और अधिक खाँचों के कारण इसका विन्यास काफी अच्छा होता है जिससे यह ऊष्मा का कुचालक होता है। यह पराबैंगनी किरणों से बचाव में भी सक्षम है। यह अपने वजन का 30 प्रतिशत से अधिक नमी सोख सकता है फिर भी इसके गीलेपन का एहसास नहीं होता। नमी होने के बावजूद यह ताप को बाहर रख सकता है। इसलिए इसे बर्फानी ठंडे प्रदेशों में, पर्वतीय क्षेत्रों में लंबे समय तक बिना बदले अंदरूनी वस्त्रों के रूप में पहना जा सकता है और ठंड से बचा जा सकता है। इसे आधुनिक संश्लेषित कृत्रिम रंगों से शानदार और आर्कषक रंगों में रंगा जा सकता है। अंतर्राष्ट्रीय और घरेलू बाजार में, फैशन की दुनिया में विश्व के सर्वाधिक महंगें शॉल, गुल्लुबंध, स्टोल आदि के रूप में जाना जाता है। खासकर जब इसमें पारम्परिक कश्मीरी कढ़ाई व दस्तकारी की गई हो। यह पूरी तरह से एक हस्तशिल्प से बना उत्पाद है। रेशा हाथ से ही काता जाता है और रंगाई व कढ़ाई भी अधिकतर हाथों से ही की जाती है। एक अच्छा पश्मीना कश्मीरी शॉल बाजार में चालीस हजार से चार लाख रूपये तक बिक जाता है जिसे बनाने में चार से छः महिने तक लग जाते हैं।

यह बकरी हिमालय के पर्वतीय क्षेत्रों में, लद्दाख, कश्मीर घाटी, अफगानिस्तान, तिब्बत आदि में पाली जाती है। महिलायें अधिकतर इसके बालों को जमा करती हैं, निकालती हैं, हाथों से कतार्ह करती हैं फिर हाथों से ही बुनाई करती हैं। पश्मीना, कैशमेयर या अन्य ऊनी तंतु या उनसे बने वस्त्र सामग्रियों के रंजन के पहले पूर्व सज्जा, सफाई, धुलाई, स्कॉरिंग और विरंजन करनी पड़ती है, जिसमें काफी हानिकारक रसायनों का प्रयोग होता है। फिर रंजन में अनेक प्रकार के डाई रंजकों का प्रयोग होता है जिससे उत्सर्जित दूषित जल नदी–नालों, नहरों में जाकर जल प्रदूषण फैलाती है। अधिकांशतः हजारों–लाखों के शॉल के लिए कुछ सौ रूपये से भी कम उसकी पूर्व परिसज्जा, रंजन आदि पर खर्च होते हैं। यह रंजन आदि पुराने विधियों से सम्पादित हो रही है जिससे जहाँ वे इस बेशकीमती शॉल को बनाने में न सिर्फ जल को प्रदूषित कर रहे हैं, वहीं वे स्वयं भी अंतर्राष्ट्रीय रंजकों के खासकर जर्मन मापदंडों पर खरे नहीं उतरते। हाल–फिलहाल के अनुसंधानों ने प्रयोगों में कई प्रकार की प्रदूषण रहित विधियों, पद्धतियों एवं रसायनों का पता चला है जिससे प्रदूषण को कम किया जा सकता है, या काफी

हद तक रोका जा सकता है। इस तकनीकी ने कई ऐसे एन्जाइम्स दिए हैं जिनका प्रयोग इस दिशा में एक क्रांतिकारी कदम है।

प्रदूषण रहित पूर्व–परिसज्जा/परिसज्जा

कच्चा ऊन जब छटाई और वर्गीकरण के बाद आता है तब उसमें धूल, मिट्टी, गंदगी, वैक्स, ग्रीस, प्राकृतिक रंग मिले होते हैं जिन्हें आगे की प्रक्रिया जैसे रंजन आदि के लिए हटाना आवश्यक होता है। इसके अलावा ऊन में श्रिंक रहित परिसज्जा, मजबूती बढ़ाने और चुभन कम करने या विन्यास बेहतर करने हेतु उसे कई प्रकार की रासायनिक, तापीय व जलीय प्रक्रियाओं से गुजारना होता है। इन प्रक्रियाओं में धुलाई, स्कॉवरिंग, कार्बोनाइंग, क्लोरिनीकरन, विरंजन आदि प्रमुख हैं जिनमें बड़े पैमाने पर कास्टिक सोडा, साबुन, डिटरजेंट्स और क्लोरीन आदि का प्रयोग होता है जो जल प्रदूषण का एक मुख्य कारण है। क्लोरीन हेरीकोट प्रक्रिया एक मुख्य पूर्व–परिसज्जा है जिसमें एओएक्स 1000मिलीग्राम/लीटर तक उत्सर्जित होता है।

वनस्पति जनित अशुद्धियों को हटाने के लिए सेल्यूलोज एंजाइम पद्धति का प्रयोग कर सकते हैं, लाईपेज ग्रीस या वसा को हटाता है, लाईपेज और प्रोटिज की मदद से तन्तु के क्रिम्प को बढ़ाया जा सकता है और और उसके चुभन को अधिक कम किया जा सकता है जिससे उसे त्वचा के सम्पर्क से पहना जा सकता है। साथ ही उसके विन्यास और श्रिंक को रोकने की क्षमता में भी वृद्धि की जा सकती है।

ऑक्सीकरण हेतु प्रयुक्त होने वाले क्लोरीन के स्थान पर हाईड्रोजन पेरॉक्साइड का प्रयोग किया जा सकता है। जिससे उत्सर्जित जल में एओएक्स की मात्रा कम हो जाती है। जर्मन नियमों के अनुसार क्लोरीन की मात्रा 2 मिलीग्राम/लीटर से अधिक नहीं होनी चाहिए।

प्रदूषण रहित कमतर हानिकारक रंजन

ऊन/पश्मीना ऊन का रंजन मुख्यतः अम्लीय रंग, पूर्व धात्वीय समूह रंग, क्रोम डाई, सीधे रंगों आदि द्वारा होता है। गहरे काले और नीले रंगो के लिए ऊन व पश्मीना को क्लोरीनीकरन के बाद क्रोम डाई से रंगा जाता है। गहरा काला रंग जापान के टुक्सेडो बाजार के लिए रंजित होता है जो क्रोम डाई से संभव होता है जिसमें Cr(VI) का हानिकारक व विषैला प्रभाव कामगारों के साथ–साथ पर्यावरण पर भी अनपेक्षित प्रभाव डालता है। पूर्व धात्विक रंगो में Cr(III) का प्रयोग क्रोमिंग के लिए हो तो कुप्रभावों से बचा जा सकता है क्योंकि Cr(III) अपेक्षाकृत काफी कम हानिकारक है। यह तत्व मिट्टी में भी पाया जाता है और मनुष्य के भोजन का एक आवश्यक तत्व है। Cr(III) सीधे क्रोमिंग कारक के रूप में प्रयुक्त नहीं हो सकता और इसका लगाव भी ऊनी कपड़ों से कम होता है। अम्लीय माध्यम, जैसे लैक्टिक अम्ल या 5–सल्फो–सैलिसैलिक अम्लों का प्रयोग किया जा सकता है। जिससे गहरे रंग व पक्के रंग प्राप्त किए जा सकते हैं।

जिंग और पॉलिथ्रोप अनुसंधान कर्त्ताओं ने हाल ही में कैशमेयर (पश्मीना किस्म) तन्तु की औद्योगिक रंजन पद्धति विकसित की है। उपयुक्त रंग गहराई एवं पक्कापन हेतु Cr(III) समूह के प्रयोग के 5 मिनट के पश्चात थोड़ी मात्रा में (0.6 प्रतिशत तन्तु की मात्रा से) मिलाना होता है। इस Cr(III) समूह की एस सी – Cr के नाम से कोडिंग की गई है। इससे अवशोषण योग्य जैविक हैलोजन (एओएक्स) अवशेष तो कम होता ही है, Cr(IV) के कर्करोग, एलर्जी, त्वचा रोग जैसे संभावित हानिकारक प्रभाव से भी बचा जा सकता है।

क्लोरीन के स्थान पर हाइड्रोजन पेरॉक्साइड जो एक ऑक्सीकारक है का प्रयोग किया जा सकता है या फिर कैरो के साल्ट (KHSO4, KHSO5) के प्रयोग द्वारा क्लोरीन को विस्थापित कर सकते हैं।

प्रारंभिक रिऐक्टिव रंजकों के द्वारा ऊन का रंजन सिर्फ तंतु और धागे या टापस तक ही सीमित था क्योंकि डाईंग में असमान रंजन की समस्या उत्पन्न हो जाती है। इस समस्या का समाधान लुविस इत्यादि के खोज और ''लैनासोल'' नामक डाई के प्रयोग से संभव हुआ है जो ''अलबेगाल बी'' नामक लेवलिंग एजेंट के साथ समान रंग व भोड प्रदान करता है। गहरे काले–नीले रंग हानिकारक Cr (IV) डाई पूर्व में संभव था वह भी इस नए सुझाव से संभव है। रिऐक्टिव डाई की एओएस के उत्सर्जन की समस्या का समाधान सल्फाटोइथाइल सल्फोन अवशेषों के रिऐक्टिव समूहों का ही चयन किया जाए तो संभव है।

जैव पद्धतियों में लाईपेज, प्रोटिएज आदि इन्जाइमों के प्रयोग से तन्तु की नमी अवशोषण क्षमता का विस्तार हो सकता है जिससे तन्तु की रंजन क्षमता में वृद्धि संभव है जो गहरे रंगों को कम मात्रा में रंजकों के प्रयोग से प्राप्त किया जा सकता है। फिर ये एन्जाइम अधिकांशतः जैविक व प्राकृतिक विधियों से नष्ट हो सकते है।

प्रदूषित जल का उपचार

रासायनिक, जैविक विधियों तथा कई प्रकार के फिल्टरों जैसे नैनो फिल्टर, आर ओ पद्धतियों की मदद से उत्सर्जित प्रदूषित जल को स्वच्छ किया जा सकता है। कैटेलेज या पैरोक्सीजेड नामक एन्जाइम की मदद से हाइड्रोजन परऑक्साइड को आसानी से नष्ट किया जा सकता है जिससे समय और पानी की बचत होती है। लाइकेज एन्जाइम रंगों को ऑक्सीकरन के द्वारा विरंजित कर सकता है।

उपसंहार

पश्मीना ऊन की उपलब्धता माँग और उपयोगिता के सामने काफी कम है। श्रीनगर की भोरे कश्मीर कृषि विश्वविद्यालय ने क्लोनिंग की मदद से पश्मीना बकरी का सफल नस्ल विकास कर बकरी–छौने को जन्म दिया है जिससे भविष्य में इस उत्पादन की संभावना बढ़ी है। बकरियों की संख्या बढ़ोतरी के साथ कश्मीर, लद्दाख, तिब्बत, अफगानिस्तान जहाँ आर्थिक विकास के साधन सीमित है इस रेशे में अपार संभावनायें देखी जा सकती हैं तथा भविष्य में फैशन के साथ–साथ सामरिक पर्यटकों के लिए भी इसकी सार्थकता देखी जा सकती है। विश्व ऊन संगठन में इसका निबंधन पर्यावरण मैत्रीय के साथ आश्चर्यजनक परिधानीय गुणों वाला यह ऊनी तन्तु भारत के लिए ही नहीं अपितु विश्व के कई अन्य देशों के आर्थिक–सामाजिक, सांस्कृतिक, सामुदायिक विकास में भागीदार बनेगा।

संदर्भ

1. बर्नाड पी. कौर्बमैन, टेक्सटाईल फाइबर टू फैब्रिक, मैग्रोहिल बुक कम्पनी, सिंगापुर,1985.
2. गुप्ता सुषमा, गर्ग नीरू व सैनी रेनू, परिधान वस्त्र विज्ञान एवं धुलाई, कल्याणी पब्लिशर्स, लुधियाना 2010.
3. जींग जे और पेलथ्रोप एम. टी., (2000), कैश्मेयर की एस सी ए क्रो मॉडरेंट के साथ क्रोम डाइंग, ज. सो. डायरस कल, 116, 91–93.
4. लेविस डी. एम., हौश्रनेट सी, स्मिथ पी. व यान जी (2002), ऐन आयोनिक क्रोम (।।।) समूहों का उपयोग करते हुए ऊन की क्रोम डाइंग, एड. कल. साय. टेक्नोलॉजी 5, 13–17.
5. डेनिंग आर. जे., फ्रीलैंड जी. एन., गैस जी. बी. (1995), एक श्गून्य ए ओ एस लगातार श्रिंक –रेजिस्ट पद्धति का विकास, प्रोस. 9वें अंतर. वूल टेक्सटाइल रिसर्च कॉफ्रेंस, बैला, 1, 208–216.
6. लेविस डी. एम. (1982), वूल की रिएक्टिव डाई के द्वारा डाइंग, ज. सो. डायरस ऐण्ड कलरिस्टज 98, 165–175,

7. क्लार्क एम. (संपा.), हैंडबुक ऑफ टेक्सटाइल ऐण्ड इंडस्ट्रियल डाइंग, भाग–2, ऐप्लिकेशन्स ऑफ डाइंग, वुडहेड पब्लिशिंग लि. 2011.
8. कूक जोर्डन जे., हैंडबुक ऑफ टेक्सटाईल्स फाईबर्स भाग–1, नैचुरल फाईबर्स।
9. फ्रैंक आर. आर. (सम्प.) सिल्क, मोहेयर, कैश्मेयर ऐण्ड अदर लग्जरी फज़ईबर्स।
10. शीरसट्रॉज वी–ए. ऐण्ड कावाको पाउलो ए. (सम्प.), एडवांसेज इन टेक्सटाइल बायोटेक्नोलॉजी।
11. सॉग जी., इम्प्रूविंग कम्फर्ट इन क्लोदिंग।

रबी फसलों में उन्नत कृषि यंत्रों का उपयोग एवं महत्त्व

यू सी दुबे, बी के गुमास्ता, आर एस यादव, तथा आर डी सोनी
केन्द्रीय कृषि अभियांत्रिकी संस्थान, नबीबाग, बोपाल, मध्य प्रदेश

सारांश

फसलों को उगाने, कटाई व कटाई उपरान्त प्रबन्धन में मजदूरों की संख्या बहुत ज्यादा लगती है, जिससे कि उत्पादन की लागत बहुत अधिक हो जाती है। मोल्डबोर्ड हल, प्राथमिक जुताई कार्य हेतु आवश्यक उन्नत कृषि यंत्र है। खेत पर पड़े फसलों के अवशेष को मिटट्ी पलट के द्वारा दबाने के लिये अत्यन्त उपयोगी है। इस यंत्र के द्वारा भूमि की उथली अथवा गहरी जुताई (लगभग 250 मिलीमीटर तक) की जा सकती है। ऐसी भूमि जिसमें पहले कर्षण (टिलेज) क्रियाएँ न हुई हो, सूखी भूमि, पेड़–पौधों की जड़ों की ठूठ हो या खरपतवार अधिक बड़ी तथा घनी हो और जिस भूमि पर मोल्ड बोल्ड हल चलाना मुश्किल हो वहाँ तवादार हल का प्रयोग हितकर होता है। ऐसी फसलें जिनके दाने एक निश्चित दूरी पर लगाने हों अर्थात, लाइन से लाइन तथा बीज से बीज की दूरी निर्धारित कर बुआई करना हो इसके लिये इन्क्लाइन्ड प्लेट प्लान्टर का उपयोग किया जाता है। विभिन्न प्रकार की फसलों के बीजों की बुआई, जब कतार से कतार तथा पौधे से पौधे की दूरी निर्धारित हो इस प्लान्टर से की जा सकती है। इस प्लान्टर की विशेषता यह है कि इनक्लाइन्ड प्लेट प्लान्टर के मुकाबले इसमें 90 प्रतिशत सही मिलती है, ट्रैक्टर चालित प्लान्टर से 6 कतार में तथा बैल चालित प्लान्टर से 3 कतार में बुआई की जाती है। अतः कृषि यंत्रीकरण के माध्यम से कृषि में लागत व मजदूरों की संख्या में 20–25 प्रतिशत तक की कमी की जा सकती है। आधुनिक कृषि यंत्रीकरण के द्वारा फसलों की खेती को अधिक लाभ का व्यवसाय बनाया जा सकता है। वे किसान जो बड़े स्तर पर खेती करते है, उन किसानों के लिये यह स्प्रेयर एक उपयुक्त यंत्र है, क्योंकि इससे एक दिन में 8 से 10 हेक्टेयर फसल पर छिड़काव कार्य किया जा सकता है।

भूमि तैयार करने के यंत्र

ट्रैक्टर चालित मिट्टी पलटने वाला हल (मोल्डबोर्ड प्लाऊ)

मोल्डबोर्ड हल, प्राथमिक जुताई कार्य हेतु आवश्यक उन्नत कृषि यंत्र है। खेत पर पड़े फसलों के अवशेष को मिटट्ी पलट के द्वारा दबाने के लिये अत्यन्त उपयोगी है। इस यंत्र के द्वारा भूमि की उथली अथवा गहरी जुताई (लगभग 250 मिलीमीटर तक) की जा सकती है। सामान्यतः मोल्ड बोर्ड हल, जिसकी काट 600 मिलीमीटर होती है। यह 2 अथवा 3 फालों (2–3 बाटम) वाला हल बाजार में मिलता हैं। 2 फालों वाले हल के शेयर की काट 300 मिलीमीटर तथा 3 फालों वाले शेयर की काट 600 मिलीमीटर जो कि 35 हार्स पावर (एच.पी.) के ट्रैक्टर से चलाये जा सकते हैं। 35 एचपी के ट्रैक्टर से जुताई की औसत क्षमता 0.6 एकड़ अर्थात 0.24 हेक्टेयर प्रति घंटा होती है। किराये के ट्रैक्टर से एक एकड़ खेत की जुताई का खर्च लगभग 750 रूपये आता है।

ट्रैक्टर चालित तवादार हल (डिस्क प्लाऊ)

ऐसी भूमि जिसमें पहले कर्षण (टिलेज) क्रियाए न हुई हो, सूखी भूमि, पेड़–पौधों की जड़ों की ठूठ हो या खरपतवार अधिक बड़ी तथा घनी हो और जिस भूमि पर मोल्ड बोल्ड हल चलाना मुश्किल हो वहां तवादार हल का प्रयोग हितकर होता है। यह हल भी प्रायः 2 अथवा 3 डिस्क (बाटम) में उपलब्ध हैं तथा 35–50 हार्स पावर वाले ट्रैक्टर से चलाये जा सकते हैं। 35 हार्स पावर वाले ट्रैक्टर से एक घंटे में औसत 0.6 एकड़ अर्थात 0.24 हेक्टेयर प्रति घंटा भूमि की जुताई हो सकती है तथा प्रचालन लागत 850 रूपये प्रति एकड़ आती है।

ट्रैक्टर चालित डिस्क हैरो

प्राथमिक जुताई उपरान्त मिट्टी के ठेलों को तोड़ने तथा मिट्टी को भुरभुरी बनाने के लिये यह उपयोगी यंत्र है। जिन स्थानों की मिट्टी हल्की है (उत्तर प्रदेश, पंजाब आदि राज्यों) वहां पर यह यंत्र सीधे तौर पर भूमि तैयार करने के लिये उपयोग में लाया जाता है। परन्तु हमारे यहां, यदि गर्मियों में खेत में हल अथवा बखर चलाया हुआ है तब पहली बारिश के बाद बतर आने पर इसे सीधे ही खेत तैयार करने के लिये प्रयुक्त किया जा सकता है। रबी में भी बखर की हुई जमीन पर पलेवा के बाद इसे खेत तैयार करने के लिये इस्तेमाल किया जाता है। वैसे तो बाजार में कई तरह के डिस्क हैरो उपलब्ध हैं। परन्तु आमतौर पर 14 डिस्कवाला, डबल गैंग, माउंटेड अथवा ट्रेल टाइप हैरो 35 हार्स पावर ट्रैक्टर के लिये उपयुक्त है। इससे 1 हेक्टेयर खेत तैयार करने में 1 घंटा 15 मिनट लगते हैं जिसकी प्रचालन लागत रू. 450 आती है।

ट्रैक्टर चालित स्वीप कल्टीवेटर

खेत तैयार करने हेतु हमारे यहां किसान भाई साधारण तौर पर डकफुट कल्टीवेटर का इस्तेमाल करते हैं। आमतौर पर इस कल्टीवेटर में 450 मिलीमीटर काट वाली 5 तिकोनी पांसे लगी होती हैं, जो मिट्टी की ऊपरी परत काटती हैं। जिससे खेत की नमी उड़ नहीं पाती एवं ऊपरी सतह भुरभुरी हो जाती हैं इस यंत्र से खेत तैयार करने में 35 हार्स पावर ट्रैक्टर से 1 हेक्टेयर में लगभग 1.15 से 1.30 घंटे लगते हैं, तथा प्रचालन लागत 750 रूपये से 800 रूपये प्रति हेक्टर आती है।

ट्रैक्टर चालित रोटोवेटर

भूमि तैयार करने के यंत्रों में एक बहुत उपयोगी यंत्र है रोटावेटर। पंजाब तथा उत्तर जैसे इलाकों की मिट्टी जो कि नरम अथवा दोमट है वहां यह यंत्र बहुत कारगर है। इसे चलाकर एक बार में ही खरपतवार रहित, भुरभुर बीज शैय्या तैयार की जा सकती है, तथा गहराई भी 100 मिलीमीटर से 150 मिलीमीटर तक रखी जा सकती है। परन्तु काली मिट्टी में इससे सीधे तौर पर इस्तेमाल करना मुश्किल है। यदि खेत में एक बार बखर चलाया है तो इससे बीज शैय्या तैयार करने में कोई मुश्किल नहीं होती। इस यंत्र की कीमत लगभग 70,000 रूपये है, तथा इससे खेत तैयार करने में 1 हेक्टेयर में लगभग 1.50 से 2 घंटे लगते हैं। परन्तु बीज शैय्या अति उत्तम तैयार होती है।

पावर टिलर चालिज रोटावेटर

आम, अमरूद, नींबू, पपीता आदि के बाग में पेड़ों के मध्य रिक्त भूमि पर फसल लेने हेतु ट्रैक्टर से कार्य करना संभव नहीं है। परन्तु पावर टिलर से चलने वाले रोटावेटर को इस्तेमाल कर पेड़ों के मध्य की भूमि आसानी से तैयार की जा सकती है। इस यंत्र के कार्य करने का तरीका तथा यंत्र की बनावट ट्रैक्टर चलित रोटावेटर की तरह है। इससे 35 होर्स पावर से लगभग 1 हेक्टेयर बाग की भूमि तैयार की जा सकती है।

ट्रैक्टर चालित रिजर

औषधीय फसलों की रोपाई प्रायः छोटी–छोटी मेढ़ों पर की जाती है। इस यंत्र से खेत में मेढ़ें तैयार करने में आसानी होती हैं यह यंत्र आम तौर पर 3 फालों की दूरी तथा चौड़ाई आवश्यकतानुसार घटाई बढ़ाई जा सकती है। जिस खेत में बखर चलाया हुआ है वहां इससे मेढ़े बनाना अत्यंत लाभकारी होता है। 1 हेक्टेयर खेत में मेढ़े तैयार करने में 1.50 से 2 घंटे लगते हैं। इस यंत्र को 25 हार्स पावर या अधिक के ट्रैक्टर से चलाया जा सकता है।

ट्रैक्टर चालित /बैल चालित बंडफारमर

किसी भी फसल विशेष के लिये छोटी क्यारी अथवा बड़े प्लाट (1 हेक्टेयर) जिनमें सीधे पानी लगाना हो, के लिये चारों तरफ से मेढ़ तैयार करने की आवश्यकता होती है। अतः इस कार्य हेतु, सुविधानुसार हेक्टेयर अथवा बैल चलित बंडफारमर का उपयोग किया जाता है।

ट्रैक्टर चालित डिचर

खेत के सिरों से गहरी नाली बनाकर, खेत में भरने वाले पानी का निकास अत्यंत आवश्यक है। ट्रैक्टर चलित इस डिचर से खेत के सिरों पर 1 से 1.5 फूट गहरी वी आकार की नाली बनाई जा सकती है। इस यंत्र को 35 से 50 हा. पा ट्रैक्टर से चलाया जा सकता है। इस यंत्र की कीमत लगभग 12000 रूपये है।

ट्रैक्टरचालित पोस्ट होल डिगर

कोई भी औषधीय फसलों के वृक्ष लगाने से पूर्व भूमि में लगभग 300–600 मिलीमीटर व्यास का तथा 1000 मिलीमीटर गहरा गड्डा खोदकर उसमें खाद, रसायन, कीटनाशी आदि भरे जाते हैं। तब वृक्ष लगाया जाता है। गढ़ा खोदने में देशी औजारों से काफी श्रम लगता है तथा लागत भी अधिक आती है। परन्तु इस पोस्ट होल डिगर से 300 मिलीमीटर व्यास के 4 गहरे गड्डे 1 मिनट से भी कम समय में खोदे जा सकता है। यह यंत्र 50 हार्स पावर पावर या अधिक के ट्रैक्टर से चलाया जा सकता है।

बुआई कार्यो हेतु प्रयुक्त होने वाले यंत्र

ट्रैक्टर चालित/बैल चालित अवनत (इन्क्लाइन्ड) प्लेट प्लान्टर

ऐसी फसलें जिनके दाने एक निश्चित दूरी पर लगाने हों अर्थात, लाइन से लाइन तथा बीज से बीज की दूरी निर्धारित कर बुआई करना हो इसके लिये इन्क्लाइन्ड प्लेट प्लान्टर का उपयोग किया जाता है। हेक्टेयर चालित प्लान्टर से 6 कतार में तथा बैल चालित प्लान्टर से 3 कतार में बुआई की जाती है। इस संस्थान में मानव के द्वारा बुआई यंत्र उपलब्ध है। (चित्र 1) जिसकी कार्यक्षमता 0.03 हेक्टर /घंटा है।

ट्रैक्टर चालित प्लान्टर की कीमत 45000 रूपये तथा बैल चालित प्लान्टर की कीमत 16000 रूपये है, ट्रैक्टर चालित प्लान्टर की कार्य क्षमता 2.5 घंटे में एक हेक्टेयर तथा बैल चालित प्लान्टर की क्षमता 6 घंटे में एक हेक्टेयर है।

ट्रैक्टर चालित न्यूमेटिक प्लान्टर

विभिन्न प्रकार की फसलों के बीजों की बुआई, जब कतार से कतार तथा पौधे से पौधे की दूरी निर्धारित हो इस प्लान्टर से की जा सकती है। इस प्लान्टर की विशेषता यह है कि इनक्लाइन्ड प्लेट प्लान्टर के मुकाबले इसमें 90 प्रतिशत सही मिलती है, अर्थात किन्हीं भी दो दानों के बीच समान अन्तर मिलेगा। वैक्यूम पद्धति पर बना यह एक विशेष प्रकार का बुआई यंत्र है जिससे महंगे किस्म के बीज की उपयुक्त मात्रा ही बुआई के काम में लाई जा सकती है। इस यंत्र की कीमत लगभग 75,000 रूपये है। विभिन्न फसलों के लिये इसकी कार्य क्षमता 0.4 हेक्टेयर से 0.6 हे प्रतिघंटे तक है।

ट्रैक्टर चालित रेज्ड बेड प्लान्टर

अन्य प्लान्टरों की तरह यह भी बुआई के लिये एक अच्छा यंत्र है। विशेष परिस्थितियों में अर्थात ऐसी भूमि जहाँ पानी भर जाता है, अथवा पहाड़ी क्षेत्र जहाँ फसल भूमि सतह से ऊपर, मिट्टी उठाकर बोई जाती है, वहाँ के लिये यह प्लान्टर उपयुक्त है। इसमें मिट्टी उठाकर बेड बनाने के लिये रिजर लगे हैं तथा, उन रिजेज पर बुआई हेतु, फरो ओपनर लगे हैं। इस यंत्र में खाद व बीज के लिये अलग–अलग बाक्स दिये गये हैं यंत्र की कीमत लगभग 35000 रूपये है तथा कार्यक्षमता 0.6 हेक्टेयर प्रतिघंटा है।

ट्रैक्टर चालित सब्जी रोपाई यंत्र

केन्द्रीय कृषि अभियांत्रिकी संस्थान सब्जी या अन्य फसलों की रोप ट्रान्सप्लान्ट करने हेतु एक सेमी आटोमेटिक रोप ट्रान्सप्लान्टर विकसित किया है। इसे 25 से 35 हार्स पावर ट्रैक्टर से चलाया जा सकता है। इस प्लान्टर से एक साथ दो कतारों में रोपाई की जा सकती है। प्लान्टर पर दो सीटें लगी हैं जिन पर दो व्यक्ति बैठते हैं। व्यक्ति प्लान्टर पर रखी पौध ट्रे से उठा–उठा कर मशीन में डालते हैं तथा, प्लान्टर जिसमें मेढ़ बनाने के लिये रिजर लगे हैं, तथा कार्य क्षमता एक घंटे में लगभग 0.3 हे की रोपाई हो सकती है।

स्वचालित सब्जी रोपाई यंत्र

विदेशी तकनीक पर आधारित, एक कतारी सेमी आटोमेटिक रोप प्लान्टर एक पावर टिलर नुमा मशीन पर बना है। यह मशीन मिट्टी के तेल से चलाई जाती है। मशीन में पौध से पौध की दूरी बढ़ाने घटाने का भी प्रावधान है। मशीन की कीमत अभी निर्धारित नहीं है। इसकी कार्य क्षमता लगभग 0.15 हेक्टेयर प्रति घंटा है।

निदाई कार्यों में प्रयुक्त होने वाले यंत्र

हस्तचालित व्हील हो

हाथ से चलने वाले निराई के औजारों में एक औजार है ट्वीन व्हील हो। के.कृ.अ.सं. में विकसित किया गया औजार अत्यंत कारगर सिद्ध हुआ है। लम्बा हैण्डल होने के कारण कार्य करने वाले पर अधिक बोझ नहीं पड़ता। दो पहिये होने के कारण यंत्र का संतुलन बना होता है। एडजस्टेबल ब्लेड होने के कारण व्यक्ति अपनी ऊंचाई के अनुसार इसे एडजस्ट कर सकता है। इस यंत्र की कीमत 1000 रूपये है।

स्वचालित पावर वीडर

मिट्टी के तेल से चलने वाला तीन कतारों वाला स्वचालित पावर वीडर विकसित अनाज/दलहन/तिलहन सब्जी तथा अन्य फसलें जो कतारों में बोई जाती हैं, की निराई इस मशीन से की जा सकती है। पावर टिलरनुमा फ्रेम पर एक 3.5 हार्स पावर शक्ति का मिट्टी के तेल से चलने वाला पेट्रोल से स्टार्ट इंजन लगा है। फ्रेम के पीछे की ओर एडजस्ट की जाने वाली 150–200 मिलीमीटर की तीन स्वीप लगी हैं। इसे एक व्यक्ति कतारों के बीच चलाता है। पहिये भी कतारों के अनुसार दूर या पास किये जा सकते हैं। मशीन की कीमत लगभग 35,000 रूपये तथा इसकी कार्य क्षमता 0.25 से 0.4 हेक्टेयर प्रति घंटा है।

पौध संरक्षण हेतु प्रयुक्त होने वाले छिड़काव एवं भुरकाव यंत्र

ट्रैक्टरमाउंटेड स्प्रेयर

वे किसान जो बड़े स्तर पर खेती करते है, उन किसानों के लिये यह स्प्रेयर एक उपयुक्त यंत्र है, क्योंकि इससे एक दिन में 8 से 10 हेक्टेयर फसल पर छिड़काव कार्य किया जा सकता है।

ट्रैक्टर के हाइड्रालिक लिफ्ट पर माउंट होने वाली फाइबर प्लास्टिक की टंकी होती है जिसकी क्षमता लगभग 200 ली. होती है। ट्रैक्टर की पीटीओ से एक रेसीप्रोकेटिंग पम्प को जोड़ा जाता है, जो ट्रैक्टर के हिच पर लगा होता है। जिस फ्रेम पर टंकी माउंट होती है उसके पीछे के हिस्से में 14 नोजलों की एक बुम होती है जिसकी लम्बाई लगभग 6000 मिलीमीटर होती है तथा यह फोलिंडग टाइप होती है छिड़काव हेतु खेत में जब ट्रैक्टर चलाया जाता है तब पीटीओ पर लगा पम्प टंकी में से दवा के घोल को खींचता है

मिस्ट ब्लोअर

इसे साधारण तौर पर पीठवाही इंजन युक्त मिस्यट ब्लोअर के नाम से जाना जाता है। हल्के पाइप के छोटे से फ्रेम पर एक 25.35 सी.सी. का 2 स्ट्रोक पेट्रोल इन्जन लगा होता है इस इंजन से एक सेन्ट्रीफयूगल पंखा जुड़ा होता है। फेम के ऊपरी हिस्से में प्लास्टिक की टंकी होती है जिसमें दवा का घोल भरा जाता है। पंखा जिस हाउसिंग में होता है उससे एक मोटा प्लास्टिक पाइप (फ्लेकिसबल) जुड़ा होता है। घोल की टंकी से एक बारीक पाइप टी, की सहायता से जुड़ा होता है जिसका दूसरा सिरा, मोटे पाइप के सिरे पर आकर खुलता है। जब इन्जन चालू होता है तब पंखा बहुत तेजी से हवा फेकता है यह हवा मोटे पाइप से होती हुई बाहर निकलती है। मोटे पाइप के सिरे पर, जुडे बारीक पाइप से दवा का घोल बूंद–बूंद कर गिरता रहता है। यह बूदें निकलती हुई लेज हवा के संपर्क में आकर अत्यन्त सूक्षम कणों में विभाजित हो जाती है तथा धुंध का रूप ले लेती है। यह स्प्रेयर सब्जियों, बागों, तथा वृक्षों पर छिड़काव करने के लिये सुविधा जनक है, इस यंत्र की कीमत लगभग 18000–20000 रूपये है।

वृक्ष छिड़काव यंत्र

मजबूत पाइप के फ्रेम पर बना एक छिड़काव यंत्र, वृक्षों पर छिड़काव करने के लिये उपयुक्त है। पाइप के फ्रेम पर 3 हार्स पावर का 4 स्ट्रोक पेट्रोल इन्जन लगा होता है। यह इंजन एक हाउसिंग के अन्दर सेन्ट्रीयूगल पंखे को तेजी से घुमाता है। पंखे की हाउसिंग के निकासी सिरे पर नोजल लगा होता है। फ्रेम पर 10–90 लीटर क्षमता वाली टंकी लगी होती है जिसमें दवा का घोल भरा जाता है। एक छोटे से पम्प द्वारा, इस टंकी से दवा का घोल खीच कर नोजल तक भेजा जाता है। ब्लोअर से निकलती तीव्र हवा से दवा का घोल अत्यंत सूक्षम कणों में परिवर्तित कर ऊपर की ओर फेकता है, जो 6000–8000 मिलीमीटर ऊपर तक जाते है, जिससे वृक्षों पर छिड़काव होता है। इस यंत्र को वृक्ष के नीचे रखकर चलाया जाता है। इससे एक दिन में 3–4 हेक्टेयर क्षेत्र का छिड़काव हो सकता है।

यह यंत्र वजन में अत्यन्त हल्के होते हैं तथा इससे दवा के सान्द्र घोल का ही छिड़काव किया जाता है। एल्युमीनियम का एक हैन्डलनुमा पाइप होता है जिसके एक सिरे पर मुठिया लगी होती है तथा दूसरे सिरे पर एक छोटी सी मोटर लगी होती है, जिससे एक डिस्क जुड़ी होती है। उसी सिरे पर दवा का सान्द्र घोल रखने के लिये 1 लीटर क्षमता की प्लास्टिक बोतल होती है। मोटर चालने के लिये पीठ अथवा कंधे पर टांगने वाली 6 वोल्ट बैटरी होती है। हैण्ड में लगे स्वीच को दबाने पर मोटर अत्यंत तेजी से घूमती है, जो डिस्क को घुमाती है बोतल पर लगी 'टी' खोल देने पर दवा का घोल बूंद–बूंद कर डिस्क पर गिरता है, जिससे बूंदे अत्यंत बारीक कणों में बदल जाती है, एवं पौधों पर गिरती है। इसे एक व्यक्ति चलाता है। नर्सरी आदि में उपयोग के लिये यह उत्तम यंत्र है।

पीठवाही/नैप सैक स्प्रेयर

हमारे यहां के किसान साधारण तौर पर इसी हस्त चालित स्प्रेयर का इस्तेमाल करते है। पीठ पर लाद कर हाथों से चलाने वाला यह स्प्रेयर जिसमें एक प्लास्टिक की टंकी होती है। इस टंकी के अन्दर एक प्लंजर टाइप पम्प लगा होता है। जिसे हाथों से चलने वाले हैण्डल से ऊपर नीचे चलाया

जाता है, जो कि इस पम्प से लगा होता है। इस पम्प से एक प्लास्टिक पाइप जुड़ा होता है। जिसका दूसरा सिरा प्लास्टिक की बूम से जुड़ा होता है। इस बूम में एक नोजल लगा होता है जिसका वाल्ब चलाने वाले की ऊंगलियों के पास बूम के हैण्डल पर लगा होता है। जब हैण्डल चलाया जाता है तब टंकी के अन्दर चलने वाला पम्प टंकी से दवा का घोल खींच कर नोजल तक भेजता है जहां से छिड़काव होता है। टंकी की क्षमता आम तौर पर 16 लीटर होती है। दौ नैपसैक स्प्रेयर को 8 नोजलो की बूम से जोड़ कर भी दो व्यक्ति इन्हें चला सकते हैं, जिससे अधिक क्षेत्र में छिड़काव किया जा सकता है।

ऑटोमाइजर

1 अथवा 2 लीटर साइज में उपलब्ध यह ऑटोमाइजर (छिड़काव यंत्र) नर्सरी के लिये बहुत उपयोगी है। इसमें एक छोटी टंकी होती है जिसमें दवा का घोल भरा जाता है। एक छोटा हाथ में चलने वाला पम्प होता है जिसे चला कर टंकी में हवा भर दी जाती है। टंकी के ऊपरी भाग में एक नोजल व एक वाल्व हेण्डल लगा होता है। वाल्व दबाने पर दवा के घोल की अत्यन्त बारीक फुहार निकलती है जिससे छोटी–छोटी क्यारियों में छिड़काव किया जाता है।

हैण्ड रोटरी डस्टर

पाउडर वाली दवाओं के भुरकाव के लिये हाथ से चलने वाला यह रोटरी डस्टर सभी फसलों के लिये उपयोगी है। इस यंत्र को पट्टों की सहायता से सीने के नीचे पेट पर लटकाकर चलाया जाता है। इस यंत्र में पाउडर रखने के लिये एक डिब्बा होता है तथा भुरकाव करने के लिये एक पंखा लागा होता है। हैण्डल चलाने पर यह पंखा डिब्बे से पाउडर खींच कर हवा में उड़ाता है। पंखे पर एक चौड़े मुँह वाला पाइप लगा होता है जो पाउडर को नीचे की ओर गिरने के लिये दिशा देता है। डिब्बे में लगे गेट वाल्व से छिड़काव किये जाने वाले पाउडर की मात्रा घटाई या बढ़ाई जा सकती है।

शक्ति चालित डस्टर

ट्रैक्टर अथवा इंजिन से चलने वाले अनेकों प्रकार के डस्टर बाजार में उपलब्ध है। परन्तु सभी हैण्ड रोटरी डस्टर के सिद्धान्त पर कार्य करते हैं। इनमें पाउडर (दवाई) रखने के लिये एक कन्टेनर होता है तथा हवा फेंकने के लिये एक पंखा होता है तो इंजिन अथवा ट्रैक्टरकी पीटीओ शाफ्ट से चलता है। यह पंखा कन्टेनर से पाउडर खींच कर पाइप की सहायता से फसल अथवा पेड़ पौधों पर समान रूप से गिराता है।

खुदाई के यंत्र

मानव के द्वारा खुदाई यंत्र किसानों के पास उपलब्ध है। (चित्र 6) जिसकी कार्यक्षमता बहुत कम होती है। ट्रैक्टर से चलने वाला खुदाई यंत्र जिसकी माप 1300 मिलीमीटर होती है। (चित्र 7) यह 150–200 मिलीमीटर की गहराई से औषधीय फसलों की खुदाई कर सकता है। इसकी कार्यक्षमता 0.13–0.15 हेक्टेयर/घंटा है।

चित्र 1. मानव द्वारा औषधीय फसलों की बुआई।

चित्र 2. मानव के द्वारा औषधीय फसलों का बुआई यंत्र।

चित्र 3. ट्रैक्टर चलित औषधीय पौधों के लिए रेज्ड बेड यूनिट।

चित्र 4 तथा 5. ट्रैक्टर चलित औषधीय छोटे–छोटे औषधीय बीजों के लिए प्लान्टर।

चित्र 6. मानव के द्वारा औषधीय फसलों की खुदाई यंत्र।

चित्र 7. ट्रैक्टर चलित औषधीय फसलों की खुदाई यंत्र।

दैहिक विभेदित कोशिकाओं का नवीनीकरण

ओ पी जांगिड, सुनिता गौतम, निधि उडसरिया, अंबिका यादव, गोविन्द गुप्ता,
जोनी मिड्ढा, तथा मिथिलेश शर्मा
[illegible]

सारांश

जंतुओ मे विभेदित कोशिकाओं के लक्षण परिवर्तन की संभावनाओं का अध्ययन करना एवं ज्ञात करना कि क्या कोशिकाओं का नवीनीकरण कर नये अंग का निर्माण किया जा सकता है? इस विषय में सामान्य धारणा है कि प्रत्येक दैहिक कोशिका अपने कार्य के प्रति विभेदित होकर, विशिष्ट लक्षण युक्त होकर कार्य संपूर्ण करती है और अपरिवर्तनशील हो जाती है।

प्रस्तावना

जन्तुओं में दैहिक क्रियाशील कोशिकाएं सामान्यतः अपनी विशिष्टता बनाए रखती है। किन्तु कुछ विशेष बिमारी (पैथोलॉजिकल) अवस्था में जैसे कैन्सर व टयूमर निर्माण स्थिति में कुछ कोशिकाओं में परिवर्तन होना पाया जाता है। प्रकृति में कुछ जन्तु जैसे न्यूट में पुतली की वर्णक कोशिकाओं से पारदर्शी लेंस का निर्माण होता है, जिसे ट्रांसविभेदन का प्रचलित उदाहरण माना जाता है। ट्रांसविभेदन के अध्ययन से पता चला है कि विभेदित कोशिकाएं अपना निर्धारित लक्षण खो देती है। और अन्य विशिष्ट कोशिका का लक्षण विकसित कर भिन्न प्रकार की कोशिकाओं की विशिष्टता प्राप्त कर लेती हैं। जैसे पुतली की वर्णक कोशिकाओं के द्वारा पूर्णतया भिन्न प्रकार की लेंस कोशिकाओं का निर्माण करना (Eguchi G & Kodama R 1995; Tsonis et al 2000)। इन विट्रो अध्ययन से भी यह पता चला है कि पुतली की वर्णक कोशिकाओं के द्वारा न केवल मेंढक आदि में लेंस का निर्माण होता है बल्कि स्तनियों की कोशिकाओं द्वारा लेंस का निर्माण होना पाया गया है। (Tsonis et al 2001, Jangir et al 2005, Sharma et al 2010) Ferraris et al (2000), Pearton et al (2004) के अनुसार केन्द्रिय कॉर्नियल उपकला जिसमें केवल विभेदित कोशिकाए पायी जाती है, के द्वारा रोंम एवं इन्टरफोलीक्युलर उपकला का निर्माण किया जाता है। यह निर्माण भ्रूणीय रोंम की डर्मिस के प्रभाव से होता है। अतः उपरोक्त उदाहरण से यह प्रतीत होता है कि विभेदित कोशिकाओं के भाग्य को परिवर्तित किया जा सकता है और भिन्न प्रकार की कोशिकाओं का निर्माण सम्भव है।

अनेक वैज्ञानिकों ने कॉर्नीया से लेंस का निर्माण होने का अध्ययन किया है (Filoni et al 1982 Bosco 1988) विटामिन ए एवं इसके व्युत्पन्न रेटीनोएड आदि सफल प्रारूप रसायन पाए गए हैं, जिसके द्वारा ऊतकों एवं कोशिकाओं के भाग्य परिवर्तन को प्रेरित किया जाता है। मेंढक की अनेक जातियों में विटामिन ए के प्रभाव से मेंढक की पूंछ से टांगो का विकास होना पाया गया है (Mohanty-Hejmadi et al 1992; Maden 1993)।

वर्तमान शोध कार्यों मे देखा गया है कि दैहिक विभेदित कोशिकाओं का नवीनीकरण एवं अविभेदिकरण किया जा सकता है और विटामिन ए इस प्रक्रिया में एक सफल प्रारूप के रूप में कार्य करता है।

सामाग्री एवं विधी

शोध कार्य के लिये मेंढक के टेडपोल (मेंढक की शिशु अवस्था) की नेत्र कोशिकाओं को प्रयोग में लाया गया है। प्रयोग दो चरणो में पूर्ण किया गया।

प्रथम चरण मे टेडपोल के नेत्र से लेंस निकाला गया और फिर जंतुओ को विटामिन ए द्वारा उपचारित किया गया।

द्वितीय चरण मे टेडपोल के नेत्र गोलको से लेंस निकालकर लेंस रहित नेत्र गोलक का घोल बनाया गया और ग्राही टेडपोल की पूंछ मे प्रत्यारोपित किया गया तथा जंतुओ को विटामिन ए द्वारा उपचारित किया गया। परीक्षण की अवधि 20 दिन की रखी गयी। उपचारित एवं अनउपचारित शिशु मेंढकों को अधपका पालक भोजन के रूप में दिया गया।

परिणाम

शोध कार्य के परिणाम तालिका नं 1 मे दर्शायें गयें हैं। परिणामो से ज्ञात होता है कि–

- टेडपोल की पुतली कोशिकाओं एवं कॉर्निया कोशिकाओं के द्वारा लेंस का निर्माण किया जाता है। अर्थात इस जाति के मेंढक के टेडपोल में लेंस पुनरूद्भवन की क्षमता पायी जाती है (चित्र 1,2)।

- पुनरूदभवन की क्षमता आयु से संबंधित होती है। जैसा कि टेबल में दर्शाया गया है, जैसे जैसे आयु में वृद्धि होती है पुनरूदभवन की क्षमता कम होती जाती है (3 toe stage tadpoles = 35% & 5 toe stage tadpoles = 20%)।

- विटामिन ए द्वारा लेंस पुनरूदभवन की क्षमता को बढाया जाता है। किन्तु पुनरूद्भवन की क्षमता आयु के साथ कम होती जाती है (तालिका 1)। यह ट्रेंड अनउपचारित जंतुओं के समान उपचारित जंतुओं में भी देखा गया है।

- शोध के द्वितीय चरण के प्रयोग परिणाम भी दैहिक विभेदित कोशिकाओं का नवीनीकरण संभव है को प्रमाणित करते है। प्रयोग परिणामों से ज्ञात होता है कि विशेष प्रायोगिक परिस्थितियों में नेत्र ऊतक घोल से लेंस, रेटिना एंव पूर्ण नेत्र का निर्माण टेड्पोल की पूंछ पर भी विकसित किये जा सकते हैं चित्र (3,4,5,6,7)। अतः लेंस आदि के निर्माण के लिये नेत्र का होना ही आव यक नही है।

- विटामिन ए द्वारा दैहिक विभेदित कोशिकाओं के नवीनीकरण को प्रेरित किया गया है। और पूंछ में प्रत्यारोपित नेत्र ऊतक घोल भी अविभेदिकरण कर कोशिकाओं को नयी दिशा एवं नये प्रोग्राम प्रक्रिया के लिये प्रोत्साहित कर अलग सेल लाइन का निर्माण किया जाता है और नये अंग का निर्माण प्रारंभ हो जाता है। तालिका 1 मे दर्शाया गया है कि प्रत्यारोपित कोशिकाओ से ना केवल लेंस का ही निर्माण होता है बल्कि रेटिना एवं पूर्ण नेत्र भी विकसित हो जाते है (चित्र 6,7)। इस प्रकार का परिवर्धन विटामिन ए द्वारा उपचारित जंतुओ में ही पाया गया है। अनउपचारित जंतुओं में प्रत्यारोपित घोल कोशिकाओं से लेंस का निर्माण होना पाया गया है।

तालिका 1. दैहिक विभेदित कोशिकाओं के नवीनीकरण पर विटामिन ए का प्रभाव।

Series	Developmental stage of tadpoles employed	Group	Day of preservation	Number of animals preserved	Number(%)of structure developed				
					Lens	Retina	Whole eye	Limb	Unidentified structure
SI Tadpoles with Lentec-tomized right eye	3 toe stage young tadpole	S-I-A Con-trol	3 7 20	5 5 10	- 2 5 (35%)	- - -	- - -	- - -	- - - 65%
		S-I-B Vit. A treated	3 7 20	5 5 10	- 4 8 (60%)	- - -	- - -	- - -	- - - 40%
	5 toe stage mature tadpoles	S-I-C Con-trol	3 7 20	5 5 10	- - 4 (20%)	- - -	- - -	- - -	- - - 80%
		S-I-D Vit. A treated	3 7 20	5 5 10	- 2 8 (50%)	- - -	- - -	- - -	- - - 50%
SII Tadpoles bearing meshed ocular tissue explants in their tail.	3 toe stage young tadpole	S-II-E Con-trol	3 7 20	5 5 10	- - 2 (10%)	- - -	- - -	- - -	5 5 8 (90%)
		S-II-F Vit. A treated	3 7 20	5 5 10	- 2 2 (20%)	- 1 2 (15%)	- 1 2 (15%)	- 1 4 (25%)	5 0 0 (25%)
	5 toe stage mature tadpoles	S-II-G Con-trol	3 7 20	5 5 10	- - 2 (10%)	- - -	- - -	- - -	5 5 8 (90%)
		S-II-H Vit. A treated	3 7 20	5 5 10	- 2 2 (20%)	- 2 - (10%)	- - 2 (10%)	- - 3 (15%)	5 4 0 (45%)

निष्कर्ष एवं उपयोगिताएं

वर्तमान अध्ययन से प्राप्त परिणामों में विटामिन ए के प्रभाव से विभेदित दैहिक कोशिकाओं का नवीनीकरण होने के स्पष्ट प्रमाण मिले हैं। प्राप्त परिणामो से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता

है कि लेंस पुनरूदभवन में पुतली वर्णक कोशिकाओं एवं कॉर्निया की विभेदित कोशिकाओं का नवीनीकरण व अविभेदन होता है। और अविभेदित कोशिकाओं का पुनः विभेदिकरण होता है। अंततः नये अंग लेंस का निर्माण होता है।

परीक्षण के दूसरे चरण के परिणाम इसे और अधिक स्पष्ट करते हैं जिसमें नेत्र ऊतक घोल टेडपोल की पूंछ में प्रत्यारोपित करने पर लेंस, रेटिना के अतिरिक्त पूर्ण नेत्र का भी निर्माण हो जाता है। Ito et al (1999) आदि वैज्ञानिको ने इस बात की पुष्टी की थी कि न्यूट जन्तु की टांग की ब्लास्टिमा में पुतली की वर्णक कोशिकाओं का प्रत्यारोपित लेंस का निर्माण होता है। वर्तमान अध्ययन से प्राप्त परिणामों के समान अनेक वैज्ञानिको (Freeman G (1963), Filoni et al (1997), Henry & Elkins (2001)) ने भी यह जाना था कि कॉर्निया कोशिकाओं द्वारा Xenopus laevi में लेंस का निर्माण किया जा सकता है। कॉर्निया की इस योग्यता को इसके भ्रूणीय क्षमता को माना गया है। जैसा कि विदित है भ्रूणीय परिवर्धन में कॉर्निया एंव लेंस एक ही समूह की कोशिकाओं से परिवर्धित होते है। इसलिये संभवतः कॉर्निया में लेंस निर्माण करने वाले भ्रूणीय कारक उप. स्थित हों और निरीक्षण परिस्थितियो में हो सकता है ये कारक प्रेरित होकर लेंस निर्माण के लिये उत्तर्दायी हों।

किन्तु प्रत्यारोपित ऊतक घोल पूर्ण नेत्र का निर्माण किन कारको की प्रेरणा से हुआ होगा इसका स्पष्टीकरण अभी संभव नही है। इस विषय को और अधिक विस्तार में अध्ययन करने की आवश्यकता है।

इस वर्तमान अध्ययन से यह तो स्पष्ट होता है कि दैहिक विभेदित कोशिकाओं का नवीनीकरण संभव है। और यदि विटामिन ए के समान कोई अन्य सफल प्रारूप रसायन मिल जायें तो किसी भी प्रकार के अंगो का निर्माण आवश्यकतानुसार किये जाने की संभावनाएं बन सकती है।

संदर्भ

1. Eguchi G & Kodama R (1995). From lens regeneration in the newt to in-vitro trans-differentiation of vertebrate pigmented epithelial cells. *Semin Cell Biology* **6** 143–149.
2. Tsonis P A, Trombey M T, Rowland T, Chandraratna R A & Tsonis D R (2000). Role of retinoic acid in lens regeneration. *Developmental Dynamics* **219** 588–593.
3. Jangir O P, Suthar P, Shekhawat D V S, Acharya P, Swami K K & Sharma M (2005).The "Third Eye" – A new concept of trans-differentiation of pineal gland into median eye in amphibian tadpoles of Bufo melanostictus. *Indian Journal of Experimental Biology* **43** 671-678.
4. Sharma M, Jangir O P, Jhajharia S, Singh S, Singh V & Nagal A (2010). Trans-diffirentiation of iris pigmented epithelial cells of Euphylyctis cyanophylictis tadpole into lens in vitro. Indian, *Journal of Experimental Biology* **48** 17-25.
5. Pearton D J, Ferraris C & Dhouailly (2004). Trans-differentiation of corneal epithelium: evidence for linkage between segregation of epidermal stem cells and the induction of hair follicles during embryogenesis. *International Journal of Devlopmental. Biology* **48** 197-201.
6. Ferraris C, Chevalier & Favier B (2000). Adult corneal epithelium basal cells possess the capacity to activate epidermal, pilosebaceous and sweat gland genetic programs in response to embryonic dermal stimuli. *Development* **127** 5487–5495.
7. Filoni S, Bosco L & Cioni C (1982). The role of neural retina in lens regeneration from cornea in larval Xenopus laevis. Acta Embryology Morphology & Experimental. 3 15–28.

8. Bosco L (1988). Trans-differentiation of ocular tissue in larval Xenopus laevis. *Differentiation* **39** (1) 4-15.
9. Mohanty-Hejmadi P, Dutta S K & Mahapatra P (1992). Limbs generated at the site of tail amputation in marbled ballon frog after vitamin A treatment. *Nature* (London) **355** 352–353.
10. Maden M (1993). The homeotic transformation of tails into limb in Rana temporaria. Devlopmental *Biology* **159**(2) 379- 391.
11. Ito M, Hayashi T, Kuroiwa A & Okamow M (1999). Lens formation by pigmented epithelial cell segregate from dorsal iris implemented into limb blastema in the adult newt. *Dev Growth Differ* **41** 429-440.
12. Freeman G (1963). Lens regeneration from the cornea in Xenopus laevis. Journal of Experimental *Zoology* **154**(1) 39–66.
13. Filoni S, Bernardini S, Cannata SM, D' Alessio A (1997). Lens regeneration in larval Xenopus laevis; Experimental analysis of the decline in the regenerative capacity during development. Devlopmental *Biology* **187**(1) 13-24.

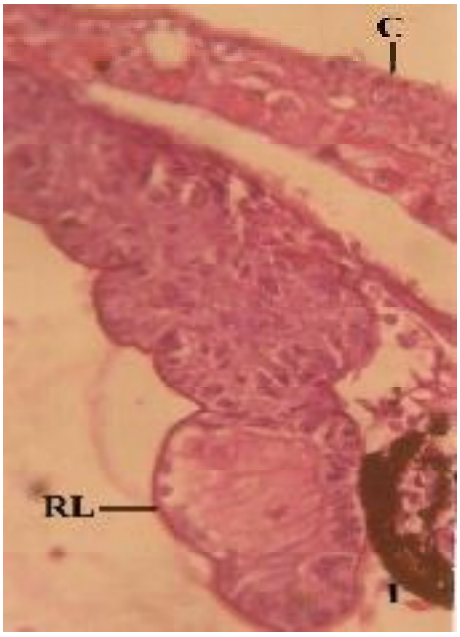

Figure 1. Microphotographs of a section passing through the lentectomized eye of 7day vitamin A treated tadpole. Note lens forming cells originating from the innerlayer of outer cornea (100X).

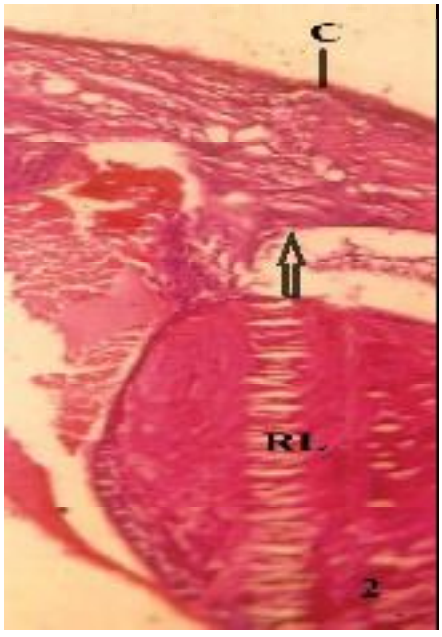

Figure 2. Microphotograph of a section passing through the lentectomized eye of 20 day vitamin A treated tadpole Note regenerated lens showing connection with cornea (→) (400X) Regenerated lens showing well differentiation of lens fibers.
(→) lens forming cells originating from cornea

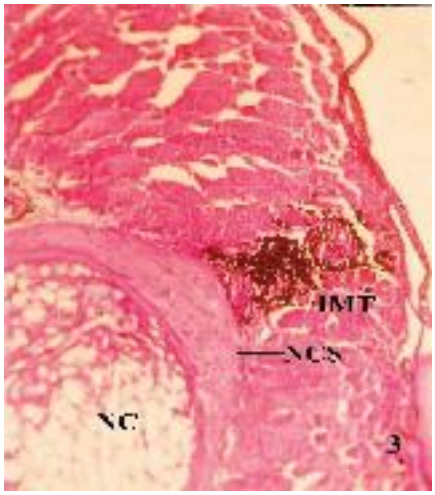

Figure 3. Microphotograph of a section passing through the ocular graft in the tail of 3 day vitamin A treated tadpole. Note close association and involvement of notochordal sheath tissue in the differentiation of explants. Depigmentation (→) of pigmented epithelial cells begin. (40X)

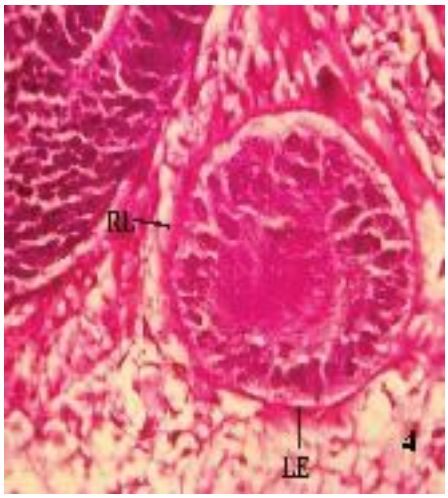

Figure 4. Microphotograph of a section passing through the grafts in the tail of 20 day vitamin A treated tadpole.

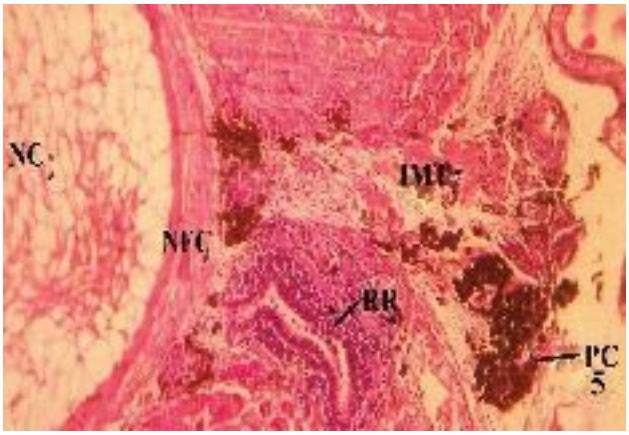

Figure 5. Microphotograph of a section passing through the ocular graft differentiating into retina in the tail of 20 day vitamin A treated tadpole. (40X)

14. Henry J J & Elkins M B (2001). Cornea-lens trans-differentiation in the anuran, Xenopus tropicalis. *Devlopment Genes & Evolution* **211**(8-9) 377-87.

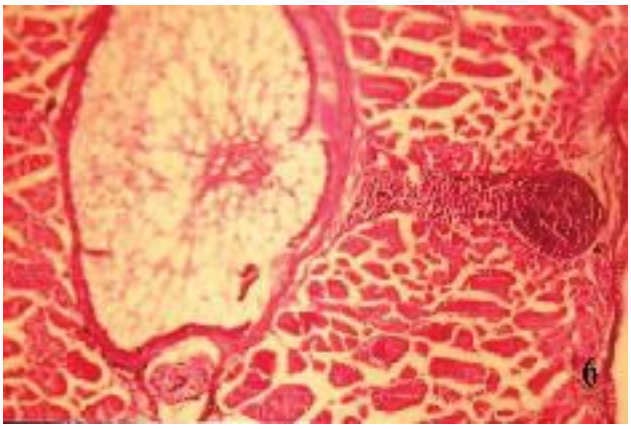

Figure 6. Microphotograph of a section passing through the newly developed complete eye from the ocular graft in the tail of 20 day vitamin A treated tadpole. Note eye like structure trans-differentiated from the graft linked with notochordal sheath by a stalk like structure. (40X)

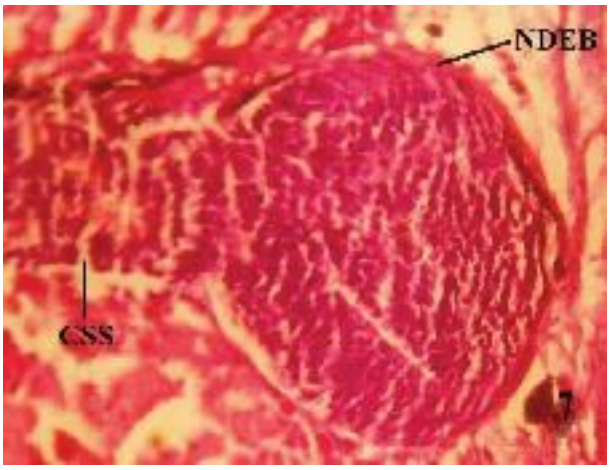

Figure 7. shows the magnified view of figure 8. (100X)

क्या शैक हमारी प्राचीन इमारतों को हानि पहुँचा रहे हैं?

विन्ध्येश्वरी उपाध्याय, दलीप कुमार उप्रेती, तथा सुमन त्रिवेदी
राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान, लखनऊ, उत्तर प्रदेश

किसी स्थान में पादप वंशक्रम (सक्सेशन) में शैक या लाइकेन अपना प्रथम स्थान रखते हैं। राष्ट्र भाषा हिंदी में लाइकेन को ''शैक'' शब्द द्वारा जाना जाता है, वहीं देश की अलग–अलग भाषाओं में इसे दरगफूल, झाऊ, छरीला, पत्थरचट्टा एवं मेहंदी भी कहा जाता हैं। पृथ्वी का 7 प्रतिशत भाग शैक द्वारा आच्छादित है, यह पौधों का वह वर्ग है, जो द्वैध प्रकृति लिए हुए शैवाल तथा कवक (शै+क=शैक) का स्थाई सहजीवी हैं। शैक का प्रमुख भाग कवक द्वारा निर्मित होता हैं, जो की शैक का 90–94 प्रतिशत भाग बनाता है एवं शेष भाग शैवाल जो शैक में केवल 5–10 प्रतिशत की अल्प मात्रा में उपस्थित होता है, हरिताणु (क्लोरोप्लास्ट) की उपस्थिति से भोजन निर्माण करता है। कवक शैवाल द्वारा निर्मित भोजन पर आश्रित होकर जीवनाधार को मजबूती से पकड़े रखता है। शैक अपनी आंतरिक जटिल संरचना की विशेषताओं के कारण अत्यंत विषम जलवायु वाले क्षेत्रों में भी उगने में सक्षम होते हैं। शैक विषम परिस्थितियों का आसानी से सामना कर विभिन्न जीवनाधारों जैसे वृक्षों के तनों, पत्तियों, भूतल, प्राचीन इमारत, चट्टान एवं घरों की छत एवं कोनों पर उग सकते हैं। यद्यपि शैक मुख्यतः धवल रंग के होते हैं, तथापि कुछ शैक आकर्षक लाल, नारंगी, बैंगनी, नीले एवं भूरे रंग के भी पाए जाते है। कैलोप्लाका, केंडेलेरिया, एस्पीसिलिया, एवं जेंथोरिया समूह के शैकों में उपस्थित एन्थ्राक्युनॉन के कारण वे चमकदार पीले–नारंगी या लाल–नारंगी रंग के हो जाते हैं। शैक का अस्तित्व समाप्त हो जाता है।

शैक चट्टानों पर वनस्पतियों का प्रारंभकर्ता, मृदानिर्माण में सहायक, कीटों तथा अन्य छोटे जीवों का भोजन, औषधियों, प्रतिजैविक, चर्मशोधन, एंटीट्युमर, एंटीकैंसर, सुगन्धित पदार्थ (इत्र), प्राकृतिक रंजक (डाई), प्रदूषण मापन के लिए जाने जाते हैं।

कुछ शैक प्रकृति के विलक्षण पादपों में से एक है, जो एक हजार वर्ष में केवल एक मिलिमीटर वृद्धि करते है। अत्यंत धीमी गति से वृद्धि करने वाले शैक अत्यंत ठंडे इलाकों में मुख्यतः उन चट्टानों पर उगते हैं, जो वर्ष के अधिकांश समय बर्फ से ढकी रहती हैं। इनके सुकाय गोलाकार फूल के आकार के होते हैं, एवं पत्थर पर उगने के कारण इसे ''पत्थर का फूल'' भी कहा जाता है। वर्षा ऋतु में शैक गहरे हरे रंग के कारण अन्य पौधों के बीच आसानी से दिखाई देते हैं। दूसरे पौधों की अपेक्षा शैक हवा की नमी को अधिक मात्रा में अवशोषित करने की क्षमता रखता है। कुछ शैक प्रजातियों में 300 प्रतिशत तक जलधारण करने की क्षमता होती है।

इमारतों पर शैक प्रायः खड़ी दीवारों, रेलिंग एवं छत की सतह पर पाए जाते हैं। किसी इमारत की निर्माण सामग्री, उसकी बनावट तथा उस स्थान की जलवायु उस इमारत के ऊपर उगने वाले शैकों की उपस्थिति को निश्चित करते हैं। अन्य पौधे जहाँ ग्रीष्म ऋतु में सूख जाते हैं, वही शैक अपने शरीर में संचित नमी का उपयोग कर सूखे वातावरण में भी लम्बे समय तक ज्यों के त्यों बने रहते हैं। शीत ऋतु में शैक ओस और कुहरे की नमी को ग्रहण कर जीवित रहते है। इमारत की निचली सतह भूमि के संपर्क में होने के कारण नम होती है, जिसके कारण शैक की वृद्धि ऊपरी सतह की अपेक्षा निचली

सतह पर अधिक होती है। शैक विभिन्न प्रकार की इमारतों पर उगकर उन पर अपने शरीर से रसायनिक पदार्थ स्त्रावित करते हैं, जो धीरे–धीरे सतह का क्षरण प्रारंभ कर देते है।

किसी स्थान में शैक की उपस्थिति को उस स्थान का तापमान एवं आर्द्रता प्रभावित करती है। इसके अतिरिक्त इमारत की निर्माण सामग्री, भौतिक एवं रासायनिक संगठन, जल प्रतिधारण क्षमता इमारत पर उगने वाले शैक की संख्या वृद्धि के लिए जिम्मेदार होते हैं। शैक जीवनाधार पर उगकर निम्न प्रकार से क्रिया करते हैं–

(1) शैक कायिक वृद्धि के साथ–साथ अपना जैव द्रव्यमान बढाकर जीवनाधार को प्रभावित करते है।

(2) दृढ़तापूर्वक सतह से चिपके होने पर शैक वातावरण में हुए जलवायु परिवर्तनों के अनुसार संकुचित तथा फैलकर आधार को प्रभावित करते है।

(3) शरद ऋतु में शैक के शरीर मे उपस्थित जल के जमने तथा पिघलने की क्रिया द्वारा जीवनाधार की सतह प्रभावित होती है।

(4) शैक के शरीर में उपस्थित जैविक अम्ल तथा द्वितीयक उपापचयी रासायनिक पदार्थ भी जीवनाधार को प्रभावित करते हैं।

शैक जड़ तथा तना रहित एक पूर्ण पौधा है, जो प्रायः खुली नग्न चट्टानों एवं इमारतों पर आसानी से उगकर शनैः–शनैः क्षरण प्रारंभ कर देते है। शैक की इस प्रकृति के कारण उसे ''पत्थरचट्टा'' भी कहा जाता है। यह ऊबड़–खाबड़ एवं समतल दोनों प्रकार के पत्थारों पर उगने में सक्षम होता हैं, किन्तु इसकी वियोजन क्षमता दोनों प्रकार के जीवनाधारों के लिए अलग–अलग होने के कारण यह कुछ को टुकड़ों एवं कुछ जीवनाधारों को धूल के कणों में विघटित करता हैं।

पर्तनुमा शैक किसी जीवनाधार का सर्वाधिक क्षरण करते हैं, क्योंकि पर्तनुमा संरचना होने के कारण ये आधार से मजबूती से चिपके रहते है। पत्तीनुमा शैक का कुछ भाग ही जीवनाधार से चिपके होने के कारण ये जीवनाधार को कम क्षतिग्रस्त करते हैं। फ्रूटीकोज या झाड़ीनुमा शैक आधार पर केवल एक जगह से जुड़े होते हैं, अतः आधार को बहुत कम हानि पहुँचाते हैं।

शैक पारिस्थितिक तंत्र के अभिन्न अंग हैं, एवं किसी भी निर्जीव स्थान पर उगने वाले प्रथम जीव है। अधिकांश शैकों के सुकाय से उत्सर्जित चिपचिपा जिलेटिन मूलाभासों तथा कवक तंतुओं को जीवनाधार से चिपकने में सहायता करता है। इनकी इसी प्रकृति के कारण ये हजारों वर्षों तक जीवनाधार से चिपके रह सकते हैं।

शैक मूलाभास एवं कवक तंतुओं द्वारा आधार के विघटन से एकत्रित ह्यूमस अन्य वनस्पतियों को उगने में सुविधा प्रदान करता है, एवं अंत में शैक विघटित होकर ह्यूमस बनाकर दूसरे पौधों को और अतिरिक्त पोषण भी प्रदान करता है। शैक द्वारा विघटन की क्रिया निम्न प्रकार से होती है–

(1) इमारतों एवं भवनों की दीवारों के अंदर कवक तंतुओं के जाने से ।

(2) जलवायु के प्रभाव से शैक सुकाय के फैलने–सिकुड़ने से।

(3) वातावरणीय परिवर्तन द्वारा सुकाय के चिपकने–उभरने से।

(4) सुकाय एवं जीवनाधार की जैविक–अजैविक क्रिया द्वारा।

(5) चट्टान, इमारतों पर उपस्थित खनिजों का शैक सुकाय द्वारा अवशोषण करने से।

शैक प्राचीन इमारतों एवं भवनों पर कई वर्षों तक विपरीत परिस्थितियों में भी वृद्धि कर जीवित रह सकते हैं। ये जीवनाधारों को दो प्रकार से क्षतिग्रस्त करते हैं–

भौतिक क्षरण

शैक में जल को अवशोषित करके संचित रखने की क्षमता के कारण यह वर्षा के जल एवं वातावरण से नमी को अवशोषित कर जीवनाधार को कसकर पकड़ लेता है, जिसके कारण उसकी ऊपरी सतह अन्य भागों से अधिक संकुचित होकर सुकाय के किनारों को ऊपर की ओर मोड़ देती है, एवं कवक तंतुओ की सतह से चिपके रहने के कारण ये जीवनाधार से छोटे–छोटे कणों को अपने साथ खींच लेते हैं, पुनः नम स्थिति (वर्षा एवं शीत ऋतु) के लौटने पर यह अपने मूल आकार में आ जाते हैं। क्योंकि कवक तंतु एवं मूलाभास चट्टानों की दरारों में प्रवेश करके इन्हें भेद देते हैं, एवं दीवारों का वियोजन और तत्पश्चात् क्षरण प्रारंभ हो जाता है। शैकों द्वारा प्रकृति में यह क्रिया निरंतर चलती रहती है, जिसके कारण धीरे–धीरे चट्टान एवं इमारत से मृदा निर्माण होता रहता है।

रासायनिक क्षरण

कवक सुकाय के विभिन्न भागों की संरचना करते हुए भिन्न–भिन्न आकृति के शैक प्रजातियों का निर्माण करता हूं। शैक की संरचना जितनी जटिल हैं, उससे भी कही अधिक रोचक उनमें उपस्थित रसायन पदार्थ हैं, जिनको मूलतः ''शैक पदार्थ'' कहा जाता है। शैक में मुख्यतः 1500 तरह के रासायनिक तत्व होते हैं। इन रसायनों में से 50–60 ऐसे होते हैं, जो दूसरे पौधे भी बनाते हैं, शेष रसायन केवल शैक में ही पाए जाते हैं।

शैक की जैविक क्रिया द्वारा उत्पन्न कार्बनडाइ ऑक्साइड जल में घुलकर अम्लीय घोल बनाती है, जो जीवनाधार में उपस्थित लवणों से क्रिया कर उसका अपक्षय करता है। शैक के कवक तंतु ऑक्जैलिक अम्ल उत्पन्न कर चुने युक्त इमारतों में उपस्थित कैल्शियम कार्बोनेट से क्रिया कर कैल्शियम ऑकजेलेट बना लेता है। कुछ शैक सुकाय के चारों तरफ एक धारीदार संरचना बना लेता है। कुछ शैक सुकाय मौलिक अम्ल बनाकर रसायनिक क्रिया द्वारा जीवनाधार का अपक्षय करते हैं। शैक सुकाय के जल को ग्रहण करने की प्रवृत्ति के कारण शैक में उपस्थित रासायनिक पदार्थ भी जल में घुलकर आधार में उपस्थित अकार्बनिक धातुओं से क्रिया कर उन्हें कमजोर व जीर्ण–क्षीर्ण कर देते हैं।

प्राचीन इमारतों एवं भवनों को अपने वास्तविक स्वरूप में ज्यों का त्यों बनाये रखने के लिए उन्हें शैक मुक्त रखना अति आवश्यक है। पुताई एवं समय–समय पर होने वाली मरम्मत काफी हद तक इमारतों एवं भवनों को जीवाणु मुक्त रखते है। पॉलीविनाइल एसीटेट (पी वी ए) विलयन की पुताई एवं कैल्शियम हाइपो–क्लोराइड (स्वीमिंग–पूल व्लीच) द्वारा उपचारित किये जाने पर भी किसी इमारत की दीवारें शैक मुक्त रह सकती हैं, लेकिन यह स्थायी हल नहीं है।

यूँ तो शैक चट्टानों, पत्थरों का क्षरण कर मृदा निर्माण जैसा महत्त्वपूर्ण कार्य करते है, किन्तु दूसरी ओर ऐतिहासिक महत्त्व की इमारतों पर उगकर उन्हें भारी क्षति भी पहुंचाते हैं। यदि समय–समय पर इमारतों पर शैक की वृद्धि को रोका जाये तो हम निश्चय ही इन्हें क्षतिग्रस्त होने से बचा बचा सकते हैं। परन्तु इनकी अनुपस्थिति से पृथ्वी का एक बड़ा भाग निःसंदेह बंजर एवं निर्जीव भी हो जाएगा।

फलों एवं सब्जियों का वैज्ञानिक भण्डारण

प्रदीप कुमार सिंह[1], सर्वेश सिंह[2], दिनेश कुमार सिंह[2] तथा सुमति नारायण[1]
शेरे –ए–कश्मीर कृषि विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कश्मीर[1]
कृषि विज्ञान संस्थान, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी[2]

फल एवं सब्जी की तुड़ाई का विशेष महत्व हैं जिसके कारण इनकी भण्डारण क्षमता पर प्रभाव पड़ता है। कम तापमान पर फल व सब्जी के अन्दर होने वाली क्रिया के बढ़ने के कारण उसके तत्वों का अन्य घटकों में परिवर्तन प्रायः देखा गया है कि फल व सब्जी विक्रेता थोड़े–थोड़े समय के बाद इन उत्पादों पर पानी का छिड़काव करते रहते है। इस छिड़काव से फल व सब्जी में विद्यमान पानी की मात्रा बनी रहती है। तथा उत्पाद के अन्दर की क्रिया नहीं बढ़ेगी। फल एवं सब्जियों के अन्दर की उष्णता को दूर करने के लिए पूर्वशीतन करना बहुत जरूरी है जो कि पानी के छिड़काव से किया जा सकता है। तोड़ने के बाद ऐसे उत्पाद को खुली धूप में न रखें तथा हो सके तो साफ पानी का छिड़काव करें ताकि नमी बनी रहें। एक बात और ध्यान देने वाली है कि फल व सब्जी को सही समय यानी पूर्ण रूप से पकने पर ही तोड़े। कई बार देखने में आता है कि फल जब बिल्कुल खाने लायक हो जाता है, तब तोड़ा जाता है या फिर बिल्कुल ही कच्चा तोड़ लिया जाता है। सब्जियों में भी बेल वाली सब्जियाँ ऐसे समय पर तोड़ी जाती है जब इनमें विद्यमान तत्व नष्ट हो चुके होते है। इसलिए उत्पाद को सही समय पर ही तोड़ना चाहिए।

तुड़ाई की कला

तुड़ाई के दौरान भी कुछ विशेष बातों का ध्यान रखना आवश्यक है। अगर हो सके तो फलों को हाथ से एक – एक कर तोड़े तथा जमीन या किसी सख्त जगह पर न फेकें क्योकि ऐसा करने से फलों के ऊपर उपस्थित प्राकृतिक लेप, जो कि एक पतली परत के रूप में होता है, नष्ट हो जाएगा। इसके कारण उत्पाद से पानी ज्यादा मात्रा में निकलेगा तथा फल व सब्जी जल्दी सूखेगें। जमीन पर पटकने से फल फट जाएंगे जिसके कारण इनके अन्दर ऑक्सीजन के प्रभाव से प्रक्रिया तेज होगी तथा कीटाणुओं के आक्रमण के लिए भी रास्ता खुल जायेगा। कई बार देखा गया है कि फल बाहर से देखने में अच्छे होते है। लेकिन एक – दो दिन रखें तो सड़ने लगते हैं। यह इसलिए होता हैं क्योंकि अन्दर के उत्ताक टूटने के कारण उसकी क्रिया बढ़ जाती है व फल का रंग काला पड़ जाता हैं। जहां तक हो सके फलों के छिलकों को न छेड़े तथा हल्के हाथों से इन्हे पकड़ें क्योंकि फल एवं सब्जियों की देखभाल एक नन्हे बच्चे की तरह करनी होती है। अनुसंधान में पाया गया है कि सुबह व शाम को तोड़े उत्पाद दिन के समय तोड़े गए फल एवं सब्जियों की अपेक्षा 2–3 दिन ज्यादा भण्डार किए जा सकते है तथा कई बार यह क्षमता और भी अधिक पाई गई है। तोड़ने के बाद फल एवं सब्जी को अगर साफ पानी में डालकर धो लिया जाए तो तोड़े गए पदार्थों के मिट्टी के कण, दवाई अवशेष तथा कीटाणु आदि काफी हद तक धुल जाते हैं व उत्पाद के अन्दर चलने वाली क्रिया से उत्पन्न उष्मा भी कम हो जाती है। इसके साथ–साथ उत्पाद की निधानी आयु बढ़ जाती हैं।

तुड़ाई के बाद फल एवं सब्जी का वर्गीकरण या श्रेणीकरण करके ही पेटियों में भरना चाहिए। ऐसा करने से एक जैसा उत्पाद पैक होगा तथा खराब होने की सम्भावना कम रहेगी व भडांरण क्षमता

बढ़ जाएगी। इसके अलावा सबसे जरूरी होता है उत्पाद को निम्न ताप पर रखना। इसके अलावा परिवहन अगर रात को किया जाए तो अच्छा रहेगा। साथ में यह भी ध्यान रखना चाहिए कि एक पैक के ऊपर 3 या 4 डिब्बे ही रखें जाएँ। ऐसा करने से नीचे वाले पैक में रखा उत्पाद नहीं दबेगा, ऊष्मा नहीं बढ़ेगी तथा फल एवं सब्जियों की निधानी आयु अधिक होगी। पेटियों या टोकरियों में फल एवं सब्जियों को भरने के दौरान ध्यान रखें कि कीड़े, व्याधि या तुड़ाई के समय खरोंच इत्यादि वाले फल अच्छे उत्पाद के साथ न रखे जाएँ। अगर लकड़ी के डिब्बे इस्तेमाल किए जा रहे हों तो डिब्बों की क्षमता के अनुसार ही उत्पाद भरा जाये तथा ऐसे डिब्बों को छायादार जगह पर रखें। परिवहन के दौरान डिब्बें में रखे फल एवं सब्जी आपस में न रगड़े इसके लिए डिब्बें में घास–फूस, समाचार पत्र, पत्ते या पुआल इत्यादि रखे जा सकते हैं। अगर उत्पाद ज्यादा है तथा परिवहन की समस्या है तो किसान व बागवान भाई किसी छायादार जगह पर एक बड़ा सा गड्ढा बनाकर जो कि आयताकार या वर्गाकार हो, तथा जिसकी गहराई कम से कम एक मीटर तक हो, का इस्तेमाल भी कर सकते हैं। नीचे की सतह पर बालू की परत बिछाकर पानी का छिड़काव कर उत्पाद का भण्डारण किया जा सकता है। फल एवं सब्जी को सही तरीके से इस गढ्ढे में रखकर ऊपर से नारियल की पत्तियों से बने ढक्कन से ढ़कने से भी उत्पाद की भण्डारण क्षमता बढ़ जाती है तथा खराब होने की सम्भावना कम होती है।

फल एवं सब्जियों को क्रमशः उत्पादक, आढ़ती, थोक या फुटकर व्यापारी तथा उपभोक्ता से गुजरना पड़ता है। उत्पाद जब मण्डी में पहुंच जाए तो थोक या फुटकर विक्रेता ध्यान रखें कि फल एवं सब्जी, जो कि डिब्बों या पेटियों में बन्द हैं, इस तरह खोले कि नुकसान कम से कम हो। डिब्बों या पेटियों में से निकालने के बाद उत्पाद को छायादार जगह पर रखा जाए। परिवहन के दौरान उत्पाद में बनी उष्मा को कम करने के लिए साफ पानी का छिड़काव करें। कीड़ों या बीमारियों द्वारा प्रभावित फल एवं सब्जीं को अच्छे उत्पाद से अलग रखें तथा दिन के समय पानी का छिड़काव करते रहें। कड़ी के अंत में आते है – उपभोक्ता। फल व सब्जी का काफी दाम चुकाने के बाद उपभोक्ता इन्हे इस्तेमाल के लिए घर लेकर आते है। इसलिए उपभोक्ताओं को भी इनका ध्यान रखना उतना ही जरूरी है। बाजार से फल या सब्जी खरीदकर घर लाने के बाद इन्हे साफ पानी में 3–4 बार धोकर, साफ कपड़े से सुखाकर भण्डारण कर सकते हैं। बिना पोलीथीन के भण्डारण करने पर उत्पादन में उपस्थित पानी रेफ्रिजरेटर सोख लेगा तथा फल एवं सब्जी जल्दी सूख जाएगी। कई फल जैसे केला, नींबू, संतरा, आम इत्यादि को 10^0 से० से नीचे भण्डारण नही करना चाहिए। ऐसा करने से ठण्ड के कारण इनके अंदर काले धब्बे बन जाएंगे तथा भण्डारण किया गया उत्पाद खाने योग्य नही रहेगा। फल एवं सब्जियों का रसोई घर में भण्डारण न करें क्योंकि स्टोव में जलने वाले मिट्टी के तेल व रसोई गैस से निकलने वाले धुएँ से उत्पादन बहुत जल्दी खराब हो जाता है। घर के किसी दूसरे कमरे में, जहाँ धूप सीधी न पड़ती हो, इनके भण्डारण के लिए अच्छी जगह रहती है। बीच – बीच में भण्डारण किए गए उत्पादन को परखते रहना चाहिए तथा सड़े–गले फल एवं सब्जी को अलग कर लेना चाहिए।

फल एवं सब्जियों की भण्डारण क्षमता बढ़ाने के लिए कई रसायन भी हैं जिनका इस्तेमाल किया जा सकता है। ये रसायन हैं जिब्रेलिक अम्ल, सिल्वर नाइट्रेट, मैलिक हाइड्राजाइड इत्यादि। इन रसायनों को अलग – अलग या एक दूसरे के साथ विभिन्न अनुपातों में मिलाकर फल व सब्जियों पर इस्तेमाल किया जा सकता है। तुड़ाई से उपयोग तक फल एवं सब्जियों की देखभाल संबंधी कुछ मुख्य बाते इस प्रकार हैः

1. फल एवं सब्जियों को पूर्ण रूप से परिपक्व होने पर ही तोड़े।
2. तुड़ाई सुबह या शाम के समय ही करें।
3. तोड़ते समय उत्पाद को सख्त जगह पर न गिरने दें।

4. उत्पाद को खुली धूप में न रखें बल्कि छायादार जगज पर एकत्र करें।
5. फल एवं सब्जियों के अंदर की ऊष्मा को कम करने के लिए तुड़ाई के बाद साफ पानी का छिड़काव करें।
6. डिब्बाबंदी से पूर्व उत्पाद का श्रेणीकरण करें।
7. श्रेणीकरण के अनुसार ही डिब्बों या पेटियों में फल एवं सब्जियों को भरें।
8. डिब्बों या पेटियों में फल एवं सब्जियाँ आपस में न रगड़े, इसलिए घास – फूस जैसे पुआल व पत्ते इत्यादि रखें।
9. उत्पाद मण्डी में सुबह या शाम के समय ही भेजें।
10. परिवहन के दौरान उत्पाद को धूप व वर्षा से बचाएं।
11. वाहन में तीन–चार से ज्यादा डिब्बे एक दूसरे के ऊपर न रखें।
12. डिब्बों या पेटियों के ऊपर कोई भारी सामान न रखें व किसी को इस पर न बैठने दें।
13. वाहन में उत्पाद रखने व उतारने के समय सावधानी बरतें।
14. डिब्बों व पेटियों को ध्यानपूर्वक खोले तथा उत्पाद पर साफ पानी का छिड़काव करें।
15. फूटकर विक्रेता थोड़े – थोड़े अंतराल पर साफ पानी का छिड़काव उत्पाद पर करें।
16. उपभोक्ता फल एवं सब्जियों को घर लाकर साफ पानी से तीन – चार बार धोएँ।
17. अच्छी गुणवत्ता वाली पोलीथीन में उत्पाद को लपेटकर रेफ्रिजरेटर में भण्डारण करें।
18. अगर उत्पाद ज्यादा है तथा बाजार में इसका उचित दाम नहीं मिल रहा है तो रसायनों की मदद से फल एवं सब्जियों की निधानी आयु बढ़ाई जा सकती है।

निष्कर्ष

आज भारत देश में फलो एवं सब्जियों का सर्वाधिक नुकसान उत्पादन पश्चात् समुचित प्रबन्धन न होने के कारणवश हो रहा है। कुछ प्रमुख देखभाल संबंधी बातों को ध्यान में रखकर ऐसे नुकसान से बचा जा सकता है हालाँकि अनुंसधान में उभरकर आए तथ्यों के अनुसार रखने पर फलों एवं सब्जियों का 2–3 ज्यादा दिनो तक भण्डारण कर सकते है। फल एवं सब्जियाँ हमारे दैनिक आहार का महत्वपूर्ण हिस्सा है इसलिए इनका सही रखरखाव किसी एक की नही अपितु सभी की जिम्मेदारी हैं एवं सभी से इस बारे में अपेक्षा है।

स्वास्थ्य प्रबंधन के लिए जिह्वानाड़ी परीक्षण पर आधारित सूचीभेदन का वैदिक विज्ञान

रामगोपाल एवं देवाशीष बक्शी

प्रस्तावना

अथर्वेद से आयुर्वेद के उद्गम का श्रेय महान ऋषि भारद्वाज (ईसा से 500 वर्ष पूर्व) को दिया गया है। (अथर्वेदासु उपनिशदसु प्रगुलपन्ना:)। भारतीय आयुर्विज्ञान आयुर्वेद को एक उपवेद मानता है। आयुर्वेद संपूर्ण स्वास्थ्य और दीर्घायु का विज्ञान है। धातुओं, दोशों और अग्निओं को सम और आत्मा, इंद्रियों और मन को प्रसन्न रखना आयुर्वेद के अनुसार पूर्ण स्वास्थ्य की परिभाषा है। आयुर्वेद में अष्टविद् परीक्षा के अंतर्गत नाड़ी, जिह्वा, स्वर, त्वचा, नेत्र, बाह्य रूप, मूत्र और मल परीक्षा सम्मिलित है। इरिम (IRIIM, इंडियन रिसर्च इंस्ट्रीटयूट फॉर इंटिग्रेटेड मेडीसिन) में चिकित्सक, शोधार्थियों, स्वास्थ्य और सामाजिक कार्यकर्ताओं ने औषधिविहीन चिकित्सा पद्धतियों और आधुनिक स्वास्थ्य सुरक्षा प्रणाली पर आधारित नवीन उपचार और प्रणालियां विकसित की हैं, जिसके आधार पर रोगोपचार, प्रशिक्षण, अनुसंधान और जागरूकता शिविर आयोजित किए गए हैं।

आधुनिक मानव का जीवन प्रतिदिन अधिक से अधिक सुविधाभोगी जीवनपद्धति की ओर अग्रसर हो रहा है। इस सुविधाभोगी जीवनचर्या एवं भौतिकवादी आचार विचार के परिणामस्वरूप नए नए रोगों की उत्पत्ति हो रही है एवं पुरानी बीमारियों का प्रकोप बढ़ रहा हैं। एलोपैथिक चिकित्सा पद्वति के अंतर्गत विभिन्न नवीन औषधियों से लेकर शल्यक्रिया के नए उपकरण व विशिष्ट विधियों, टीकों अंग प्रत्यारोपण और अब स्टेम सेल के अनुसंधान और थेरेपी तक अभूतपूर्व आविष्कारों द्वारा विकास हुआ है। पर विडम्बना यह है कि दूसरी ओर रोगियों, चिकित्सकों, नए राष्ट्रीय आयुर्विज्ञान संस्थानों और विशिष्ट एवं उत्कृष्ट अस्पतालों और चिकित्सा केन्द्रों की स्थापनों की संख्या की वृद्धि के साथ निरन्तर रोगियों की भी संख्या में विकासदर अप्रत्याशित है। हृदय रोगों,विभिन्न प्रकार के कर्क रोगों, उच्चरक्तचाप, एड्स, मनोरोगों, तनाव आदि की विकसित देशों तक में अत्यधिक वृद्धि हो रही है। उदाहरण के लिए आधुनिक औषधियों और उपकरणों ने मधुमेह के उपचार के लिए रक्त में अल्प शर्कराकारकों से लेकर इन्सुलीन इंजैक्शन और पम्पस तक का जहां एक ओर विकास किया है, वहीं दूसरी ओर भारत में प्रत्येक मिनिट में 4 से 5 मधुमेह रोगी जुड़ते जा रहे हैं। सन् 2025 तक इस 195% विकास दर से हमारा देश मधुमेह का घर बन जाएगा, जहां सर्वाधिक 5.8 करोड़ रोगी होंगे। जबकि वैकल्पिक चिकित्सा पद्धतियों और जीवन शैली प्रबंधन के साथ जैविक (ऑरगनिक) उत्पाद व भोजन संयोजन द्वारा हमारे इरिम के अस्पताल में मधुमेह पर नियंत्रण के साथ नए रोगियों की संख्या में अभूतपूर्व कमी आई है।

भारत जैसे देश में स्वास्थ्य सेवाओं की स्थिति गंभीर है,क्योंकि देश में उपलब्ध चिकित्सा सेवाएं, स्वास्थ्य सेवाओं का वर्तमान ढांचा और प्रशिक्षित स्वास्थ्यकर्मियों की संख्या हमारी जनसंख्या की आवश्यकताओं की अपेक्षा बहुत कम है। दूसरी ओर भारतीय परिवेश में प्राकृतिक रूप से विकसित हमारी परम्परागत देशी उपचार पद्धतियां हाशिए पर खडी नजर आ रही हैं ये समस्त

परम्परागत पद्धतियां रोगों को ठीक से समझकर समूल मिटाने में पूर्णरूपेण सक्षम है। इन पर गहन अनुसंधान की आवश्यकता है।

विश्व और भारत की वर्तमान स्थिति

विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) की एक रिपोर्ट के आंकलन के अनुसार विश्व की 65 से 80 प्रतिशत् जनसंख्या वैकल्पिक चिकित्सा पद्धतियों पर ही निर्भर है, जो कि एलोपैथिक न हो कर मूलतः परम्परागत चिकित्सीय प्रणालियां और औशधियां ही हैं। इनमें से 250 से भी अधिक उपचार पद्धतियां मान्यता प्राप्त हैं, जिनमें जिह्वा–नाड़ी परीक्षण और सूचीभेदन सहित 180 थेरेपियाँ व तकनीकियाँ सम्मिलित हैं। वैकल्पिक चिकित्सा या परम्परागत चिकित्सा पद्धति पूरे विश्व में पूरक और वैकल्पिक चिकित्सा के नाम से मान्यता प्राप्त कर चुकी हैं तथा इसने आधुनिक आयुर्विज्ञानिकों और वैदिक विज्ञान के अनुसंधानकर्मियों को आकर्शित कर रखा है। योजना आयोग के वक्तव्य के अनुसार भारत की 12वीं पंचवर्षीय योजना स्वास्थ्य को समर्पित है। राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन की अनेक राज्यों में अभूतपूर्व सफलता को आधार मानकर भारत सरकार ने शीघ्र राष्ट्रीय शहरीय स्वास्थ्य मिशन को आरंभ करने का निर्णय लिया है। भारत सरकार के स्वास्थ्य मंत्रालय ने आयुष के अंतर्गत आयुर्वेद, योग और प्राकृतिक चिकित्सा, यूनानी, सिद्ध और होम्योपैथी जैसी पारम्परिक पद्धतियों को मान्यता प्रदान की है और इनके प्रचार प्रसार पर विशिष्ट ध्यान दे रही है। प्रत्येक चिकित्सा पद्धति के लिए अनुसंधान परिषद का गठन किया गया है। उदाहरणतः योग और प्राकृतिक चिकित्सा के लिए'' केंन्द्रीय, योग और प्राकृतिक चिकित्सा अनुसंधान परिषद कार्यरत है। इन परिषदों ने अनेक अनुसंधान परियोजनाओं और कार्यक्रमों के द्वारा विभिन्न रोगों के निवारण तथा प्रतिरोधक क्षमताओं के विकास में अभूतपूर्व सफलताएं अर्जित की हैं। भारतीय चिकित्सा पद्धतियों के संदर्भ में एक उल्लेखनीय बात यह भी है कि इनमें वैदिक विज्ञान से सम्बंधित ध्यान,योग, जप–तप, प्राणायाम, उपासना, अध्यात्म आदि को भी सम्मिलित किया गया है।

इरिम द्वारा विकसित नवीन अनुसंधानों और समेकित बहुआयामी चिकित्सा पद्धति से 2 लाख से अधिक रोगियों का उपचार, 5000 से अधिक व्यसनियों को नशामुक्ति और पुनर्वास तथा लगभग 1000 से अधिक डाक्टरों और स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं को प्रशिक्षण द्वारा लाभान्वित किया गया है। हमारी उपचार, प्रशिक्षण और अनुसंधान प्रक्रिया में मुख्यतया औषधिविहीन–एक्युपंक्चर, माक्सीबॉक्सन, योग, प्राणायाम, ध्यान, प्राकृतिक चिकित्सा, एक्यूप्रेशर और आर्गेनिक फूड, आदि जैसी परम्परागत चिकित्सा पद्धतियों के साथ जिह्वा–नाड़ी परीक्षण पर आधारित सूचीभेदन के नवीन अनुसंधान को अपनाया गया है। अन्य पारम्परिक चिकित्सा पद्धतियां जैसे कि आयुर्वेद, यूनानी और होम्योपैथी आदि के साथ आव यकतानुसार प्रचलित एलोपैथी और फिजियोथैरेपी, आदि को भी प्रयोग में लाया गया है।

परम्परागत चिकित्सा की मूल धारणा

परम्परागत चिकित्सा

परम्परागत चिकित्सा की मूल धारणा सम्पूर्णता है। मानव शरीर पूर्णतया समन्वित है और इसकी समस्त प्रणालियां ब्रह्मांड का अंश है। यत् पिण्डे तत् ब्रह्मांडे। पर्यावरण में परिवर्तन निर्वाद रूप से शरीर के परिवर्तनों (असंतुलन/रोगों) को प्रभावित करते हैं। मानव शरीर को दो रूपों–यिन और यांग (Yin and Yang) में बांटा जा सकता है। यिन और यांग का संतुलित न होना ही रोग का मुख्य कारण है। इन दो रूपों का गतिशील संतुलन ही स्वास्थ्य है। जिह्वा–नाड़ी परीक्षण इस सिद्धांत पर आधारित है।

नाड़ी परीक्षण

नाड़ी में गतिशीलता,तरलता और परिवर्तन शीलता होती है। नाड़ी के विभिन्न लक्षणों में गहराई, लय, लंबी, तेज, धीमी, उथली, अनियमितता, आदि सम्मिलित हैं। प्रत्येक लक्षण में परिवर्तन और अनियमितता शरीर के अंगों में असंतुलन और स्वास्थ्य को प्रदर्शित करते हैं। कुशल और प्रशिक्षित चिकित्सक की उंगलियॉ नाड़ी परीक्षण द्वारा शरीर के अंगों में व्याप्त असंतुलन और उससे सम्बन्धित रोगों की पहचान कर लेते हैं। शरीर और मस्तिश्क की सूक्ष्म से सूक्ष्म जैव–रासायनिक, विद्युत–चुम्बकीय और तंत्रकीय क्रियाओं का नाड़ी परीक्षण द्वारा विस्तृत जानकारी प्राप्त कर ली जाती है। फेफडा, तिल्ली, हृदय, यकृत और वृक्क का नाड़ी परीक्षण चित्र 1 में दर्शाया गया हैं। नाड़ी परीक्षण का उपयुक्त समय प्रातःकाल खाली पेट होता है। आपातकाल में यह परीक्षण दिन या रात के किसी भी समय किया जा सकता है। हमारे इरिम संस्थान में कुशल चिकित्सकों द्वारा शरीर की प्रकृति, विकृति शारीरिक असंतुलन,सूक्ष्म अवलोकन और रोग का पूर्वानुमान नाड़ी परीक्षण द्वारा किया जाता हैं। नाड़ी शारीरिक क्रियाओं में परिवर्तन तथा मानसिक और भावनात्मक स्थिति के आंकलन द्वारा उत्पन्न होने वाले लक्षणों कीं चेतावनी देती हैं। नाड़ी परीक्षण अन्य परीक्षणेां की पुश्टि भी करता है। यदि ऊर्जा या 'की' शुद्ध प्रवाह में कहीं रूकावट है तो नाड़ी गिटार के खिंचे हुए कड़े तार की तरह लगती है। इसी प्रकार 'यिन' की न्यूनता पर शरीर और मस्तिष्क की शांत, संयत और व्यवस्थित होने की शक्ति में कमी आ जाती है।

जिह्वा परीक्षण

परम्परागत चिकित्सा पद्धति में रोग निदान हेतु चार परीक्षण विधियां–अवलोकन, परिश्रवण व सूंघना, पूछताछ और स्पर्श परीक्षण सम्मिलित हैं। आयुर्वेद व एक्यूपंक्चर जैसे परम्परागत चिकित्सा पद्धति में जिव्हा परीक्षण नाड़ी परीक्षण के साथ महत्वपूर्ण हैं। आधुनिक आयुर्विज्ञान यद्यपि जिव्हा परीक्षण को महत्व देता है,परन्तु अभी भी इस क्षेत्र में गुणात्मक मूल्यांकन और अनुसंधान की आवश्यकता हैं। जिव्हा परीक्षण में नाड़ी परीक्षण की भांति आयुर्वेद में प्रचलित वात, पित् और कफ का मूल्यांकन रोग की पहचान और उपचार हेतु किया जाता है। जिव्हा परीक्षण में विशिष्ट डिजीटल कैमरे द्वारा जिव्हा के चित्र खींचकर बड़े किए जाते हैं और उनके विच्छेदित नमूने, उत्पन्न कर उनका इरिम द्वारा विकसित विशिष्ट विधि से अध्ययन किया जाता हैं। जिव्हा के विभिन्न भागों में शरीर के आंतरिक अंगों और ऊतकों का निर्दिष्ट स्थान चित्र 2 में दर्शाया गया हैं। जिव्हा परीक्षण में शरीर के आंतरिक अंगो में उत्पन्न रोग और असंतुलन का आंकलन जीभ के रंग, आकार, सतह पर जमी परत और संचलन के आधार पर किया जाता है। पीली जीभ ऊर्जा अभाव और शीत संलक्षण दर्शाती है तथा लाल रंग की जीभ ऊष्मा संलक्षण की अधिकता और अन्य अभाव की द्योतक है, जबकि सूजी हुई जिव्हा, तिल्ली और वृक्क में यांग की न्यूनता बताती हैं। जीभ का पतला होना की–रक्त (qi blood) की कमी का सूचक है।

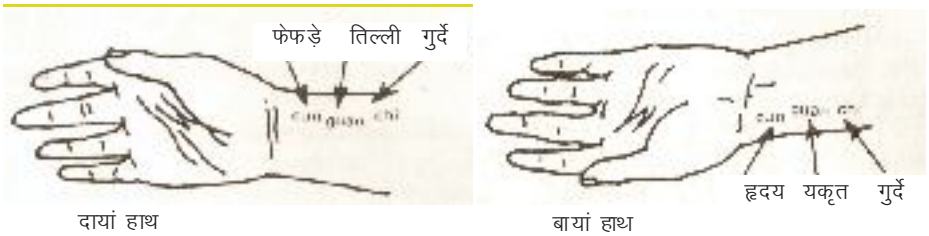

चित्र 1. फेंफड़ा, तिल्ली, हृदय, यकृत और वृक्क का नाड़ी परीक्षण।

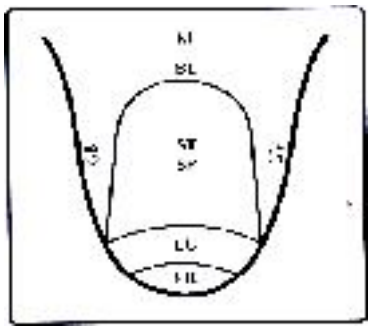

चित्र 2. जिह्वा के विभिन्न क्षेत्रों में आंतरिक अंगो का प्रक्षेपण।

HE- हृदय, LU- फेंफडा, ST आमा ाय, SP- तिल्ली, LIV-यकृत, GB – गालब्लेडर, KI- वृक्क BL – मूत्रा ाय।

सूचीभेदन उपचार

आजकल भारत में प्रचलित एक्यूपंक्चर थेरेपी की उत्पत्ति मुख्यतः चीन से मानी जाती है, यद्यपि अनेक संदर्भ व पौराणिक साहित्य में चीन के साथ समानरूप से पूर्वी प्राच्य मिस्र, परसिया, भारत आदि देशों में इसका उल्लेख मिलता है। आयुर्वेद में सूचीभेदन चिकित्सा वैदिक काल से प्रचलित है। चीन के सिद्धांत के अनुसार संसार के पांच तत्वों और यिन–यांग के आपसी सहयोग से मानव शरीर की सामान्य क्रियाएं निर्भर करती हैं। शरीर में जीवन शक्ति के वहन के लिए 14 प्रमुख मेरीडियन और 8 अतिरिक्त मेरीडियन माने गए हैं। इन चैनलों पर निर्धारित एक्यू–प्वाइन्टस पर सूचीभेदन कर अनेक विधियों द्वारा ऊर्जा संतुलन स्थापित किया जाता है।

सम्न्वित वैकल्पिक चिकित्सा

इन्टीग्रेटेड वैकल्पिक चिकित्सा पद्धति के अंतर्गत इरिम के रंजीत मेमोरियल अस्पताल में लंबे समय से अनुसंधान किया जा रहा है। संस्थान द्वारा विकसित विशिष्ट चिकित्सा पद्धति के अंतर्गत सूचीभेदन, माक्सीबॉक्सन, प्राकृतिक चिकित्सा (योग, प्राणायाम, ध्यान, एनीमा, मिट्टीपट्टी, भाप सेवन, सूर्य स्नान, मालिश, नेती, कुंजल आदि), जैवीय उत्पाद और भोजन संयोजन को पूर्ण स्वास्थ्य लाभ हेतु सम्मिलित किया गया है।

कार्य विवरण

रोगियों का चयन विभिन्न समूहों में राष्ट्रीय प्राकृतिक चिकित्सा संस्थान, पुणे द्वारा अनुशंसित निदानकारी प्रक्रिया के अंतर्गत किया गया है। जैसे कि अम्लता, अपच और दमा के रोगियों के समूह बनाये गये। रोग का पूर्ण इतिहास पारम्परिक चिकित्सा में निर्धारित हिस्ट्री–शीट में अंकित किया गया। मानक विधि के अनुसार उच्च–विभेदन डिजीटल कैमरे द्वारा चेहरा और जिह्वा के छाया चित्र तथा नाड़ी परीक्षण के विवरण उपचार पूर्व अंकित किए गए। सामान्य स्वास्थ्य जांच के अंतर्गत रक्त, मल और मूत्र के परीक्षण भी किए गए। सभी डाटा कम्प्यूटर डाटा बेस में स्थान्तरित कर सुरक्षित रख लिये गए। रोगी के लक्षणों और जांच के आधार पर इन्टीग्रेटेड वैकल्पिक चिकित्सा निर्धारित की गई। एक निर्धारित एक्यूपंक्चर उपचार सत्र में 20 से 30 मिनट में लगभग 10 से 20 स्टेनलैस स्टील की पतली व मानक सुईयां एक्यू–प्वाइंटस पर लगाई गईं। मेरीडियनों में लगाई गई सुईयों के प्रभाव को तीव्रता प्रदान करने हेतु ऊश्मा, दबाब या विद्युत आवेग जोड़

दिया गया विशेष ऊतक, अंग या अंग प्रणाली में ऊर्जा प्रवाह में तीव्रता लाने हेतु विभिन्न चैनलों के एक्यू–प्वाइंटस को कुशल चिकित्सक द्वारा उत्तेजित किया गया। एक माह के उपचार के उपरान्त रोगी के स्वास्थ्य लाभ/रोगोपचार का आंकलन पुनः जिव्हा के छाया चित्र, नाड़ी परीक्षण और अन्य प्रयोगशाला के परीक्षणों के आधार पर किया गया। स्वस्थ और रोगी व्यक्तियों के छायाचित्रों की गैलरी तथा पैथोलॉजिकल और रोग विषयक जांच पडताल की रिर्पोटें डाटाबेस में सुरक्षित रखी जाती हैं, जो कि संदर्भ, अध्ययन और भावी अनुसंधान में उपयोग की जाती हैं।

घुटनों की एक्यूपंक्चर थेरेपी।

तीव्र दस्तों के लिए इन्टीग्रेटेड एक्यूपंक्चर माक्सीबॉक्सन थेरेपी।

सामान्य जिह्वा।

असामान्य जिह्वा।

तीव्र अम्लता के रोगी की एक्यूपंक्चर थेरेपी से पूर्व जिह्वा पर जमी मैल की मोटी परत।

रोगी की 15 सिटिंग्स एक्यूपंक्चर थेरेपी उपरान्त जिह्वा पर जमी मैल की पतली परत।

चित्र 3. इन्टीग्रेटेड एक्यूपंक्चर थेरेपी तथा जिह्वा परपरीक्षण के रोगोपचार पूर्व और उपरान्त के छायाचित्र।

सारणी 1. जिव्हा–नाड़ी परीक्षण पर आधारित सूचीभेदन की प्रभावी चिकित्सा।

	सूचीभेदन उपचार पूर्व परीक्षण और रोग के लक्षण			सूचीभेदन उपचार उपरान्त रोग के लक्षण		
क्र॰	उपचार पूर्व रोग लक्षण	जिव्हा परीक्षण	नाड़ी परीक्षण	उपचार उपरान्त लक्षण	जिव्हा परीक्षण	नाड़ी परीक्षण
1	2 वर्श से अम्लता, अनिद्रा, अत्यधिक स्वेदन, अधिजठर एवं स्पृश्य यकृत।	अग्र भाग पर हल्के नीले रंग की पीली गुलाबी,पतली सफेद पर्त तथा पिछले भाग पर पीली चिपचिपी पर्त, छिला हुआ आमाशय और तिल्ली क्षेत्र , कटा हुआ मध्य भाग तथा दोनों किनारे चमकीले व दांतों के नि ाानयुक्त।	लय युक्त, गहरी, धीमी, उथली 92 प्रति मिनिट।	अम्लीयता में कमी, सामान्य मल तथा नरम पेट।	दोनों तरफ गुलाबी, पतली एवं मध्य भाग के दोनों किनारे कम चमकीले व हल्के दांतों के निशान।	लय युक्त, गहरी, धीमी, उथली 85 प्रति मिनिट।
2	2 वर्श से अम्लता, उदर शूल,1 वर्श से चेहरे, आंखों व हाथों में दर्द और सूजन व सिर दर्द, मान. सिक चिन्ता ,कम स्वेदन ,अत्यधि ाक प्यास, अनिद्रा ,कम भूख, पतले दस्त, पीली पेशाब तथा सर्वाइकल व थोरेसिक रीढ़ की हड्डियों, छोटी आंत और नाभि पर मीठा दर्द।	गुलाबी , मोटी, सफेद पर्त, कटा हुआ, मोटा और चिपचिपा आमाशय और तिल्ली क्षेत्र, अग्र भाग के दोनों किनारों पर काले धब्बे।	लय युक्त, गहरी, धीमी, उथली 88 प्रति मिनिट।	अम्लीयता में कमी, सिर दर्द समाप्त, सामान्य मल तथा नरम पेट, साफ पेशाब और रीढ़ की हड्डियों, छोटी आंत और नाभि पर दर्द में कमी।	गुलाबी , मोटी, सफेद पर्त, कटा हुआ, मोटा और चिपचिपा आमाशय और तिल्ली क्षेत्र में कमी।	लय युक्त, गहरी, 80 प्रति मिनिट।
3	12 वर्श से अम्लता, कम स्वेदन, भूख व प्यास, अनिद्रा,सड़ा बदबूदार मल, पीली पशाब तथा उदर शूल।	गुलाबी ,पतली सफेद पर्त दोनों ओर तथा छिला हुआ आमाशय और तिल्ली क्षेत्र।	लय युक्त, गहरी, धीमी, उथली 84 प्रति मिनिट।	अम्लीयता में कमी, सामान्य मल, साफ पेशाब तथा नरम पेट।	दोनों तरफ गुलाबी, पतली जिव्हा एवं अन्य लक्षण नहीं।	लय युक्त, गहरी, धीमी, उथली 80 प्रति मिनिट।

4	1वर्ष से अम्लता, 6 माह से पैरों में दर्द, 6 माह से सियाटिका दर्द, कम भूख व प्यास, शौच कम व साफ नहीं, पेशाब में जलन तथा छोटी आंत,नाभि औरलंबर क्षेत्र की रीढ़ की हड्डियों (L3, L4,L5,S1) में मीठा दर्द।	अग्र भाग कंटीला– गुलाबी तथा पीली सफेद चिपचिपा पर्त युक्त आमाशय और तिल्ली क्षेत्र , कटा हुआ मध्य भाग तथा दोनों किनारे चमकीले व दांतों के निशान।	लययुक्त,गहरी धीमी, उथली 72 प्रति मिनिट।	अम्लता, पैरों में दर्द, सियाटिका दर्द में पूर्ण आराम, सामान्य भूख व प्यास,,पे ाब में जलन नहीं तथा छोटी आंत,नाभि औरलंबर क्षेत्र की रीढ़ की हड्डियों (L3, L4,L5,S1) में दर्द समाप्त।	अग्र भाग कंटीला– गुलाबी तथा पीली सफेद चिपचिपा पर्त युक्त आमाशय और तिल्ली क्षेत्र व दांतों के निशान में कमी।	लय युक्त, गहरी, धीमी, उथली 70 प्रति मिनिट।
5	15 वर्ष से निर्जीवता सा आभा स, 2–3 वर्ष से यदा कदा जोडों में दर्द,कम स्वेदन, शुष्क व कड़ा मल तथा मीठा उदर शूल।	अग्र भाग कंटीला, मध्य व पिछला भाग गुलाबी,मोटा, चिपचिपा , तथा बहुत अधिक कटे हुए दोनों किनारे।	लय युक्त, गहरी, धीमी, उथली 86 प्रति मिनिट।	अधिक सजीवता,साफ शौच और उदर शूल समाप्त।	अग्र ,मध्य व पिछला भाग के सभी लक्षणों में कमी	लय युक्त, गहरी, धीमी, उथली 84 प्रति मिनिट।
6	अम्लता–निर्जीवता और वातस्फी. ति, चिड़चिड़ापन, स्वेदन व प्यास कम तथा तेज खर्राटे।	अग्र भाग कहीं कहीं चमकीला, कंटीला व मध्य भाग कटा हुआ, पिछला भाग व दोनों किनारों पर पीली, ,मोटी, तथा चिपचिपी परत।	लय युक्त, गहरी, धीमी, उथली 88 प्रति मिनिट।	अम्लता– निजी. वता, वातस्फीति, चिड़चिड़ापन, तथा तेज खर्राटों में कमी।	अग्र ,मध्य व पिछला भाग के सभी लक्षणों में कमी।	लय युक्त, गहरी, धीमी, उथली 90 प्रति मिनिट।
7	15 वर्ष से निर्जीवता सी,9 माह से सियाटिका का सा दर्द, 15 वर्षों से अम्लता व अपच चिड़चिड़ा पन, अनिद्रा, स्वेदन व प्यास कम, सड़ा बदबूदार मल, थोड़ी पेशाब तथा गुलाबी थूक।	अग्र भाग गुलाबी ,हल्का मोटा , तथा चिपचिपा एवं पिछला भाग कटा हुआ।	लय युक्त, गहरी, धीमी, उथली 72 प्रति मिनिट।	अम्लता ,अपच में कमीव निद्रा, निश्चिंतता और सजीवता में बढ़ोतरी।	अग्र भाग गुलाबी व अन्य लक्षण नहीं।	लय युक्त, गहरी, धीमी, उथली 70 प्रति मिनिट।
8	बचपन से निर्जीवता सी, चिन्ताग्र स्त, भयग्रस्त और उदास, अनिद्रा, स्वेदन व प्यास कम तथा दोनों फेंफड़ों से घर–घर की आवाज।	गुलाबी तथा पीली सफेद चिपचिपी पर्त तथा अग्र भाग कंटीला व दांतों के निशान युक्त।	लय युक्त, गहरी, धीमी, उथली 68 प्रति मिनिट।	दोनों फेंफड़ों से घर–घर की आवाज समाप्त,पूरी नींद और निश्चिंतता।	गुलाबी तथा पीली सफेद चिपचिपी पर्त में तथा अग्र भाग कंटीला व दांतों के निशान में कमी।	लय युक्त, गहरी, धीमी, उथली 70 प्रति मिनिट।

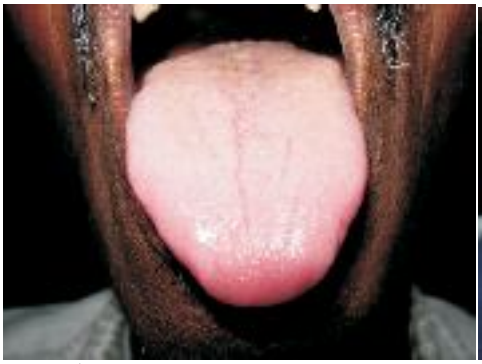

दमा रोगी की एक्यूपंक्चर थेरेपी पूर्व लाल जिह्वा

दमा रोगी की एक्यूपंक्चर थेरेपी उपरान्त गुलाबी जिह्वा

परिणाम और उपयोगिता

रोगियों के जिव्हा

नाड़ी परीक्षण आधारित इन्टीग्रेटेड वैकल्पिक चिकित्सा के रोगोपचार के पूर्व और स्वास्थ्य लाभ के बाद के डाटा सारणी 1 में दर्शाए गए हैं। विभिन्न सामान्य और रोगी समूह के व्यक्तियों के डाटा में भिन्नता का स्पष्ट निष्कर्ष देखा जा सकता है। उपचार पूर्व और बाद के जीभ के लक्षणों के अंतर्गत विभिन्न रंग,सतही परतए संरचना और अन्य विशेष लक्षण चित्र 3 में द ार्ये गये हैं जो कि शरीर के आंतरिक अंगों की यथा स्थिति दिखाते हैं।

यह भी निष्कर्ष निकला है कि वात की अधिकता में जीभ खुरदरी और कटी हुई दिखती हैं। पित्त प्रभावित जीभ जलन की अनुभूति के साथ रंग को दर्शाती है और कफ प्रभावित गीली, पतली और जमी हुई होती है। ये सभी लक्षण परम्परागत सूचीभेदन चिकित्सक को उपयुक्त उपचार क्रम के निर्णय लेने में सहायक होते हैं।

आधुनिक आयुर्विज्ञान ने मनुष्य को शरीर और मन तथा शरीर को विभिन्न अंगों में विभाजित कर रखा है। प्रत्येक अंग पर आधारित विशेषज्ञ, विशिष्ट परीक्षण, और उपचार केन्द्रित है। परन्तु प्रत्येक प्रणाली मात्र प्रभावित अंग को ही नहीं बल्कि संपूर्ण शरीर की क्रिया शीलता को प्रभावित करती है। जैसे कोई एक अंग रोगग्रस्त होने पर सुचारू रूप से क्रियाशील नहीं रहता, परिणामतः उत्पन्न ज्वर संपूर्ण शरीर के अंगो और अणु–अणु को प्रभावित करता है। अतः विशिष्ट अंग और सीमित रोग या समस्या पर आधारित एलोपैथी चिकित्सा पूर्णतया अपर्याप्त है। जबकि वैदिक विज्ञान पर आधारित जिव्हा–नाड़ी परीक्षण संपूर्ण शरीर का पूर्ण, विस्तृत और सूचनात्मक विवरण देता है।

एक अध्ययन के अनुसार प्रत्येक वर्ष 80 लाख से अधिक अमेरिकी एक्यूपंक्चर चिकित्सा का उपयोग विभिन्न रोगों के उपचार में करते हैं। कैंसर को छोड़कर कमर दर्द, तीव्र सिरदर्द, गठिया, उच्च रक्तचाप, बांझपन, दमा और मिर्गी जैसे रोगों में एक्यूपंक्चर थेरेपी अधिक प्रभावकारी सिद्ध हुई है। विभिन्न कैंसर रोगों के प्रारंभिक लक्षणों और उनसे जुड़ी अन्य समस्यायों के निदान में अनेक अध्ययन औ रशोध पत्र प्रकाशित हुए हैं।

रक्षा अनुसंधान एवं विकास संगठन की तेजपुर स्थित रक्षा कृषि अनुसंधान प्रयोगशाला द्वारा स्वीकृत एक परियोजना के अंतर्गत माक्सीबॉक्सन की वैकल्पिक चिकित्सा पद्धति पर सफलता पूर्वक तीव्र दस्त के उपचार का निदान इरिम द्वारा खोज लिया गया है, इस प्रारम्भिक अध्ययन पर गहन शोध की आवश्यकता है।

निष्कर्ष

रोग निदान की समग्र और विस्तृत बाह्य व आंतरिक अंगों की जानकारी और उपयुक्त उपचार के निर्धारण में जिह्वा–नाड़ी परीक्षण पर आधारित सूची भेदन व सहयोगी वैकल्पिक चिकित्सा पद्धतियाँ अनेक रोगों के नियंत्रण व उपचार में अत्यंत प्रभावकारी सिद्ध हुई हैं। इरिम भारत सरकार, पश्चिमी बंगाल सरकार और इग्नू द्वारा मान्यता प्राप्त एकमात्र ऐसा संस्थान है, जिसने विभिन्न संगठनों/परिषदों द्वारा स्वीकृत परियोजनाओं के अंतर्गत सफल वैकल्पिक चिकित्सा और स्वास्थ्यरक्षक वितरण तंत्र विकसित करने में अमूल्य योगदान दिया है। जिव्हा–नाड़ी परीक्षण आधारित सूचीभेदन चिकित्सा पद्धति को राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय जर्नलों और गोष्ठियों में प्रकाशित शोध पत्रों द्वारा मान्यता प्राप्त हुई हैं। इरिम संस्थान में संग्रहित रोग परीक्षण और उपचार के आंकड़े आयुर्विज्ञानी चिकित्सक व छात्र, स्वास्थ्य सेवा से जुड़े कर्मी और अन्य पद्धतियों के चिकित्सक अनुसंधान और उच्च अध्ययन हेतु लाभ लेते हैं।

वस्तुतः आयुर्वेद सहित भारतीय चिकित्सा पद्धतियों की वैदिक परम्पराएँ विभिन्न रोगों के उपचार में इतनी प्रभावोत्पादक सिद्ध हो रही है कि विश्व के विभिन्न देशों में इनका प्रचलन निरन्तर बढ़ रहा है। आधुनिक विज्ञान जहाँ क्लोनिंग के द्वारा विभिन्न जीवों की सृष्टि रचना में अग्रसर हो चुका है वहीं दूसरी ओर त्वचा के नीचे एक चिप का रोपण करके जीवन रक्षक दवाओं की नियमित एवं समयबद्ध आपूर्ति भी सुनिश्चित कर रहा है। पौराणिक ग्रंथों के पात्र 'गांधारी के 100 पुत्र (क्लोनिंग का उदाहरण) गणेश, भैंसासुर, बकासुर, खरदूशण, अश्विनी कुमारों द्वारा दक्ष प्रजापति के कटे सिर की शल्य क्रिया आदि उन्नत चिकित्सा पद्धतियों के उदाहरण हैं। टिशू कल्चर, सेल कल्चर जीनोमिक्स, नैनो टैक्नोलॉजी (आयुर्वेदीय भस्में) आदि नवीन तकनीक तथा अत्याधुनिक यंत्रों एवं उपकरणों का उपयोग करते हुए उपचार की पुरातन वैदिक कालीन भारतीय चिकित्सा पद्ध तियों को अनुसंधान द्वारा और अधिक वैज्ञानिक एवं प्रमाणिक स्वरूप प्रदान किया जा सकता है। प्रचलित पंचकर्म द्वारा कायाकल्प प्रमाणिक तकनीक सिद्ध हुई है।

आज इस बात की तात्कालिक आव यकता है कि देश में समग्र व्यक्तित्व विकास हेतु स्वास्थ्य संबंधी पश्चिमी मॉडल का अंधानुकरण न कर हम अपने देश की पारम्परिक चिकित्सा पद्धतियों को प्राथमिकता देकर स्वास्थ्य–सेवा को सर्व सुलभ बनाएँ। इस संदर्भ में वैदिक विज्ञा नशोधार्थियों और आधुनिक आयुर्विज्ञान के अनुसंधान और उपयोग से जुड़े विद्वानों द्वारा भावी अनुसंधान परियोजनाओं के क्षेत्र पर विचार विमर्श किए जाने की आवश्यकता है, ताकि वात–पित्त–कफ, नाड़ी, जिव्हा, प्रभामण्डल और शरीर के अन्य अंगों के सिगनल रिकार्ड करने हेतु साफ्टवेयर आधारित उपकरणों का विकास किया जा सके। देश की अनुसंधान परिषदों का सहयोग एवं मार्गदर्शन नवीन अनुसंधानों को सार्थक एवं रचनात्मक दिशा प्रदान कर सकें।

संदर्भ

1. Ranade, S (1996), Marma points: Ayurvedic pressure point. From Atharva Veda, in Natural Healing through Ayurveda Ed. Frawley, D. Motilal Banarasidass Publishers, Delhi..
2. Charak Samhita (Shree Gulabkaumveraba Ayurvedic Society, Jamnagar, India 1949).
3. Sushruta Samhita (Nirnayasagar Press, Bombay 1948).
4. Thatee, D. G (1992) Acupuncture, Marmas and other Asian therapeutic techniques, Chaukhambha Oriental Publishers, Delhi.

5. Shiva Samhita (in Callinann Paul, Holistic body signatures, Australia Well being Magazine, Vol 31)
6. Frank Ross (1994) The Lost secrets of Ayurvedic Acupuncture, Motilal Banarasidass Publishers, Pvt. Ltd. Delhi.
7. Wetzel, M, S et al (1998), Courses involving complementary and Alternative Medicine at US Medical schools, JAMA 280(9), 748-787.
8. Omura, Y. Acupuncture Medicine-Its Historical and Clinical background, Japan Publications Inc. Tokyo.
9. Liangyue, D et al (1987). Chinese Acupuncture & Moxibustion, 1st Edition, Chief Ed Xinnon, C. Foreign Language Press, Beijing China.
10. Bakshi. D, et al (1996) Historical introduction of Acupuncture in India, Bull. Ind. Ins. History of Medicine Vol. XXV pp 216-225.
11. Gopal Ram and Bakshi D (2012) Vedic Science of Human Aura for Medical Treatment and Attainment of Holistic Health, International Vedic Conference and 15th India Conference of WAVES on "Veda and Thought Revolution' jointly organized by Dev Sanskriti University, Haridwar India, WAVES India and WAVES USA at Dev Sanskriti University, Haridwar India. March 14-17, 2012, Souvenir with Abstracts of Papers, abstract no.13, p 39.

वायु–प्रदूषण एवं जैव क्षरण अध्ययन के संदर्भ में उत्तर प्रदेश की शैक विविधता

अपूर्वा श्रीवास्तव, संजीव नायक, तथा दलीप कुमार उप्रेती
राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान, लखनऊ, उत्तर प्रदेश

शैक दो जीवों का संयोजन है जो कवक और हरी शैवाल या साइनोबैक्टीरिया के संयोजन से बनती है। शैवाल अपने प्रकाश संश्लेषण वर्णक की उपस्थिति में भोजन बनाने का पूर्ण कार्य करते हैं, इस कार्य के लिये कवक पूर्णतः असमर्थ होता है। दूसरी ओर कवक के सुकाय खनिज लवण और जल प्रवाहित करने के लिये उत्तरदायी होते हैं तथा शैवाल की अधिक शुष्कता, नमी, ठंड और ताप से रक्षा भी करते हैं। इस प्रकार के जीवन को सहजीवन कहते हैं और इस सम्बन्ध से दोनों जीवों को परस्पर लाभ पहुँचता है। शैक निम्न श्रेणी की ऐसी छोटी वनस्पतियों का समूह है जो विभिन्न प्रकार के जीवनाधारों पर उगे हुए पाए जाते हैं। शैक, वृक्षों की पत्तियां एवं छाल, प्राचीन दीवार, भूतल, चट्टान और शिलाएँ जिन पर दूसरे समूह के पादप उगने में अक्षम होते हैं उस पर आसानी से उग सकते हैं। यद्यपि शैक अधिकतर धवल रंग के होते हैं तथापि लाल, नारंगी, बैगनी, नीले, भूरे, काले तथा अन्य चित्ताकर्षक रंगों के शैक भी पाये जाते हैं। साधारणतः शैक में जड़ों का अभाव होता है, लेकिन जड़ जैसे मूलाभास की उपस्थिति के कारण ये सतह से जुड़े होते हैं और उसी पर इनका विकास होता है। शैक का विकास बहुत धीमी गति से होता है, ये एक वर्ष में कुछ मिलिमीटर ही वृद्धि करते हैं। कुछ शैक प्रजातियां एक वर्ष में 30 मिलिमीटर या 1.2 इंच तक वृद्धि कर सकती हैं। वेस्ट ग्रीनलैण्ड के आर्कटिक क्षेत्र से विश्व का सबसे पुराना शैक प्राप्त हुआ है जिसकी उम्र लगभग 4,500 वर्ष है।

विश्व के सभी क्षेत्रों में शैक अपनी उपस्थिति दर्ज करते हैं। कुछ शैक तो ताप की चरम सीमाओं और दीर्घपोषावधि में भी जीवित रहने में सक्षम हैं। अतः ये ऐसे क्षेत्रों मे प्रचुरता से पाये जाते हैं जहाँ साधारणतः अन्य वनस्पतियाँ नहीं उग सकतीं। ये समुद्री तल से अधिक ऊँचाई पर उष्ण प्रदेश, ध्रुव प्रदेश, रेगिस्तान एवं अत्यन्त नम स्थानों पर पाये जाते है। विरले ही शैक पानी के भीतर मिलते हैं जिनमें वैरुकेरिया वंश की प्रजातियाँ मुख्य हैं।

शारीरिक संरचना के आधार पर शैक तीन प्रकार के होते हैः पर्तनुमा, पत्तेदार एवं झाड़ीदार शैक। इनके अलावा ये लैप्रोज व स्क्वैम्यूलोज भी होते हैं। पर्तनुमा शैक चपटे और पतले होते हैं तथा वृक्ष की छाल या शिलाओं से चिपके रहते हैं। अतः ये चट्टान के समान ही दिखाई देते हैं। पत्तेदार शैक पत्ती की भाँति होते हैं जिसका बाहरी किनारा शिथिल होता है। ये पतले–पतले मूलाभासों की सहायता से शिलाओं या छाल से चिपके रहते हैं। झाड़ीदार शैक अत्यधिक विभाजित बेलनाकार तथा फीते की भाँति होते हैं जो अपने अधः स्तर से आधारिक भाग द्वारा झाड़ी की भाँति जुड़े होते हैं। सभी शैक अधिपादप हैं, परजीवी नहीं। ये अपने परपोषी पर केवल सहारे के लिये ही आश्रित होते हैं। उससे (केवल नमी के अतिरिक्त) कोई भोज्य पदार्थ ग्रहण नहीं करते।

उत्तर प्रदेश में शैक विविधता

शैक सर्वव्यापक हैं। यह अनुमान है कि विश्व में शैक की लगभग 20,000 प्रजातियाँ (सीपमैन एंव एपट्रूट 2001) ज्ञात है जिनमें से भारत में 2,300 प्रजातियाँ पायी जाती हैं (सिंह एवं सिन्हा 2010)।

भारत में सबसे अधिक शैक पर अध्ययन एवं नई प्रजातियों की खोज अधिकांशतः शैक प्रचुर क्षेत्रों में ही की गई हैं। शैकविद्ों ने गंगा के मैदानों, मध्य भारत, दक्कन के पठार या देश के शुष्क क्षेत्रों पर शैक के अध्ययन पर कम ध्यान दिया है।

वर्ष 2000 में उत्तराखण्ड राज्य के निर्माण से पूर्व उत्तर प्रदेश की गणना शैक की अधिकतम जैव विविधता वाले राज्य के रुप मे गणना होती थी (471 प्रजातियाँ, श्रीवास्तव 2004)। उत्तराखण्ड राज्य अलग होने के पश्चात उत्तर प्रदेश में शैक से सम्बन्धित कोई प्रामाणिक कालानुक्रमिक अन्वेषण उपलब्ध नहीं है। हेपिया ल्यूटोसा (एक) निल, डुडजियोन द्वारा इलाहाबाद से 1926 में सबसे पुराना रिकार्ड उपलब्ध है लेकिन वे उल्लेखनीय नहीं हैं।

सर्वप्रथम श्रीवास्तव (2004) ने उत्तर प्रदेश में शैक की 26 प्रजातियाँ प्रकाशित की जबकि सिंह एवं सिन्हा (2010) ने उत्तर प्रदेश से भारतीय शैक की अनुसूची में केवल 43 प्रजातियाँ ही दर्ज की। दोनों ही मामलों में यह स्पष्ट है कि अभी तक जितनी भी सूचियां व प्रकाशन प्रकाशित किये गए हैं वे अधूरे हैं। राज्य में अभी तक हुए अध्ययन स्पष्ट रुप से इंगित करते हैं कि राज्य में शैक अन्वेषण अपर्याप्त है और सम्भवतः कई शैक प्रचुर क्षेत्र वैज्ञानिक सर्वेक्षण से अछूते रह गये हैं। उत्तर प्रदेश के 71 जिलों में से केवल निम्न जिलों से ही शैक संग्रह के आकड़े ज्ञात हैंः—आगरा, महोबा, कानपुर, रायबरेली, लखनऊ, हरदोई, सीतापुर, लखीमपुर—खीरी, बहराइच, गोण्डा, फैजाबाद, बस्ती, इलाहाबाद एवं मिर्जापुर।

वर्तमान में प्रकाशित शोध पत्रों, साहित्यों के संकलन एवं अप्रकाशित शोध प्रबन्धों के अध्ययन करने पर यह परिणाम मिला है कि उत्तर प्रदेश में शैक की 90 प्रजातियाँ उपलब्ध हैं। हाल ही में राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान, लखनऊ, उत्तर प्रदेश जैव विविधता बोर्ड द्वारा प्रदत्त परियोजना में राज्य के पूर्वी भाग (सोनभद्र) में शैक अध्ययन प्रारम्भ किया गया जिसके परिणामस्वरुप राज्य की शैक विविधता में 8 नई प्रजातियों की बढोतरी हुई तथा अब उत्तर प्रदेश में शैक की संख्या बढ़कर 98 प्रजातियाँ, 24 कुल व 33 वंश हैं। उत्तर प्रदेश में पर्तनुमा शैक का प्रभुत्व है, पत्तेदार शैक की कोलेमा, डिरिनेरिया, हाइपरफीसिया, पारमोट्रीमा, फिओफीसिया, फिसिया, पिक्सिन वंश प्रमुख हैं। स्क्वैम्यूलोज शैक की 14 प्रजातियाँ जिनमें फिलिस्कम, इन्डोकार्पन, पेल्टूला प्रमुख हैं। राज्य से केवल एक क्राइजोथ्रिक्स क्लोरिना ही लैप्रोज शैक पाया गया है जबकि झाड़ीदार शैक पूरी तरह से अनुपस्थित हैं। शैक की फिजिएसी परिवार अब तक सबसे विविध व राज्य में प्रमुख है। फिजिएसी परिवार की 8 वंश व 14 प्रजातियाँ उपलब्ध हैं। इसके उपरान्त लैकेनोरेसी कुल 13 प्रजातियों व एक वंश के साथ उपलब्ध हैं।

सामान्यतः उत्तर प्रदेश में शैक वन क्षेत्रों, आम के बागों, स्मारकों, पुरानी इमारतों, चट्टानों व सड़क के किनारे पेड़ों पर भी उगते हुए मिल जाते हैं। राज्य में शैक मुख्यतः आम, जामुन, बबूल व साल के वृक्षों पर मिलते हैं जबकि पठारी क्षेत्र जैसे सोनभद्र व मिर्जापुर में शैक वृक्षों के अतिरिक्त चट्टानों में प्रमुख रुप से पाये जाते हैं। राज्य के बहराइच (42 प्रजाति) व सोनभद्र (36 प्रजाति) जिलों की गणना शैक प्रचुर क्षेत्रों में की जा सकती हैं।

शैकों द्वारा जैवमापन अध्ययन

यदि किसी स्थान की वायु अत्यधिक सल्फर डाइ ऑक्साइड व अन्य प्रदूषकों से प्रदूषित है तो वहाँ कोई भी संवेदनशील शैक नहीं पाया जाएगा। किसी क्षेत्र में झाड़ीदार व पत्तेदार शैक प्रचुर मात्रा में मिल रहे हैं तो ये इस तथ्य का संकेत है कि वहाँ की वायु स्वच्छ व प्रदूषण रहित है। यद्यपि शैक में जड़ें पूर्णतः अनुपस्थित हैं इसलिये ये पोषक तत्वों के लिये वायुमण्डलीय स्त्रोतों पर निर्भर होते हैं, यही कारण है कि वायु में उपस्थित प्रदूषकों को तुरन्त अपने सुकाय में अवशोषित कर लेते हैं, और ये प्रदूषक उनके ऊतकों में अवशोषित हो जाते हैं। अतः हम शैक को प्रदूषक अवशोषक के रुप में

भी प्रयोग करते हैं। पत्तेदार शैक की पिक्सिन कोकस (स्व.) निल. प्रजाति प्रदूषकों को अपने सुकाय में आसानी से अवशोषित कर लेती है, इसलिये शैक की इस प्रजाति को प्रदूषण जैवसंकेतक के रूप में प्रयोग में लाया जा रहा है।

उत्तर प्रदेश में पत्तेदार प्रदूषण सहिष्णु शैकों की उपस्थिति सबसे अधिक पायी गई। इस श्रेणी में पिक्सिन कोकस तथा अन्य फिसियेसी कुल के सदस्य राज्य में सर्वाधिक पाये गये। वर्तमान में इस प्रजाति का उपयोग विभिन्न प्रदूषकों एवं वायु में उपस्थित भारी तत्वों को मापने के लिये किया जा रहा है। इनके अलावा फिओफीसिया हिस्पिड्यूला, डीरिनेरिया कनसिमिलिस भी प्रदूषण सहिष्णु प्रजातियाँ हैं।

उत्तर प्रदेश में सर्वप्रथम शैक द्वारा जैवमापन अध्ययन दूबे एवं अन्य (1999) ने किया था। उन्होंने शैक को फैजाबाद जिले के विभिन्न स्थानों पर प्रत्यारोपित कर शहर में लेड धातु की सान्द्रता को मापने का कार्य किया। परिणामस्वरुप शहर के वाहन बाहुल्य क्षेत्रों में लेड धातु की सान्द्रता सबसे ज्यादा मिली और शहर से दूर जाने पर इसकी सान्द्रता कम होती गई।

वाजपेयी एवं अन्य (2004) ने लखनऊ शहर के निवास स्थानों में शैक की डिरिनेरिया कनसिमिलिस प्रजाति को दो स्थानों पर प्रत्यारोपित किया, एक अधिक ऊँचाई पर दूसरा कम ऊँचाई पर एवं उनमें भारी तत्वों की मात्रा का विश्लेषण किया। परिणामस्वरुप अधिक ऊँचाई पर प्रत्यारोपित शैक में क्रोमियम एवं कॉपर की सान्द्रता ज्यादा मिली जबकि जिंक की सर्वाधिक मात्रा कम ऊँचाई वाले प्रत्यारोपित शैक में मिली।

मिश्रा एवं अन्य (2003) ने लखनऊ शहर के वाणिज्यिक एवं औद्योगिक क्षेत्रों में शैक को प्रत्यारोपित किया। उनके अध्ययनानुसार शैक जो प्रदूषकों का सीधा सामना कर रहे थे उनके सुकायों में भारी तत्वों की सान्द्रता अधिक मिली।

सक्सेना (2004) ने लखनऊ शहर में शैक विविधता एवं उनमें भारी तत्वों को अवशोषित करने की क्षमता का अध्ययन किया। उनके अध्ययनानुसार शहर के मध्य में कोई भी शैक प्राप्त नहीं हुआ एवं 5 किलोमीटर की सीमा के अन्दर जो शैक प्राप्त हुए उनमें भारी तत्वों की मात्रा अधिक मिली और जैसे ही शहर से दूरी बढ़ती गई उनमें भारी तत्वों की सान्द्रता कम होती गई (सक्सेना *एवं अन्य* 2007)।

वाजपेयी एवं अन्य (2009) ने रायबरेली स्थित थर्मल बिजली संयन्त्र के चारों तरफ पिक्सिन कोकस प्रजाति पर प्रकाश संश्लेषण वर्णक प्रोटीन, भारी तत्वों का अध्ययन किया। परिणामस्वरूप शैक द्वारा अवशोषित किये गये भारी तत्व ने पिगमेंट की सान्द्रता जैसे क्लोरोफिल 'a', क्लोरोफिल 'b' की सान्द्रता को कम किया वही प्रोटीन को बढ़ाया और बिजली संयन्त्र से दूर जाने पर पि. कोकस प्रजाति की क्लोरोफिल की सान्द्रता में वृद्धि हुई जबकि प्रोटीन, कैरोटिनायड् एवं फिओफाइटाइजेन में कमी आई। परिणाम यही इंगित करते हैं कि भारी तत्वों का अवशोषण पि. कोकस प्रजाति की कार्यिकी पर प्रभाव डालते हैं।

सत्या (2008) ने कानपुर शहर के विभिन्न क्षेत्रों से रिनोडिना सोफड्स (एक.) माँसल प्रजाति पर वातावरणीय प्रदूषकों मुख्यतः पॉलिसाइक्लिक ऐरोमेटिक हाइड्रोकार्बन को अवशोषित करने की क्षमता एवं इसकी उपयोगिता का मूल्यांकन किया। विभिन्न स्थलों पर पॉलिसाइक्लिक ऐरोमेटिक हाइड्रोकार्बन की रेंज 0.189 ± 0.029 $\mu g\ g^{-1}$ एवं 0.494 ± 0.105 $\mu g\ g^{-1}$ मिली। एसीनेयथ्रील एवं फेनेनथ्रीन की अधिक मात्रा जो यातायात प्रदूषण, जैविक पदार्थों के दहन से उत्सर्जित होती हैं, कानपुर शहर में प्रदूषण का भी मुख्य स्त्रोत हैं।

वायुमण्डलीय प्रदूषण के अतिरिक्त शैक की विशेष सुकाय संरचना इसे मिट्टी, चट्टान या अन्य जीवनाधार पर उपलब्ध भारी तत्वों को बड़े पौधों की अपेक्षा तीन गुना अधिक मात्रा में एकत्रित करने की क्षमता प्रदान करती है। किसी स्थान के शैकों में उपस्थित भारी तत्वों का वर्तमान स्तर ज्ञात होने

से भविष्य में इस स्तर के घटने या बढ़ने पर उक्त क्षेत्र में होने वाले वातावरणीय प्रदूषण के परिवर्तन का आकलन किया जा सकता है। यही कारण है कि उत्तर प्रदेश के प्रमुख औद्योगिकृत क्षेत्रों या जिलों जैसे लखनऊ, कानपुर में प्रदूषण के बढ़ते हुए स्तर को मापा जा सका है।

वैसे तो वर्तमान समय में वायुमण्डलीय प्रदूषण मापन के लिये अनेक यंत्र व मशीनें उपलब्ध हैं, लेकिन किसी स्थान के जीवित पेड़–पौधों पर उस स्थान में व्याप्त प्रदूषण का प्रभाव शैक द्वारा अत्यन्त सरल तरीके से जाना जा सकता है जिस पर बहुत कम धन खर्च होता है।

पूरे उत्तर प्रदेश में प्रदूषित क्षेत्र के मानचित्र में विभिन्न स्थानों में एक जाति की उपस्थिति तथा अनुपस्थिति को दिखाकर प्रदूषण के प्रभाव का आकलन किया जा सकता है। वर्तमान में उपस्थित जाति भविष्य में किये गये सर्वेक्षण में अनुपस्थित होने पर प्रदूषण के प्रभाव का आकलन करने में सहायक होती है।

शैक द्वारा जैवक्षरण अध्ययन

ऐतिहासिक इमारतों में शैक बहुत सुगमता से उग जाते हैं तथा ऊपरी सतह को नुकसान पहुँचाते हैं। सामान्यतः पत्तेदार शैक की सभी प्रजातियों में मूलाभास उनके निचले भाग पर होते हैं और जो जीवनाधार से चिपकने में उनकी सहायता करते हैं। जबकि पर्तनुमा शैक में कोई मूलाभास नहीं पाया जाता, अतः ये आधार से सीधे चिपके रहते हैं व इमारतों को ज्यादा हानि पहुँचाते हैं। सभी इमारते शैक को एक विशेष पारिस्थितिकी आवास प्रदान करती है जो उच्च हाइड्रोजन सान्द्रता, कम आर्द्रता रोकने की क्षमता युक्त जीवनाधार हैं। विभिन्न आकार एवं रूप लिये हुए क्षैतिज छतों के तल तथा उर्ध्वस्थ दीवारे, जो सूर्य के प्रकाश में एवं वर्षा के दिनों में भिन्न–भिन्न तत्वों की मात्रा प्राप्त करती हैं, शैक की वृद्धि में सहायक होती हैं।

जब शैक को नमी प्राप्त होती है तो ये फैल जाते हैं एवं जब नमी खत्म हो जाती है तो ये सिकुड़ जाते हैं। फैलने सिकुड़ने की प्रक्रिया इमारतों की ऊपरी सतह पर लगातार दबाव डालकर उन्हें छोटे–छोटे कणों में तोड़ती रहती है। शैक प्रजातियाँ जिनमें द्वितीयक उपापचयज (सैकंडरी मेटाबोलाइट्स) उपस्थित हो, जीवनाधार को अधिक क्षति पहुँचाती है। अतः शैक की प्रकृति जानकर ही उनके द्वारा हुई क्षति का सही आकलन किया जा सकता है।

उत्तर प्रदेश मुगलकालीन ऐतिहासिक इमारतों की उपस्थिति दर्शाने वाला एक अग्रणी राज्य है। लखनऊ उत्तर भारत का एक महत्वपूर्ण शहर है जो उत्तर प्रदेश की राजधानी भी है। सांस्कृतिक विरासत एवं मुगलों का राज्य होने के कारण यहाँ की ऐतिहासिक इमारतें गुम्बदनुमा आकार की हैं जिनको बनाने में चूने का अत्यधिक प्रयोग हुआ है। चूनायुक्त आधार पर कैल्सीकोलस शैक सुगमता से उग आते हैं।

सिंह एवं उप्रेती (1991) ने लखनऊ की ऐतिहासिक इमारतों का जैवक्षरण करने वाले शैक की 11 प्रजातियों की उपस्थिति दर्ज कर यह बताया कि स्मारकों की बनावट एवं वहाँ की जलवायु शैक विविधता पर प्रभाव डालते हैं। अयूब (2005) ने उत्तर प्रदेश के 6 जिलों के 15 स्मारकों पर शैक की 6 कुल व 6 वंश एवं 14 प्रजातियों का विस्तृत वर्णन करते हुए शैक द्वारा ऐतिहासिक इमारतों को हुई क्षति का विवरण प्रस्तुत किया है।

उत्तर प्रदेश में पायी जाने वाली लगभग सभी प्राचीन इमारतों में ईंट, मौरंग, गारा एवं चूने के प्लास्टर का प्रयोग किया गया है जो क्षारीय माध्यम है तथा उस पर उगने वाले शैक स्वतः इस योग्य होते हैं कि वे वायुमण्डलीय अम्लीय गैसों के प्रभाव का मुकाबला कर सके। लखनऊ की विभिन्न प्राचीन इमारतों पर चूने के प्लास्टर का उपयोग हुआ है तथा इस पर प्रमुखतः चूने पत्थर पर उगने वाले बेसीडिया, पेल्टुला, इन्डोकार्पन, फिलिस्कम आदि प्रजातियाँ बहुतायत में मिलती हैं। शैक के उगने से भवनों को होने वाली क्षति के विषय में कोई प्रामाणिक तथ्य ज्ञात नहीं है।

इमारतों को क्षति पहुँचाने वाले शैक की वृद्धि को रोकने के लिये दीवारों को अमोनिया वाष्प से अभिक्रिया कराके उदासीन कर मिथाइलेटेड एल्कोहॉल में 5 प्रतिशत मार्फोलीन विलयन से दीवारों पर स्प्रे करते हैं। अगले चरण में एल्कोहल के साथ 0.1 प्रतिशत साइट्रीमाइड दीवारों को लम्बे समय तक शैक मुक्त रखती हैं। अन्त में पॉलिविनाइल ऐसीटेट (PVA) विलयन की पुताई से दीवारें भी शैक मुक्त रहती हैं।

इस नियंत्रण द्वारा शैक के सुकाय नष्ट तो हो जाते हैं पर यह स्थायी हल नहीं है। रसासनिक पदार्थों के हट जाने पर शैक पुनः उग जाते हैं। अतः समय–समय पर रासायनिक अभिक्रियाएं एवं मरम्मत से भी भवनों, इमारतों को सुरक्षित रखा जा सकता है व शैक द्वारा होने वाली क्षति को रोका जा सकता है।

निष्कर्ष

उत्तर प्रदेश देश का सबसे बड़ा राज्य है जिसका भौगोलिक क्षेत्र 2,40,928 वर्ग किलोमीटर है जो लगभग देश का 7.3 प्रतिशत क्षेत्र है पर इसका वन आवरण लगभग 6.86 प्रतिशत ही है। उत्तर प्रदेश शैकों के सर्वेक्षण की दृष्टि से काफी पीछे हैं। प्रदेश के 71 जिलों में से केवल 15 जिलों से ही शैक की लगभग 98 प्रजातियाँ ज्ञात हैं। उत्तर प्रदेश की पादप विविधता को दृष्टिगत करते हुए यह संख्या अत्यंत कम है। इसी तथ्य को ध्यान में रखकर उत्तर प्रदेश में शैक विविधता सर्वेक्षण के कार्य को प्राथमिकता दी गई है ताकि शीघ्र ही प्रदेश के शैक अध्ययन से अछूते रह गये क्षेत्रों से भी शैक सर्वेक्षण तथा संग्रह सम्भव हो सके। शैक की वातावरणीय प्रदूषण के प्रति अति संवेदनशीलता के कारण ही वायु प्रदूषण मापन में शैक का बहुत अधिक उपयोग है। यूरोपीय देशों की तरह भारत में भी भविष्य में शैक द्वारा प्रदूषण मापन की विभिन्न विधियों का उपयोग तथा उपलब्ध सूचनाएं देश में बढ़ते प्रदूषण के लिये बनाई जाने वाली विभिन्न परियोजनाओं के लिये उत्तम आधारभूत सूचना प्रदान करने में सहायक होंगी।

सन्दर्भ

1. अयूब, ए.–लाइकेन फ्लोरा ऑफ सम् मेजर हिस्टोरिकल मान्यूमेंट्स एण्ड बिल्डिंग ऑफ उत्तर प्रदेश। पी एच.डी. थीसिस, फैजाबाद यूनिवर्सिटी, फैजाबाद, 2005।
2. दूबे, ए.एन., पाण्डेय, वी., उप्रेती, डी.के. एवं सिंह, जे.–एक्यूमुलेशन ऑफ लेड ग्रोइंग इन एण्ड अराउण्ड फैजाबाद, यू.पी., इण्डिया। इण्डियन ज. इन्विरान्. बायो., 1999, 20(3): 223–225।
3. बाजपेयी, आर., उप्रेती, डी.के. एवं मिश्रा, एस.के.–पल्यूशन मॉनीटरिंग विद द् हेल्प आफ लाइकेन ट्रांसप्लान्ट, टेक्निक ऐट सम् रेजिडेंसियल साइट्स ऑफ लखनऊ सिटी, यू0पी0। इण्डियन ज. इन्विरान्. बायो., 2004, 25(2): 191–195।
4. बाजपेयी, आर., उप्रेती, डी.के., नायक, एस. एवं कुमारी, बी.–बायोडाइवर्सिटी, बायोएक्यूमुलेशन एवं फिजियोलॉजिकल चेंजेज इन लाइकेन ग्रोइंग इन द् विसिनिटी आफ कोल बेस्ट थर्मल पॉवर प्लान्ट आफ रायबरेली डिस्ट्रिक्ट, नार्थ इंडिया। ज. हजा. मैट., 2010, 174: 429–436।
5. मिश्रा, एस.के., उप्रेती, डी.के., पाण्डेय, वी. एवं बाजपेयी, आर.–पल्यूशन मॉनीटरिंग विद द् हेल्प आफ लाइकेन्स ट्रांसप्लान्ट, तकनीक इन सम् कॉमर्शियल एवं इण्डस्ट्रियल एरियाज आफ लखनऊ सिटी। पल्यूट. रेस., 2003, 22(2): 221–225।
6. सत्या, उप्रेती, डी.के. एवं पटेल डी.के.–*रिनोडिना सोफड्स* (एक.) मॉसलः ए बायोएक्यूम्यूलेटर आफ पॉलिसाइक्लिक हाइड्रोकार्बन (पी0ए0एच0) इन कानपुर सिटी, सिटी, इण्डिया। इनविरान् मानिट. असेस., 2012, 184: 229–238।
7. सक्सेना, एस –लाइकेन फ्लोरा आफ लखनऊ डिस्ट्रिक्ट विद रिफरेन्स टू एअर पल्यूशन स्टडीज इन द् एरिया। पीएच0डी0 थीसिस, लखनऊ यूनिवर्सिटी, लखनऊ, 2004।

8. सक्सेना, एस., उप्रेती, डी.के. एवं शर्मा, एन.–हैवी मेटल एक्यूमुलेशन इन लाइकेन ग्रोइंग इन नार्थ साइड ऑफ लखनऊ सिटी। इण्डियन ज. इन्विरान्. बायो., 2007, 28(1): 45–51।

9. सिंह, के.पी. एवं सिन्हा, जी.पी.–इण्डियन लाइकेन्स् ऐन एनोनेटेड चेक लिस्ट, बाटनिकल सर्वे ऑफ इण्डिया, कोलकाता, 2010।

10. सीपमैन, एच.जे.एम. एवं एपट्रूट, ए.–व्हेयर आर द मिसिंग लाइकेन्स? माइक्रो. रिस., 2001, 105: 1433–1439।

11. श्रीवास्तव, एस.के.–फ्लोरिस्टिक डाइवर्सिटी इन यू.पी.–ऐन ओवरव्यू। ज. इको. टेक्सान. बाट., 2004, 28(2): 292–334।

इलैक्ट्रॉनिक अपशिष्ट–वर्तमान परिदृश्य में

विधि व्यास एवं धीरज मंडलोई
अभियांत्रिकी एवं प्रौद्योगिकी संस्थान, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इन्दौर, मध्य प्रदेश

सारांश

विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी ने जहाँ विश्व में उपलब्धियों की ऊँचाइयों को छुआ है, वहीं मानव की जीवन शैली को भी अप्रत्याशित रूप से परिवर्तित कर दिया है। विकास की दौड़, में भारत भी कहीं पीछे नहीं है। विकासशील देशों में भारत का नाम विज्ञान और तकनीकी के क्षेत्र में सम्मानपूर्वक लिया जाता है। संसार की हर वस्तु मनुष्य के लिए वरदान भी है, और अभिशाप भी। कहावत है कि, ''आवश्यकता आविष्कार की जननी है''।

यदि हम इतिहास के पन्ने पलटते हैं, तो यह तथ्य उद्घाटित होता है कि मनुष्य ने अपनी आवश्यकताओं को चुनौती के रूप में लेते हुए ऐसे नित नए संसाधन जुटाए हैं जिनसे उसका कार्य सुविधापूर्वक और कम समय में पूर्ण हो सके। इसी का परिणाम है–अंतरिक्ष के क्षेत्र में, सूचना एवं प्रौद्योगिकी, दूरसंचार, कम्प्यूटर एवं इलेक्ट्रॉनिक्स के क्षेत्र में दिन दूनी रात चौगुनी प्रगति हुई है। इससे अधिक उन्नत साधन हर थोड़े समय में मिल जाने की वजह से पुरानी तकनीक और उसके यंत्रोपकरण अपशिष्ट बन जाते हैं।

परिचय

कम्प्यूटर, मोबाईल, इलेक्ट्रॉनिक उपकरण इत्यादि, जो समय के बदलाव के साथ नए अनुसंधानों के कारण अनुपयोगी होते जाते हैं अथवा समय सीमा समाप्त हो जाने पर उपयोगी नहीं रहते, वे सभी ई–अपशिष्ट कहलाते हैं।

रसायन शास्त्र में पदार्थ के संरक्षण का नियम पढ़ा जाता है, जिसके अनुसार कोई भी पदार्थ नष्ट नहीं होता। विभिन्न प्रकार की ऊर्जायें केवल आपस में परिवर्तित होती हैं किन्तु नष्ट नहीं होती। हमें प्रकृति में ऐसे कई उदाहरण देखने को मिलते हैं जिनमें एक अपशिष्ट परिवर्तित होकर किसी दूसरे रूप में उपयोगी बन जाता है।

आज आवश्यकता है इस विषय पर विचार–मंथन करने की और ऐसी तकनीकें इजाद करने की जो प्राकृतिक एवं मानव जनित अपशिष्ट को परिवर्तित करके उन्हें उपयोगी बना सकें अन्यथा बढ़ता हुआ ई–अपशिष्ट मनुष्य के लिए ही नहीं, बल्कि समस्त जीव–जंतु व वातावरण के लिए भी अभिशाप बन जाएगा।

अपशिष्ट के प्रकार

ठोस अपशिष्ट को चार भागों में विभाजित किया जा सकता है:

- घरेलू
- औद्योगिक
- हॉस्पिटल
- ई–अपशिष्ट

घरेलू अपशिष्ट

यह कचरा आवासीय एवं व्यावसायिक स्थानों पर उत्पन्न होता है। यह प्रायः जैविक कचरा होता है। बढ़ते शहरीकरण, बदलती जीवनशैली एवं अत्यधिक बाहरी खाद्य सामग्री की वजह से, घरेलू कचरे की मात्रा तीव्र गति से बढ़ती जा रही है। आंकड़ों के अनुसार भारत में 25 प्रतिशत घरेलू अपशिष्ट संकलित ही नहीं होता।

औद्योगिक अपशिष्ट

यह कचरा अत्यधिक हानिकारक, ज्वलनशील व विस्फोटक भी हो सकता है। इसके अन्तर्गत हानिकारक पदार्थ जैसे–मैटल, रासायनिक पदार्थ, पुरानी बैट्री, कीटनाशक इत्यादि शामिल हैं।

हॉस्पिटल अपशिष्ट

इस प्रकार का अपशिष्ट चिकित्सीय कार्यों एवं इलाज के समय उत्पन्न होता है जिसमें दवाईयाँ, सुइयाँ, रूई, पट्टियाँ, शल्यक्रिया जनित अपशिष्ट आदि सम्मिलित हैं।

इलैक्ट्रॉनिक अपशिष्ट

इलेक्ट्रॉनिक उपकरण जिनकी समय सीमा समाप्त हो गई हो अथवा तकनीक में वृद्धि की वजह से अनुपयोगी हो गए हों, ई–अपशिष्ट कहलाते हैं। जैसे–कम्प्यूटर, टेलीविजन, रेफ्रिजरेटर, रेडियो, मोबाईल फोन इत्यादि।

भारत में ई–अपशिष्ट का सांख्यिकीय विवरणः एक दृष्टि में

- ई–अपशिष्ट का उत्पादन –4,00,000 मीट्रिक टन।
- पुनचक्रित अपशिष्ट की मात्रा – 2,50,000 मीट्रिक टन।
- उत्पादन क्षेत्र के अनुसार

उत्तरी भारत	–	21 प्रतिशत
दक्षिणी भारत	–	30 प्रतिशत
पूर्वी भारत	–	14 प्रतिशत
पश्चिमी भारत	–	35 प्रतिशत

आंकड़े यह दर्शाते हैं कि भारत के कुल 65 शहरों में इस अपशिष्ट का उत्पादन सम्पूर्ण उत्पादन का लगभग 60% है। कुछ प्रमुख शहर हैं :–

- मुम्बई
- दिल्ली
- बेंगलुरू
- चेन्नई
- कोलकाता
- अहमदाबाद
- हैदराबाद
- पुणे
- सूरत
- नागपुर

निम्नलिखित दस राज्यों में इसका उत्पादन सम्पूर्ण उत्पादन का लगभग 70 प्रतिशत से भी अधिक है:

- महाराष्ट्र
- तमिल नाडु
- आंध्र प्रदेश
- उत्तर प्रदेश
- पश्चिम बंगाल
- दिल्ली
- कर्नाटक
- गुजरात
- मध्य प्रदेश
- पंजाब

आंकड़े दर्शाते हैं कि पिछले सात वर्षों में ई–अपशिष्ट की मात्रा में आठ गुना वृद्धि हुई है।

हानिकारक प्रभाव

ई–अपशिष्ट में उपस्थित जहरीले रासायनिक पदार्थ मनुष्यों, पेड़–पौधों, जीव जंतुओं एवं समस्त वातावरण के लिए अत्यधिक हानिकारक होते हैं।

1. **सीसा**–यह व्यापक रूप में बैट्री, कैथोड–रे ट्यूब, सर्किट बोर्ड आदि में प्रयोग किया जाता है। कम्प्यूटर मॉनिटर में 6.3% सीसा होता है। यह नाड़ी तंत्र, रक्त, प्रजनन तंत्र तथा मूत्रवहन तंत्र समेत वृक्कों को विशेष क्षति पहुँचाता है।
2. **कैडमियम व मरक्यूरी**–ये बैट्री, स्विच, थर्मोसेट और फ्लोरोसेंट लैंप में पाए जाते हैं। मरक्यूरी अत्यधिक जहरीला होता है और हमारे शरीर में पहुंचने पर वृक्क एवं यकृत में जमा होने लगता है। यह मानव मस्तिष्क को भी नुकसान पहुँचाता है।
3. **आरसेनिक**–यह सर्किट बोर्ड, स्क्रीन, कम्प्यूटर चिप आदि में प्रयोग होता है। यह त्वचा रोग, पाचन तंत्र व नाड़ी तंत्र को गंभीर रूप से प्रभावित करता है आरसेनिक से निम्नांकित क्षति होती है –
   - डी एन ए तथा कोशिकाओं को क्षति।
   - शारीरिक दौर्बल्य।
   - रक्तपरिसंचरण तंत्र, यकृत, तथा वृक्क रोग।
   - मस्तिष्कगत विकृतियां।
   - अन्तःस्रावी ग्रंथियों एवं हार्मोन संबंधी रोग।
4. **गंधक**–यह मुख्य रूप से बैट्री में प्रयोग होता है। यह हृदय, प्लीहा, यकृत, वृक्क, आँख व गले के लिए हानिकारक है।
5. **अमेरिशियम**–यह कैंसर उत्पादक है।

अपशिष्ट निस्तारण–कतिपय विकल्प

भूमि भराव

यह सर्वाधिक उपयोग में लाई जाने वाली विधि है। किसी भी प्रकार के कचरे को समाप्त करने

की यह सर्वसुलभ एवं पुरातन पद्धति है, जिसके अन्तर्गत, गड्डे बनाकर, उनमें अपशिष्ट भरकर ऊपर से मिट्टी की मोटी तह बनाकर, मिट्टी में दबा दिये जाते हैं। जो कचरा विघटित हो सकता है वो हो जाता हैं, जो नहीं हो सकता उसके लिए यह उपयुक्त नहीं है।

ई–अपशिष्ट भूमिभराव से नष्ट नहीं हो पाता। इसमें जो जहरीले पदार्थ होते हैं अगर वे बिना हटाए इसे भूमिगत कर दिया जाता है तो जहरीले पदार्थ मिट्टी और भूमिगत जल में मिलकर उन्हें प्रदूषित करते हैं। इस प्रक्रिया को रोकने के लिए आधुनिक युग में भूमिभराव तल में एक प्लास्टिक की अभेद्य परत लगाई जाती है जिससे विक्षालित द्रव प्रदूषण उत्पन्न न कर सकें। इस प्रक्रिया में कभी–कभी अनियंत्रित आग लगने का खतरा रहता है।

भस्मीकरण

यह पद्धति मुख्य रूप से जहरीले कचरे के लिए अपनाई जाती हैं। इसमें कचरे को उच्च तापमान पर जलाकर भस्मीभूत कर दिया जाता है और बची हुई राख को भूमिगत कर दिया जाता है। आजकल यह कार्य दहन की नियंत्रित विधि के रूप में मशीनों द्वारा सम्पादित किया जाता है। इस प्रक्रिया में निकलने वाली गैसें वायु प्रदूषण करती हैं।

पुनर्प्रयोग

आधुनिक युग में यह उपाय सबसे अधिक लाभप्रद है, जिसके अन्तर्गत् अपशिष्ट को कुछ संशोधन उपरान्त या स्वरूप बदलकर उसे पुनः प्रयोग में लाया जाता है। पुनर्प्रयोग से अतिरिक्त अपशिष्ट बनने से बच जाता है और अगर अधिक से अधिक संख्या में लोग पुनर्प्रयोग करेंगे तो ई–अपशिष्ट की मात्रा बहुत कम हो जाएगी।

पुनर्चक्रण

यह विधि ई–अपशिष्ट निस्तारण के लिए अति महत्त्वपूर्ण एवं व्यावहारिक है। धातु, प्लास्टिक, पेपर इत्यादि कई चीजें पुनर्चक्रित होकर अपशिष्ट की मात्रा को न के बराबर कर सकती हैं। इस प्रक्रिया को निम्नांकित तीन भागों में वर्गीकृत किया जाता है –

- ई–अपशिष्ट को संकलित करके, उसे फैक्ट्री तक पहुँचाना।
- पृथक्करण–कचरे को उसके प्रकार के आधार पर पृथक करना, जैसे –जैव कचरा व अजैव कचरा।
- नष्ट करना–जो अपशिष्ट दोबारा प्रयोग के लिए उचित ना हो या हानिकारक हो, उसे नष्ट करना।

और अंत में

ई–अपशिष्ट से संबंधित उक्त प्रस्तुत तथ्यात्मक विवरण को यदि हम केवल भारत की दृष्टि से देखते हैं तब भी यह एक विचारणीय विषय हैं, किंतु यदि वैश्विक दृष्टि से इस विषय पर दूसरे देशों से संवाद करते हैं, तो निश्चित ही आने वाले समय के लिए यह एक विकराल समस्या के रूप में दिखाई देता है और प्रकृति के संतुलन को बिगाड़ने वाली एक गहरी काली छाया के रूप में हमें आक्रान्त करता है।

अतः बुद्धिमानी इसी में है कि हम सभी लोग इस चुनौती को विश्वमंच की किसी महत्त्वपूर्ण परिषद के समक्ष विचारमंथन हेतु प्रस्तुत करें और जल्दी ही इसके दूरगामी परिणामों से निपटने हेतु कोई सार्थक पहल कर स्पष्ट रणनीति तय करें ताकि समय रहते वैश्विक स्तर पर बढ़ते हुए ई–अपशिष्ट पर अंकुश लग सके और हमारी सतत् विकास की परिभाषाओं पर आने वाली पीढ़िया प्रश्न चिन्ह न लगा सकें।

हिमालयी औषधीय पौधों के संरक्षण एवं औषधीय उत्पादों के विकास में रक्षा जैव ऊर्जा अनुसंधान संस्थान का योगदान

हेमन्त कुमार पाण्डेय, एम सी आया, तथा जकवान अहम्मद
डीआईबीईआर, पिथौरागढ़, उत्तराखण्ड

हिमालय में पायी जाने वाली पहाड़ों की श्रृंखलायें प्राचीन काल से ही अति महत्त्वपूर्ण वनौषधियों की सुसम्पन्न सवंधिनी के रूप में जानी जाती हैं। आदि ग्रंथों में वनौषधियों के संदर्भ में हिमालय का उल्लेख अनेक प्रसंगों में दृष्टिगोचर होता है। यदि रामायण का ही प्रसंग लें, उसमें मूर्छित लक्ष्मण का उपचार सुभौन वैद्य ने हनुमान जी द्वारा उत्तराखण्ड स्थित द्रोणागिरी पर्वत से लायी गयी संजीवनी बूटी द्वारा कर, लक्ष्मण के प्राण बचाये थे। जो कि इस क्षेत्र में पायी जाने वाली वनौषधियों की महत्ता को दर्शाता है।

प्राचीन काल से ही वनस्पतियों का उपयोग विभिन्न रोगों के उपचार हेतु होता आया है। इसका प्राचीनतम उल्लेख ऋग्वेद (3500 ई. पूर्व) में मिलता है। आयुर्वेद का प्रादुर्भाव भी अथर्वेद की एक भाारवा के रूप में ही माना जाता है। देश में उपलब्ध वनस्पति प्रजातियों में से लगभग 800 किस्म के पौधे अपने विशेष औषधीय गुणों के कारण विभिन्न विभिन्न औषधियों में प्रयुक्त होते हैं, और इनसे लगभग 8000 प्रकार के मिश्रित योग (कम्पाउण्ड फारमुलेशन्स) बनाये जाते हैं।

अभी तक अधिकांश वनौषधियों का प्राकृतिक स्रोतों से ही दोहन किया जा रहा है, फलस्वरूप अनेक महत्वपूर्ण औषधीय पौधे विलुप्त होने के कगार पर आ गये हैं। अगर अभी भी इनके सम्वर्धन एवं संरक्षण हेतु उचित कदम नहीं उठाये गये तो ये वनस्पतियां सदैव के लिए विलुप्त हो जायेंगी। इन औषधि पौधों को उगाने से ही इन्हें विलुप्त होने से बचाया जा सकता है।

आज पश्चिमी देश भी अपनी परम्परागत एलौपैथिक चिकित्या पद्वति के उपचारोपरान्त दुष्प्रभावों के कारण उसे आयुर्वेदिक एवं प्राकृतिक चिकित्सा पद्वति द्वारा परिवर्तित कर रहे हैं, क्योंकि वनौषधियों का चिकित्सा के उपरान्त भारीर पर कोई दुष्प्रभाव नहीं होता है तथा इनमें सक्रिय तत्वों (ऐक्टिव इन्ग्रेडियेण्ट) के साथ–साथ, दुष्प्रभावों को दूर करने वाले एण्टीडोट भी होते हैं। ये भारीर की क्रिया–प्रतिक्रिया से अधिक छेड़–छाड़ किये बिना उन्हें सामान्य स्थिति में लाने में सहायता करती हैं।

ब्रिटेन के क्यू वानस्पतिक उद्यान के एक वनस्पतिभाास्त्री के कथनानुसार "हिमालय में अब भी अनेक दुलर्भ जड़ी–बूटियां मौजूद हैं, जो विश्व में अन्यत्र नहीं मिलती। अगर इनकी रक्षा नहीं की गयी तो हमारी यह अमूल्य निधि संसार से हमेशा के लिए चली जायेगी जो भारत के लिए ही नहीं समस्त विश्व के लिए दुःखद होगा"। उत्तराखण्ड से विलुप्त हो रही वनौषधियां एवं उनका उपयोग सारणी–1 में दर्शाया गया है।

हिमालय की विभिन्न परिस्थितियों में पायी जाने वाली वनौषधियाँ

हिमालय अपनी विविधता से भरपूर जलवायु एवं मृदा आदि कारकों के कारण जड़ी–बूटियों का अपार भंडार समेटे हुए है। वातावरणीय भिन्नताओं एवं समुद्र सतह से ऊँचाई को आधार मानकर

इस क्षेत्र को चार भागों में बांट सकते हैं।

1. तराई, भाभर क्षेत्र : यह क्षेत्र समुद्र सतह से 800 फिट तक ऊँचाई वाला क्षेत्र है।
2. नदी घाटी क्षेत्र : यह क्षेत्र समुद्र सतह से 800 से 4000 फिट तक ऊँचाई वाला क्षेत्र है।
3. लघु हिमालय क्षेत्र : 4 हजार फिट से 9 हजार फिट ऊँचाई वाले क्षेत्र को इस श्रेणी में रखा गया है।
4. महाहिमालय क्षेत्र : नौ हजार फुट से 14 हजार फुट ऊँचाई वाला क्षेत्र महा–हिमालय कहलाता है।

अपनी विशेष वातावरणीय अनुकूलता के कारण उपरोक्त चारों क्षेत्रों में भिन्न–भिन्न प्रकार की औषधीय वनस्पतियां अपने प्राकृतिक वास में पायी जाती हैं। यदि इन वनस्पतियों की खेती उनके अनुकूल प्राकृतिक क्षेत्र में की जाए तो इनकी पैदावार में मात्रात्मक वृद्वि के साथ–साथ इनमें पाये जाने वाले सक्रिय तत्वों की प्राप्ति भी अधिकतम मात्रा में की जा सकती है। शोध द्वारा यह ज्ञात हुआ है कि यदि महाहिमालयी क्षेत्र में होने वाली वनौषधियों को लघु हिमालय क्षेत्र में उगाया जाए तो उनमें पाये जाने वाले सकिय तत्वों में कुछ हद तक कमी हो जाती है, क्योंकि वनौषधियों के भाग विशेष में उपलब्ध ये सक्रिय तत्व जैसे ऐल्केलाईड, टर्पिनाईड ग्लूकोसाईड, स्टीराईड, सैपोनिन, क्यूमेरिन आदि उसके विशेष औषधि गुणों के लिए उत्तरदायी होते हैं। यदि कृषक अपनी–अपनी वातावरणीय परिस्थितियों के अनुरूप उगने वाली जड़ी–बूटियों की खेती करेंगे तो अधिकतम लाभ अर्जित किया जा सकता है।

सारणी 1. हिमालय से विलुप्त हो रही कुछ प्रमुख वनौषधियां।

स्थानीय नाम	वैज्ञानिक नाम	प्राप्ति स्थान	उपयोगी भाग	औषधीय उपयोग
मंजिष्ठा	रूबिया कार्डिफोलिया	लघु हिमालय	सम्पूर्ण पौधा	लता नेत्र रोगों, कर्ण रोग, कुष्ठ रोग, रूधिर विकार, सूजन में ।
चिरायता	सवर्सिया चिराता	लघु हिमालय	सम्पूर्ण पौधा	रेचक, उदर रोगों में।
दारूहल्दी/ किल मोड़ा	बर्बेरिस ऐरिस्टाटा	लघु हिमालय	जड़	आंव, ज्वर, बात, पीलिया, कंठमाला में।
पाषाणभेद	वर्जिनिया लिगू. लाटा	लघु /महाहिमालय	प्रकन्द	ज्वर, पेचिश, फेफड़ो के रोगों व पथरी आदि
मैदा	पॉलीगोनेटम सिनेरेरिफोलियम	लघु हिमालय	जड़	वीर्यवर्धक, धातुवर्धक, खांसी, ज्वर, क्षय व रक्त विकार में।
दन्दासा	जुगलैस रेजिया	लघु हिमालय	छाल व पत्तियॉ	पत्तियां कीटाणुनाभाक, दांतदर्द व चर्म रोगों में
कूट	ससोरिया लप्पा	महाहिमालय	जड़	कफ, बात, दाह, सौन्दर्य प्रसाधनों में।
महामैदा	पॉलीगोनेटम वर्टि. सिलेटम	लघु/महाहिमालय	जड़	ल्यूकोरिया, रक्तशोधक व अष्टवर्ग में ।
तालीस पत्र	टेक्सस बकाटा	महाहिमालय	छाल/पत्तियां	कीटाणुनाशक, कैंसर के उपचार में ।
वन ककड़ी	पोडोफाइलम हेक्सऐन्ड्रम	महाहिमालय	जड़	कैंसर में, नासूर आदि में

कुटकी	पिक्रोराइजा करूवा	महाहिमालय	जड़	ज्वर, पीलिया, पेट के रोगों में।
अतीस	एकोनिटम हेटरो. फिलम	महाहिमालय	कन्द	पित्त, ज्वर, पेचिभा व कफ में ।
सालम, पंजा	डेक्टाइलोराईजा हथजरिया	महाहिमालय	जड़	मधुमेह, धातुरोगों में, घावों को भरने में।
सालम मिश्री	आर्किस लक्सीफ्लोरा	महाहिमालय	जड़	शुक्रवर्धक, रक्त शोधक, कामोद्दीपक।
सोमलता	इफेडा जीरा र्डियाना	महाहिमालय	संपूर्ण पौधा	भूख बढ़ाने वाला, शक्तिशाली सिरदर्द निवारक, दस्त आदि में
डोलू	रीअम मेक्रोफियेटियेनम	महाहिमालय	जड़	आंतरिक घावों को भरने में, चोट मोच में व उल्टी रोकने में।
जटामांसी	नार्डोस्टेकस जटामांसी	महाहिमालय	संपूर्ण पौधा	मस्तिष्क रोग निवारक, रक्त वर्धक, हृदय टानिक व बवासीर में।
गन्द्रायण	एन्जेलिका ग्लूका	महा हिमालय	जड़	भूख बढ़ाने में, पेट सम्बन्धित विक. ारों व सिरदर्द में ।
मीठा जहर	ऐकोनिटम बाल. फोरी	महाहिमालय	कन्द	कोढ़, जोड़ों के दर्द में।
डायस्कोरिया	डायरस्कोरिया डेल्टाइडिस	लघु हिमालय	जड़	स्टेराइड्स का स्रोत
गुग्गल धूप	ज्यूरिनिया मक्रोसी फेला	महा हिमालय	संपूर्ण पौधा	धूप में, इत्र बनाने में, फोडे—फुन्सियों में उदंर शूल में।
लहसुनिया	माइक्रोस्टाइलिस वालची	लघु हिमालय	जड़	बलवर्धक, पौष्टिक, अष्टवर्ग में, क्षय, दमा में ।
पत्थर लौंग	डिडाईमोकार्पस पैडीसिलेटस	लघु हिमालय	पत्ते अनखुले	पथरी में,सुगंधके रूप में।
सेम्यो	वैलिरियाना वॉलची	लघु हिमालय	जड़	पौष्टिक, चेतनाकारक, रक्त शोधक।

निम्नलिखित संरक्षण उपायों द्वारा इन महत्वपूर्ण जड़ी बूटियों को विलुप्त होने से बचाया जा सकता है।

विलुप्त प्रायः औषधियों के संरक्षण हेतु उपाय

1. उन औषधीय वनस्पतियों, जिनका आयुर्वेदिक दवा उद्योगों में अत्यधिक उपयोग होने के कारण विलुप्त होने का खतरा बढ़ रहा है, कि खेती हेतु वैज्ञानिक तकनीक का विकास कर वृहत स्तर पर खेती को प्रोत्साहन दिया जाये तथा उत्तराखण्ड में जड़ी—बूटियों की खेती की नई तकनीक विकसित करने के लिए किसी संस्थान की स्थापना की जाए ।
2. स्थानीय वृद्ध ग्रामीणों द्वारा विभिन्न रोगों के उपचार हेतु अपनाये जा रहे औषधीय पौधों के परम्परागत उपयोग (फोकलोर इन्फार्मेशन) की जानकारी एकत्रित कर समुचित अभिलेख तैयार किया जाना आवश्यक है, अन्यथा जड़ी—बूटियों के उपयोग से सम्बन्धित यह बहुमूल्य जानकारी बुजुर्गो के साथ ही समाप्त हो जायेगी तथा आने वाली पीढ़ियाँ इस अति उपयोगी जानकारी से वंचित रह जायेंगी।
3. औषधीय वनस्पतियों का प्राप्ति स्थान, उगने का समय, पुष्पावस्था का समय, जीवनकाल, उनकी आवश्यक जलवायु मृदा आदि के विषय में महत्वपूर्ण जानकारियों को एकत्रित कर उनका उपयोग किया जाए।

4. विलुप्त हो रही जड़ी–बूटियों के दोहन पर पूर्णरूप से एवं कारगर प्रतिबन्ध लगाया जाय ताकि प्राकृतिक रूप से इनकी बढ़वार हो सके। क्योंकि आजकल जिस भी वनस्पति पर प्रतिबन्ध लगा हुआ है, शासन द्वारा आवश्यक ध्यान न दिये जाने के कारण वे अवैध रूप से व्यापार हेतु उपलब्ध हो रही हैं तथा इन वनस्पतियों को बाजार में आसानी से देखा जा सकता है। जब ये प्रजातियां प्रकृति में पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हो जायें तत्पश्चात उत्तराखण्ड के सभी जिलों में बारी–बारी से इनके वैज्ञानिक दोहन की स्वीकृति प्रदान की जाये।
5. जो भी व्यक्ति प्रकृति से वनौषधियों के संग्रह का कार्य करते हैं उन्हें समय–समय पर औषधीय प्रजातियों के वैज्ञानिक तरीके से दोहन का प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए। पौधे के किस भाग को कब निकालना है ताकि औषधीय भाग प्राप्त हो जाये और पौधा भी नष्ट न हो।

उदाहरणार्थ

(क) बीजों को : पूर्णरूप से परिपक्व होने के पश्चात्।

(ख) पत्तियों को : फूल लगने के पश्चात्।

(ग) तने को : पतझड़ या फल लगने के पश्चात्।

(ध) फूलों को : पूर्ण पुष्पावस्था के दौरान।

(ण) फल को : पूर्णरूप से पक जाने के उपरान्त।

(त) छाल को : वर्षा ऋतु के बाद नम मौसम में।

(थ) जड़ों को : अत्यधिक वृद्वि प्राप्त करने के उपरान्त।

6. विलुप्त हो रही प्रजातियों के जीवन चक्र का अध्ययन उसके अंकुरण से फल लगने तक की अवस्था की जानकारी, रखरखाव, उसी के अनुरूप खेती हेतु योजना तैयार करनी चाहिए।
7. अत्यधिक मांग एवं आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण औषधीय प्रजातियों की व्यवसायिक स्तर पर खेती हेतु ऊतक संवर्धन, पादप प्रजनन आदि उन्नत तकनीकों का सहारा लिया जाय तथा उनमें लगने वाली बीमारियों एवं कीटों के संदर्भ में विस्तृत अध्ययन कर उनकी रोकथाम हेतु उपाय किये जायें।

रक्षा जैव ऊर्जा अनुसंधान संस्थान, पिथौरागढ़ द्वारा हिमालयी औषधीय पौधें पर किये जा रहे शोध कार्य

रक्षा जैव ऊर्जा अनुसंधान संस्थान, पिथौरागढ़ द्वारा देश के हिमालयी क्षेत्रों पाये जाने वाले औषधीय एवं सुगन्ध पौधों पर शोध कार्य पिछले 16 वर्षो से अधिक समय से जारी हैं। संस्थान के वैज्ञानिकों ने मध्य पश्चिमी हिमालय के दूरस्थ स्थानों पर उपलब्ध औषधीय एवं सुंगन्धित पौधें को उनकी औषधीय जानकारियों (मेडिकल फोक्लोर इन्फोर्मेशन) के आधार पर एकत्रित कर, तथा मानक संस्थानों द्वारा वैज्ञानिक पहचान (आइडेन्टिफिकेशन) करवा कर पर्वतीय क्षेत्रों की विभिन्न वातावरणीय परिस्थितियों के आधार पर औषधीय उद्यानों की स्थापना निम्न लिखित स्थानों की हैं

औषधीय उद्यानों की स्थापना

(1), डीआईबीई आर प्रक्षेत्र, रायवाला :	40 प्रजातियां
(2), डीआईबीई आर प्रक्षेत्र पिथौरागढ़ :	140 प्रजातियां
(3), डीआईबीई आर प्रक्षेत्र प्रक्षेत्र औली, (जो शीमठ):	60 प्रजातियां

तराई भाबर क्षेत्र में उगायी जा सकने वाली महत्त्वपूर्ण औषधीय प्रजातियां रायवाला में लगायी

गयी हैं। नदी घाटी क्षेत्र व लघु हिमालयी क्षेत्र में उगायी जा सकने वाली प्रजातियां पिथौरागढ़ में तथा उच्च हिमालयी क्षेत्रों में पायी जाने वाली वनौषधियों का वैज्ञानिक संग्रहण तथा औली प्रक्षेत्र में किया गया है। इन विभिन्न हिमालयी स्थानों में औषधीय उद्यान बनाने का उद्देश्य महत्त्वपूर्ण औषधीय प्रजातियों का उनके मूल प्राप्ती स्थानों में संरक्षण, उनके उगाने के समय एवं विधियों का पता लगाना, उनसे प्राप्त होने वाले औषधीय भागों की मात्रा जानना, तथा क्षेत्र की आम जनता को इस महत्वपूर्ण धरोहर से परिचित करा उनकी सक्रिय भागीदारी हेतु जागृति पैदा करना है। इसके अतिरिक्त औषधीय पौधों को समय–समय पर एनजीओ व उन्नतशील कृषकों को भी उपलब्ध कराया जा रहा है।

प्रक्षेत्र पिथौरागढ़ का औषधीय उद्यान।

प्रक्षेत्र औली का औषधीय उद्यान।

कृषिकरण तकनीक का विकास

संस्थान के वैज्ञानिकों ने निम्नलिखित आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण औषधीय पौधों की पर्वतीय क्षेत्रों में खेती हेतु उनकी कृषिकरण तकनीक का विकास किया है तथा इसे किसानों को उपलब्ध कराया जा रहा है।

(1) आर्टीमीशिया ऐनुआ
(2) अमीमेजस
(3) पाषाण भेद
(4) बच
(5) अश्वगन्धा
(6) ऐलोवरा
(7) वन लहसुन
(8) कूट
(9) वन अजवाइन
(10) कपूर तुलसी
(11) अकरकरा
(12) चिरपिरा
(13) नीबू घास
(14) सिटोनेला घास

सगन्ध पौधों पर शोध कार्य

संस्थान में लगभग 30 सगन्ध पोधों पर शोध कार्य किये जा रहे हैं इन पौधों से उड़नशील तेल का निष्कर्षण पौधें की विभिन्न पादप अवस्था जैसे पुष्पावस्था के पूर्व, पुष्पावस्था के दौरान तथा पुष्पावस्था के बाद किया गया जिससे कि उड़नशील तेल की अधिकतम मात्रा व पौधे की अवस्था का पता लगाया जा सके। पर्वतीय क्षेत्रों में उगायी जाने वाली कुछ महत्वपूर्ण सगन्ध प्रजातियों में तेल की मात्रा सारिणी–2 में दर्शायी गई हैं ।

सारणी 2. महत्वपूर्ण सगन्ध प्रजातियों में उड़नशील तेल की मात्रा (%)A

क्र.सं.	सामान्य नाम	वैज्ञानिक नाम	उड़नशील तेल की मात्रा (%)
1.	क्वींग्घोसू	आर्टीमीशिया ऐनुआ	0.42–0.50
2.	बच	ऐकोरस कैलेमस	0.90–1.20
3.	कपूर तुलसी	ओसिमम क्लीमेडिसकेरिकम	0.60–0.70
4.	सुगन्धबाला / तगर	वेलिरियाना वॉलीची	0.30–0.35
5.	वन अजवाईन	थाइमस सर्पाईलम	0.50–0.60
6.	वन हजारी	टैजिटस माईन्यूटा	0.70–0.80
7.	उपनिया झाड़	चीनोपोडियम ऐब्रीसाईड	0.50–0.60
8.	सोआ	एनिथम सोआ	0.50–0.70
9.	पाती	आर्ट्रीमीशिया नीलागेरिका	0.40–0.50
10.	पिपरमैन्ट	मेन्था पिपरीटा	0.40–0.45
11.	जापानी मिन्ट	मेन्था अर्वेन्सिस	0.60–0.70
12.	लेमन ग्रास	सिम्बोपोगान सिट्रेट्स	0.40–0.50
13.	सिट्रोनेला ग्रास	सिम्बोपोगान विन्टेरियेनस	0.80–0.90
14.	वन तुलसी	ओरिगेनम बलगेयर	0.30–0.40
15.	कपूर कचरी	हिडेकियम स्पीकेटम	0.45–0.55
16.	तिमूर फल	जेन्थोजाईलम अर्मेटम	1.80–2.50
17.	जिरेनियम	पेलारगोनियम ग्रेब्यूलेन्स	0.35–0.40

संस्थान द्वारा विकसित औषधीय उत्पाद

संस्थान में हर्बल औषधीय उत्पादों के विकास हेतु शोध कार्य काफी प्रगति में है। वैज्ञानिकों ने कठिन परिश्रम द्वारा 6 औषधीय उत्पादों का विकास किया है जिनके नाम हैं :–

(1) एंटील्यूकोडर्मा मलहम व ओरल डोल (ल्यकोूस्किन)
(2) एंटीएक्जीमा मलहम (एक्जिट)
(3) एंटीटूथेक विलयन (ऐमटूथ)
(4) हर्बल कोल्ड एवं एंटी सन बर्न क्रीम (हर्बोकेयर)
(5) हर्बल हेल्थ सप्लीमेन्ट
(6) हर्बोहीलर स्प्रे

प्रथम तीन उत्पादों का उनके प्रमाणीकरण, रसायनिक गुणों, विषाक्तता तथा चिकित्सीय परीक्षणों के उपरान्त तकनीकी हस्तान्तरण (टीओटी) दिल्ली की एक प्रतिष्ठित हर्बल फार्मास्यूटिकल्स, ऐमिल फार्मास्यूटिकल्स इंडिया लिमिटेड नई दिल्ली को, इन उत्पादों का व्यवसायिक स्तर पर निमार्ण कर आम आदमी तक उत्पाद को पहुँचाने के लिए किया गया। इन उत्पादों की निमार्ण प्रकिया को पेटेन्ट भी कराया गया है।

ऐमिल फार्मास्यूटिकल्स ने उक्त उत्पादों को निम्नलिखित विशेषताओं के कारण क्रय किया है।

ऐन्टील्यूकोर्डमा हर्बल उत्पाद (ल्यूस्किन)

इस उत्पाद के दो घटक है जिसमें एक मलहम जो कि सफेद दागों पर लगाने के लिए तथा दूसरा द्रव (ओरल डोज) आन्तरिक उपयोग द्वारा रोगी की आन्तरिक कमी को दूर करने में

सहायक है। यह उत्पाद बाजार में उपलब्ध दवाओं की तुलना में अत्यन्त प्रभावी है। इसकी रोग निदान क्षमता लगभग 80 प्रतिशत है जबकि बाजार में उपलब्ध हर्बल व अंग्रजी उत्पादों की रोग निदान शक्ति 20 प्रतिभात से ज्यादा नहीं है। 90 प्रतिशत से अधिक पीड़ित व्यक्ति बाजार में उपलब्ध दवाओं से काफी लम्बे समय तक उपचार लेकर भी ठीक नहीं हुये, उन्हें इस हर्बल उत्पाद द्वारा रोग से निदान मिला है। एक बहु अवयवी (पाली कम्पोनेन्ट) औषधी होने के कारण यह काफी कारगर है। एमिल फार्मास्यूटिकल्स, दिल्ली ने इस उत्पाद को सितम्बर 2011 में बाजार में उतारा है यह उत्पाद सफेद दाग से पीड़ित व्यक्तियों के लिये वरदान सिद्ध हो रहा है कम्पनी ने एक साल के अन्तराल में 4.25 करोड़ मूल्य की दवा को बाजार में बेचा है जिससे डीआरडीओ को इस बिक्री से 3 प्रतिशत रोयल्टी के द्वारा लगभग 12.33 लाख रूपये प्राप्त हुये हैं।

ऐन्टीएक्जिमा मलहम (ऐक्जिट)

यहभी बहुघटकी औषधीय मलहम के रूपमें है, जिसके प्रयोग से 90: मामलों में दुबारा ऐक्जिमा नही होता है। यह किसी भी प्रकार के चिकित्सीय विषाक्तता से मुक्त है तथा सभी प्रकार के ऐक्जिमा तथा सोरायसिस के उपचार में भी उपयोगी है।

ल्यूकोडर्माग्रोधी हर्बल उत्पाद का नैदानिक परीक्षण

उपचार से पूर्व | 180 दिनों के पश्चात् | उपचार से पूर्व | 360 दिनों के पश्चात्

दर्द निवारक हर्बल उत्पाद (ऐम्टूथ)

यह एक प्रभावी दांत दर्द निवारक हर्बल उत्पाद है जिसमें पांच पौधें के अवयव विद्यमान हैं। इसे रूई की मदद से दर्द कर रहे दांतों में लगाया जाता है। यह हर्बल उत्पाद मसूड़ों में जलन पैदा नहीं करता, सूजे व संक्रमित मसूड़ों का भी उपचार करता है, दांतों में गरम व ठंड की संवेदना में भी उपयोगी है।

उपचार से पूर्व | 450 दिनों के पश्चात् | उपचार से पूर्व | 600 दिनों के पश्चात्

ऐंटिजमारोधी हर्बल उत्पाद का नैदानिक परीक्षण

अन्य तीन हर्बल उत्पादों हर्बल विकिरणरोधी क्रीम, हर्बल हैल्थ ड्रिंक व हर्बो हीलर स्प्रे विकास के विभिन्न चरणों में हैं तथा इनके काफी उत्साहवर्द्धक परिणाम प्राप्त हुए हैं।

उपचार से पूर्व | 30 दिनों के पश्चात् | उपचार से पूर्व | 120 दिनों के पश्चात्

उपचार से पूर्व | 120 दिनों के पश्चात् | उपचार से पूर्व | 30 दिनों के पश्चात्

विकिरणरोधी क्रीम

हर्बल हैल्थ सप्लीमेन्ट

हर्बो हीलर स्प्रे

घृतकुमारी (ऐलोवेरा) में शोध कार्य

संस्थान के वैज्ञानिकों ने देभा के विभिन्न क्षेत्रों से ऐलोवेरा की प्रजातियों का संग्रह उनके बाह्य आकार एवं रंग के आधार पर कर प्रजातियों को विशेष कोड द्वारा नामांकित किया है। इनकी संख्यात्मक वृद्वि के लिए इन्हें बाह्य वातावरणीय परिस्थितियों तथा पॉलीहाऊस व ग्लासहाउसों के अन्दर लगाया गया है। जिन पर विभिन्न भौतिक–रासायनिक परीक्षण किये जा रहे हैं तथा द्रव्यमान सम्बन्धित ऑकड़े भी एकत्र किये गये। इन प्रजातियों में काफी विविधता पायी गई है। संस्थान में उपलब्ध प्रजातियों के नाम डीएआरएल 1 से डीएआरएल–8 तक रखे गये हैं। वर्तमान समय में प्रयोगभाला में विभिन्न ऐलोवेरा प्रजातियों के लगभग 25 हजार से अधिक पौधे उपलब्ध हैं जिन्हें आकार के अनुसार किसानों को 5 रु0 प्रति पौध की दर से उपलब्ध कराया जा रहा है। संस्थान में ऐलोवेरा के विभिन्न उत्पादों जैसे ऐलोजैल, ऐलो ड्रिंक, ऐलो रोग प्रतिरोधक कैप्सूल तथा ऐलो ऐन्टीआक्सीडेन्ट कैप्सूल आदि पर कार्य काफी प्रगति में है तथा काफी उत्साहवर्धक परिणाम प्राप्त हो रहे हैं।

ग्लास हाऊस के भीतर ऐलोवेरा के पौधे।

संस्थान में उपलब्ध ऐलोवेरा का जीवद्रव्य।

अतः यह कहना अतिश्योक्ति नहीं होगा कि रक्षा जैव ऊर्जा अनुसंधान संस्थान औषधीय पौधों पर विभिन्न शोध कार्यो द्वारा उत्तराखण्ड़ को वास्तविक रूप से हर्बल स्टेट बनाने में अपनी सक्रिय भूमिका निभा रहा है। जिसका लाभ प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से राज्य के सीमान्त क्षेत्रों में तैनात सैनिकों एवं स्थानीय निवासियों को अवश्य मिलेगा।

नियंत्रक आधारित खाद व बीज बुवाई यंत्र का विकास

करन सिंह, कमल नयन अग्रवाल, अनुराग कुमार दुबे, तथा महा प्रताप चंद्र
केंद्रीय कृषि अभियांत्रिकी संस्थान, भोपाल

सारांश

नियंत्रक आधारित मशीन के विकास का प्रमुख उद्‌देश्य खाद व बीज की सही मात्रा की बुवाई हेतु किया गया। वर्तमान में उपयोग की जा रही मशीनों में बीज व खाद की मात्रा का निर्धारण करने हेतु शक्ति ग्राउंड व्हील (नोकदार पहिए) से प्राप्त की जाती है। तैयार खेत में इस पहिए के घिसटने के कारण खाद व बीज की मात्रा, निर्धारित मात्रा से 10–20 प्रतिशत कम हो जाती है। इस समस्या को दूर करने हेतु विकसित यंत्र में नियंत्रक आधारित एक 24 वोल्ट दिष्ट धारा मोटर का प्रयोग किया गया है। ट्रैक्टर की गति, ट्रैक्टर के अगले पहिए में स्थापित एक संवेदक द्वारा नापी जाती है। अगले पहिए में एक 24 तीलियों वाले पहिए की मदद से ट्रैक्टर की गति का निर्धारण किया जाता है। नियंत्रक ट्रैक्टर की गति के आधार पर दिष्ट धारा मोटर को आवश्यकतानुसार अलग–अलग गति से घुमाता है दिष्ट धारा मोटर फीड शाफ्ट की गति को नियंत्रित करती है। जिससे खाद व बीज की मात्रा का निर्धारण होता है। इस संशोधित प्रणाली के परीक्षण से यह ज्ञात हुआ कि बीज की निर्धारित व प्राप्त दर में विचलन 2.16 $\pm$ 0.17 प्रतिशत था एवं खाद की निर्धारित व प्राप्त दर में विचलन 1.75 $\pm$ 1.53 प्रतिशत था जो पारंपरिक यंत्रों के 10–20 प्रतिशत की तुलना में काफी कम है।

प्रस्तावना

बीज बुवाई यंत्र अथवा बीज एवं खाद बुवाई यंत्रों का उपयोग खेत में खाद व बीज की उचित मात्रा प्रयुक्त करने हेतु किया जाता है। वर्ष 2003 की गणना के अनुसार देश में 18864 मानव चालित बीज बुबाई यंत्र 4924 हजार पशुचालित बीज व खाद बुबाई यंत्र एवं 978 हजार ट्रेक्टर चालित बीज व खाद बुबाई यंत्र उपयोग किए जा रहे है। वर्तमान में उपलब्ध इन यंत्रों का प्रयोग एक तय दर पर खाद व बीज की बुवाई हेतु किया जाता है।

वर्तमान प्रचलन के अनुसार किसी खेत में खाद के रूप में फॉस्फोरस व पोटास की पूरी मात्रा एवं नाइट्रोजन की कुछ मात्रा प्रारंभिक खुराक के रूप में बुवाई के समय प्रयुक्त की जाती है। पूर्व में किए गये शोध अध्ययनों से पता चलता है की फसल में नत्रजन विकास के चरणों के अनुसार देने पर उत्पादकता में वृद्धि की जा सकती है। वर्तमान में देश में पोषक तत्वों की खपत क्रमशः 67 कि ग्रा/हे नत्रजन, 24.3 कि ग्रा/हे फॉस्फोरस एवं 7.9 किग्रा/हे पोटाश की है। पोषक तत्वों की यह खपत संयुक्त राज्य अमेरिका की खपत के लगभग अनुरूप ही है। जहॉ ये खपत क्रमशः 63 किग्रा/हे नाइट्रोजन, 22 किग्रा/हे फॉस्फोरस एवं 25.4 किग्रा/हे पोटाश है। लेकिन हमारी फसलो की उत्पादकता संयुक्त राज्य अमेरिका की तुलना के काफी कम है। विभिन्न अध्ययनों से यह ज्ञात होता है कि खेत में उर्वरक की आवश्यकता की गणना खेत में उपलब्ध परिवर्तनीयता के आधार पर करनें एवं आवश्यक पोषक तत्वों का उपयोग उसी आधार पर करने से फसलों की

उत्पादकता में व्यापक उन्नयन किया जा सकता है। वर्तमान में आवश्यक पोषक तत्वों की गणना हेतु खेत के विभिन्न कोनों से मृदा नमूनों का परीक्षण करतें है एवं पूरे खेत हेतु एक समान दर का चुनाव किया जाता है।

मिट्टी के प्रकार, उत्पादकता, भूमि का ढलान और दूसरे स्थानिक परिवर्तनशीलता जो खाघ उत्पादन को प्रभावित करती है को ध्यान में रखकर उर्वरक व बीज की परिवर्तनीय दरें उर्वरक व बीज की बचत के साथ–साथ उत्पादकता बढाने में मदद करती हैं। पाज एट आल[2] के अनुसार ज्यादा उपज के साथ नाइट्रोजन उर्वरक खपत में कमीं देखी गई चर दर उपयोग को लागू करके उर्वरक की दर बढाने से आम तौर पर फसल की उपज बढ जाती है। मौजूदा समय में उपयोग किये जाने वाले खाद एवं बीज बुआई यंत्र इस कार्य हेतु निपुड़ नहीं है। सही मात्रा में बीज गिराने और अधिकतम जमाव के लिए बुआई के समय नोंकदार पहिये को जमीन पर फिसल जाने के कारण बीज या खाद का वितरण और उपयोग दर एक बार सेट की हुई समान नहीं रहती है। बीज दर परिवर्तनशीलता 10–20 % पायी गयी है कहीं पर अधिक मात्रा में पौधों के जमाव के कारण बाद में उन्हे उखाडना पडता है। उर्वरक उपयोग में परिवर्तनशीलता भी गिरने की क्षमता पर निर्भर करती है। वर्तमान अध्ययन से पता चलता है कि आवश्यकता से अधिक मात्रा में बीज बो देनें पर अधिक जमाव होता है और बाद में उसे मजदूर लगाकर उखडवाना पडता है। जिससे उत्पादन लागत बढ जाती है। नये दृष्टि कोण में हमने जमीन की गति को सेंस करने और विघुत नियंत्रक आधारित सटीक खाद एवं बुआई यंत्र का विकास किया है, सिंह एट आल[1]।

सामग्री एवं विधि

फ्लुटेड रोलर का विकास

वर्तमान समय में खाद एवं बीज यंत्र में फ्लूटेड रोलर प्रकार का पैमाइश तंत्र प्रमुख रूप से उपयोग होता है। इस प्रणाली में बीज और खाद की दर परिवर्तित करने के लिए फ्लूटेड रोलर को एक यांत्रिकीय लीवर की सहायता से आगे–पीछे करके व्यवस्थित करते है। फ्लूटेड रोलर की गति उपकरण में लगे ग्राउण्ड व्हील और संचरण प्रणाली द्वारा संचालित होती है। कमशः दो तरफा चाल का परित्याग करके फ्लूटेड रोलर की गति को नियंत्रित करने के लिये पूरा खुला हुआ फ्लूटेड रोलर को परिकल्पित किया गया है और अनिरन्तर गिरने वाले बीज का निरीक्षण किया गया जो कि सीधे खॉचे वाले फ्लूटेड रोलर की समस्या थी। इस लिए एक नये विशेष प्रकार [पेंचदार] के फ्लूटेड रोलर का विकास किया गया जिससे खाद व बीज परिवर्तन होता है। फीड शॉफ्ट के परिवर्तित चाल अनुपात के कारण जो कि आगे चलकर दो प्रर्वतक की जरूरत को कम करेगा एक जमीनीय गति परिवर्तन दूसरा उपयोग दर में परिवर्तन नियंत्रित होगा फीड शॉफ्ट की गति नियंत्रित करके।

हस्तांतरण प्रणाली

पारंपरिक खाद व बीज बुबाई यंत्र में फीड शॉफ्ट को शक्ति एक नोंकदार पहिए से प्राप्त होती थी। वांछनीय गति दर प्राप्त करने के लिये नोंकदार पहिए के चक्करों को चेन स्प्रोकेट के व्यास अनुपात के साथ जॉच लिया गया है। घिसटन की समस्या पर काबू पाने के लिये यह निर्णय लिया गया कि फीड शॉफ्ट की शक्ति बैटरी से चलने वाले दिष्टधारा मोटर से प्रदान की जाये। मोटर को फीड शॉफ्ट को पर्याप्त आघूर्ण पर तथा ट्रेक्टर की अग्रसर गति के अनुसार विभिन्न गति पर घुमाने के लिये की गई। इस उद्देश्य के लिये 23 चक्कर में 20 न्यूटन–मीटर आघूर्ण पैदा करने वाले मोटर का चुनाव किया गया जो पीडब्लूएम पर आधारित है और जिसकी शक्ति 80 वाट है।

अग्रसर गति मापने के लिये संवेदक का उपयोग

ट्रैक्टर की अग्रसर गति मापने के लिये एक प्रेरक आधारित संवेदक का उपयोग किया गया है जो ट्रैक्टर के अगले पहिए में स्थापित 24 तीलियों वाले छोटे पहिए की गति मापकर नियंत्रक को सूचना देता है। जिसके आधार पर नियंत्रक दिष्ट्धारा मोटर अलग–अलग गति से संचालित होती है।

अग्रसर गति और फीड शॉफ्ट की गति की जॉच

अग्रसर गति और फीड शॉफ्ट की गति को सुचारू रूप से जॉच करने के लिये प्रयोगशाला स्तर पर एक सेटअप तैयार किया गया जिसमें परिवर्तन दर का प्रत्यावर्ती धारा मोटर एंव ग्राउण्ड व्हील के स्थान पर संवेदक संकेत को पहुचाने के लिए दिष्टधारा मोटर को विघुत आपूर्ति के लिये प्रोग्राम बनाने योग्य पीएलसीध्पीडब्लूएम नियंत्रक प्रोग्राम और एक छोटा गणक का उपयोग किया गया। इस प्रणाली का उपयोग कर ट्रेक्टर के पहिए की विभिन्न गतियों पर फ्लूटेड रोलर की गति का अध्ययन किया गया।

नियंत्रक का विकास

ट्रेक्टर की गति के अनुसार फ्लूटेड रोलर की समुचित गति प्राप्त करने हेतु निर्णय सहायक प्रणाली पर आधारित एक नियंत्रक का विकास किया गया जो संवेदक की सहायता से दिष्टधारा मोटरों को ट्रेक्टर की गति के अनुसार अलग–अलग संचालित करता है। एक तीन स्तरों पर मुद्रित

चित्र 1. नियंत्रक हेतु मुद्रित सर्किट बोर्ड।

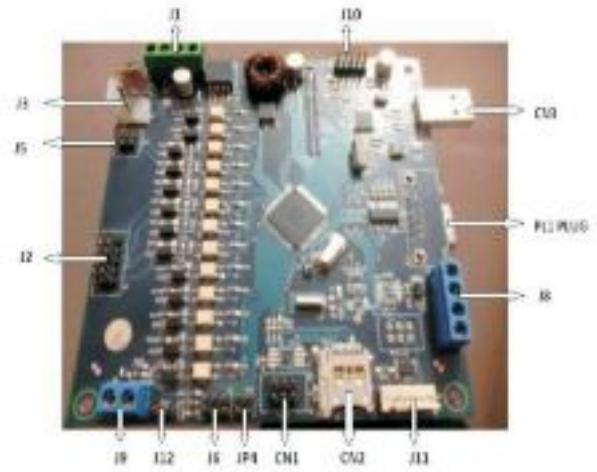

सर्किट बोर्ड (चित्र 1) की परिकल्पना का विकास किया गया। यह नियंत्रक का प्रमुख भाग है जो कि निर्णय के आधार पर खाद और बीज की दर के समनुरूप बनाया सकता है। इससे मापदण्डों को हस्तांतरित किया जा सकता है। जैसे कि फसल का नाम, फसल की प्रजाति, कतार से कतार की दूरी, और गिरने वाले बीज की मात्रा पर हेक्टेयर आदि। चुने हुये मापदण्डों के आधार पर ट्रेक्टर की गति और मोटर की गति के बीच के अनुपात की गणना अपने आप हो जाती है।

विकसित खाद व बीज बुबाई यंत्र और उसका परीक्षण

नियंत्रक आधारित एक 5 कतार वाले खाद व बीज बुबाई यंत्र (चित्र 2) का विकास किया गया जिसमें सीधे फ्लूटेड रोलर के स्थान पर पेंचदार खॉचें वाले खॉचें वाले फ्लूटेड रोलर का उपयोग किया

गया जिससे कि खाद व बीज लगातार पंक्ति में गिरे और नोंकदार पहिए के स्थान पर दिष्टधारा मोटर लगाई गयी है। जिसमें फीड शॉफ्ट कसे लगातार शक्ति मिले और खाद व बीज बुबाई यंत्र का प्रक्षेत्र

चित्र 2. नियंत्रक आधारित खाद व बीज बुआई यंत्र।

में कई बार सोयाबीन बीज डीएपी खाद पर परीक्षण किया गया। इस प्रणाली को सेयाबीन बीज प्रजाति (जेएस 9305) व डीएपी खाद एवं कतार से कतार दूरी 35 सेमी बीज व खाद दर 80 और 100 किग्रा/हे और 80 मी लम्बे मार्ग पर चलाकर परीक्षण किया गया। इस पूरी प्रणाली को चलाने के लिये चालक के पास एक बंद चालू बटन का प्रयोग किया गया है। जिसको चालक ही नियंत्रित करता है।

तालिका 1. खाद व बीज बुबाई यंत्र में प्राप्त बीज दर की परवर्तनीयता।

गति	निर्धारित बीज दर (कि ग्रा/हे)	प्रत्येक स्पाउट से प्राप्त बीज की मात्रा, ग्राम					कुल बीज की मात्राए ग्राम	प्राप्त बीज दर (कि ग्रा/हे)	परवर्तनीयता प्रतिशत
		1	2	3	4	5			
I	80	234	221	240	228	231	1154	82.43	2.43
II	80	234	219	240	221	221	1135	81.07	1.07
III	80	214	229	205	223	205	1076	76.86	-3.14
IV	80	215	219	216	214	225	1089	77.79	-2.21
I	100	277	268	301	254	268	1368	97.71	-2.29
II	100	261	283	279	295	251	1369	97.79	-2.21
III	100	269	283	293	273	244	1362	97.29	-2.71
IV	100	267	285	284	295	252	1383	98.79	-1.21

I-2.6 किमी/घं0, II- 3.0 किमी/घं0, III-3.8 किमी/घं0, IV- 4.6 किमी/घं0

तालिका 2 खाद व बीज बुवाई यंत्र में प्राप्त खाद दर की परवर्तनीयता।

गति	निर्धारित खाद दर (कि ग्रा/हे0)	प्रत्येक स्पाउट से प्राप्त खाद की मात्रा, ग्राम					कुल खाद की मात्रा, ग्राम	प्राप्त खाद दर (कि ग्रा/हे0)	परवर्तनीयता प्रतिशत
		1	2	3	4	5			
I	80	222	215	214	223	228	1102	78.71	-1.61
II	80	212	228	228	234	234	1136	81.14	1.43
III	80	214	224	224	226	228	1116	79.72	-0.35
IV	80	215	226	226	230	236	1133	80.93	1.16
I	100	280	280	296	298	314	1468	104.85	4.85
II	100	280	280	293	293	296	1442	103.00	3.00
III	100	270	283	288	288	292	1421	101.50	1.50
IV	100	268	268	280	288	298	1402	100.10	0.10

I-2.6 किमी/घं0, II-3.0 किमी/घं0, III-3.8 किमी/घं0, IV-4.6 किमी/घं0

परिणाम और निष्कर्ष

सॉफ्टवेयर की सहायता से बीज दर के आकडों को सेट करके व्यक्तिगत स्पाउट से जो परिणाम प्राप्त हुए है (सारणी 1 एवं सारणी 2 में प्रदर्शित) उनमें यह देखा गया है कि बीज दर में बदलाव निधारित बीज दर से 3.14–2.43 % है। जबकि उर्वरक दर में प्राप्त बदलाव 1.61 से 4.85 % था। हालांकि कोई निश्चित प्रवृत्ति निधार्रित नहीं की गयी है। अग्रसर गति और प्रतिशत बदलाव मूल्यों के लिये ज्यादातर दर में बदलाव उर्वरक में प्राप्त हुआ है जो कि शायद आकार में असमानता के कारण हो सकती है।

उपसंहार

एक इलैक्ट्रानिक नियंत्रित 5 कतार वाले खाद एवं बीज यंत्र का विकास एंव परीक्षण किया गया नियंत्रक और आवश्यक सॉफ्टवेयर विकसित किया गया और सोयाबीन बोने के लिये अनुकूल पाया गया है। पैमाइश तंत्र विशेष रूप से डिजाइन फ्लूटेड रोलर के साथ संशोधित किया गया था। संशोधित प्रणाली द्वारा बीज दर में बदलाव 2.16 ± 0.71 % एवं उर्वरक दर में बदलाव 1.75 ±1.53% प्राप्त हुआ, जो कि परम्परिक खाद बीज यंत्र जो जमीन पहिये से शक्ति प्राप्त करते हैं द्वारा प्राप्त बीज एवं खाद की दर में बदलाव (10 से 20 %) की तुलना में काफी कम है ।

संदर्भ

1. सिंह, करन, अग्रवाल, के एन, दुबे, ए के एवं महाप्रताप चंद्र 2012 डेवलपमेन्ट ऑफ कंट्रोलर बेस्ड सीड कम फर्टिलाइजर ड्रील. प्रोसीडींग ऑफ आई. इ. इ. इ. अंर्तराष्ट्रीय सेमिनार नवम्बर 27–29: 2012
2. पाज, जे ओ, बैचलर डब्लु डी, कॉल्वीन टी एस, लॉगस्टन टी सी एवं डी एल कार्लन 1999. मॉडल बेस्ड तकनीकी टु डीटरमाइन वैरीएवल रेट नाइट्रोजन फॅार कार्न. ट्रांस ऑफ ए एस0 ए0 ई0 61:69.75

मधुमेह रोग मे सेवन करने वाले आयुर्वेदिक उत्पादों का आकलन

मो. शाहिद खान एवं क. प्रसन्ना

[illegible]

सारांश

संसार मे मधुमेह रोगियो की संख्या दिन–प्रतिदिन बढती जा रही है तथा सम्पूर्ण संसार मे भारत मे मधुमेह रोगियो की संख्या सबसे अधिक बढ रही है जिसके कारण भारत को संसार की मधुमेह रोग की राजधानी कहा जाने लगा है। मधुमेह रोग मे रक्त मे उपस्थित शुगर को कम करने के लिए विभिन्न प्रकार की औषधि कम्पनिया विभिन्न प्रकार की आयुर्वेदिक औषधियो का निर्माण कर रही है सभी लोगो को यह आयुर्वेदिक औषधिया अपने सुरक्षित गुण के कारण आकर्षित करती है लेकिन कुछ लोग झूठा प्रचार करके तथा मधुमेह रोग मे सेवन करने वाले आयुर्वेदिक उत्पादो मे अग्रेजी दवा को मिलावट करके बेच रहे है जिसके सेवन से मधुमेह रोगियो के शरीर पर बहुत बुरा प्रभाव पड्ता है। प्रस्तुत शोध पत्र मे मधुमेह रोग मे सेवन करने वाले आयुर्वेदिक उत्पादो मे अग्रेजी दवा की मिलावट की पहचान करने की एक एचपीएलसी क्रोमैटोग्राफी विधि का अविष्कार किया गया है।

परिचय

आजकल मधुमेह एक आम समस्या बन गयी है कई लोगो मे यह बीमारी शुरू मे हो जाती है लेकिन उनको इसका पता नही चल पाता है जिसके कारण यह बीमारी बहुत ही खतरनाक हो जाती है। मधुमेह लाइफस्टाइल संबन्धी या वंशानुगत बीमारी है। जब शरीर मे पैंक्रियाज नामक ग्रंथि इंसुलिन बनाना बन्द कर देती है तब मधुमेह की समस्या होती है। इंसुलिन खून मे ग्लूकोज को नियंत्रित **करने मे मदद करता है। मधुमेह को पूरी तरह से खत्म नही किया जा सकता लेकिन इसे नियंत्रण मे रखा जा सकता है। इसके लिए आवश्यक है कि डाक्टर से सलाह लेकर दवा ले और समय–समय पर शुगर लेवल की जांच कराए। हमारे देश भारत मे मधुमेह रोगियो की संख्या सबसे अधिक बढ रही हैं इसीलिए विभिन्न प्रकार की औषधि कम्पनिया मधुमेह रोग मे सेवन करने वाली अनेक प्रकार की औषधियो का निर्माण कर रही है। कुछ कम्पनिया आयुर्वेदिक औषधियो का झूठा प्रचार टीवी तथा समाचार पत्रो मे कर रही है जिसमे वह यह बताते है कि उनकी आयुर्वेदिक दवा को खाने से मधुमेह बिल्कुल ठीक हो जाएगी तथा एक निश्चित समय तक खाने के बाद रोगी की मधुमेह बीमारी खत्म हो जाएगी।**

प्रयोग

सामग्री तथा रसायन

सभी रसायन विश्लेषण ग्रेड, जेटी बेकर कम्पनी के प्रयोग किए। मेटफोरमीन हाइड्रोक्लोराइड टैबलेट अग्रेजी दवाखाने से खरीदी। मधुमेह रोग मे सेवन करने वाली आठ आयुर्वेदिक औषधियो को टी वी तथा समाचार पत्रो मे दिखाए गए पते से खरीदा।

निष्कर्षण

खरीदे गए आठ आयुर्वेदिक औषधियों के पाउडर को 100 ग्राम तोलकर कोनिकल फलास्क मे एक लीटर डीएम वाटर मिलाकर इसे 24 घन्टे के लिए रखा। 24 घन्टे के उपरान्त कोनिकल फलास्क से जलीय विलयन को वाटमैन फिल्टर से छानकर विलयन को अलग कर लिया। अब इस जलीय विलयन को फ्रिज ड्रायर उपकरण पर –80 व से० पर रखा। जिससे हमे वाटर निष्कर्ष, पाउडर के रुप मे मिला।

नमूना तैयार करना

प्रत्येक आयुर्वेदिक औषधियो के वाटर निष्कर्ष को 10 मिग्रा/मिली की सान्द्रता का विलयन बनाया। मेटफोरमीन हाइड्रोक्लोराइड टैबलेट का पाउडर बनाकर 1 मिग्रा/मिली की सान्द्रता का विलयन बनाया।

एच पी एल सी उपकरण

एच पी एल सी विश्लेषण वाटर्स कम्पनी (यू एस ए) के उपकरण से, जिसके साथ मे पी डी ए डिटेक्टर लगाकर मिलेनियम सॉफ्टवेयर से किया। रसायनिक संघटकों का विभाजन ब18 (250 मिमी x 4.6 आई डी, 5 माइक्रोमी) कालम (वाटर कम्पनी, यू एस ए) से किया। मोबाइल फेस–डाइ पोटेशियम हाइड्रोजन फास्फेट (0.01 एम) बफर और पानी (90:10 वी/वी) के अनुपात मे लेकर पम्प का धारा प्रवाह 1.5 मिली/मिनट रखा। आठ आयुर्वेदिक औषधियो के नमूनो मे मेटफोरमीन हाइड्रोक्लोराइड (रिटेन्शन टाइम–8.5)का विश्लेषण 215 नेमी. वेवलेन्थ पर किया (चित्र–1)।

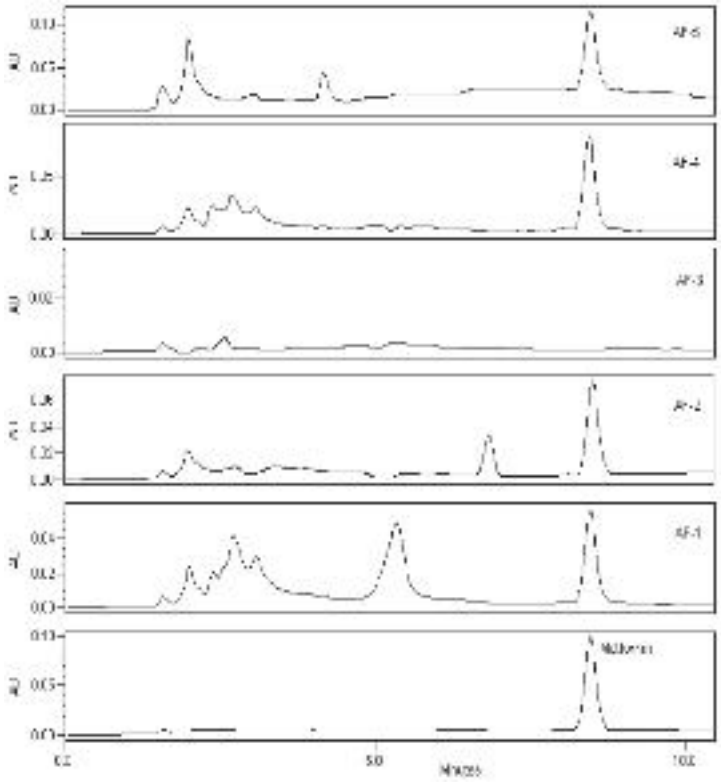

चित्र 1.

अंशाकन वक्र

मेटफोरमीन हाइड्रोक्लोराइड 1 मिग्रा/मिली की सान्द्रता के विलयन को एच पी एल सी में 1–5 माइक्रोली (प्रत्येक को तीन बार) इंजेक्ट करके तथा इनके औसत पिक एरिया निकालकर अंशाकन वक्र प्राप्त किया (चित्र–2)।

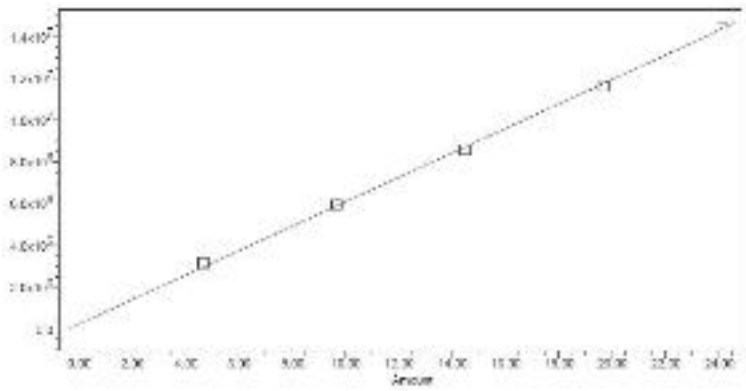

चित्र 2.

सारणी 1.

क्रम संख्या	आयुर्वेदिक औषधि	मेटफोरमीन हाइड्रोक्लोराइड की प्रतिशतता
1	ए फ–1	25 %
2	ए फ–2	50 %
3	ए फ–3	–
4	ए फ–4	35 %
5	ए फ–5	60 %
6	ए फ–6	–
7	ए फ–7	–
8	ए फ–8	–

परिणाम तथा परिचर्चा

आयुर्वेदिक औषधियो जिसमे अग्रेजी दवा मेटफोरमीन हाइड्रोक्लोराइड की मिलावट होती है उसके सेवन से मधुमेह रोगी के शरीर पर बहुत बुरा प्रभाव पडता है क्योकि इसमे मेटफोरमीन हाइड्रोक्लोराइड एक समान नही मिला होता है। टीवी तथा समाचार पत्रो मे झूठे प्रचार के अनुसार अगर मधुमेह रोगी कुछ दिनो बाद दवा को बन्द कर देता है तो शरीर के अंग खराब होने लगते हैं। मधुमेह रोग मे सेवन करने वाली आठ आयुर्वेदिक औषधियो मे अग्रेजी दवा मेटफोरमीन हाइड्रोक्लोराइड (जो कि मधुमेह रोग मे सेवन करी जाती है।)का निर्धारण किया। आठ आयुर्वेदिक औषधियो मे से चार औषधियो मे अग्रेजी दवा मेटफोरमीन हाइड्रोक्लोराइड पायी गयी। आठ आयुर्वेदिक औषधियो मे मेटफोरमीन हाइड्रोक्लोराइड की प्रतिशत्ता सारणी–1 मे दिखायी गयी है।

प्रस्तुत शोध से मधुमेह रोग मे सेवन करने वाली आयुर्वेदिक औषधियो में अग्रेजी दवा मेटफोरमीन हाइड्रोक्लोराइड की मिलावट की पहचान करने की एक विधि तैयार हो गयी है।

सिन्ड्रोम एक्स (Syndrome X) के रोगियों में सिन्ड्रोम जेड (Siyndorme Z) की व्यापकता के आकलन हेतु चिकित्सालय आधारित प्रारम्भिक अध्ययन

अभिषेक दूबे एवं सूर्यकान्त

किंग जॉर्ज मेडिकल यूनिवर्सिटी, लखनऊ, उत्तर प्रदेश

पृष्ठभूमि

भारतीय आबादी इस समय मेटाबोलिक सिन्ड्रोम एक्स के गम्भीर दुष्प्रभावों का सामना कर रही है। यह स्थिति इन्सुलिन प्रतिरोधकता (Insulin Resistance) से जुड़ी उपापचयी विषमताओं जैसे कि डिसलिपिडिमिया (Dyslipidemia)] उच्च रक्तचाप (Hypertension) और उच्च रक्त शर्करा स्तर (Hyperglycemiaaa) इत्यादि के रूप में प्रकट होती है।

सिन्ड्रोम जेड, अवरोधी निद्रा भवसनावरोध (Obstructive Sleep Apnė) और सिनड्रोम एक्स का एक दुर्योग है। भारत के जन सामान्य एवं चिकित्सकों में अवरोधी निद्रा श्वसनावरोध सामान्यतः एक अबूझी और उपेक्षित सी बीमारी है। इस प्रारम्भिक अध्ययन के द्वारा हमनें मेटाबोलिक सिन्ड्रोम से पीड़ित रोगियों में अवरोधी निद्रा भवसनावरोध रोग की ब्यापकता के आकलन का प्रयास किया है।

विषय वस्तु एवं विधि

वे लोग जिनमें सेन्ट्रल ओबेसिटी (Central Obesity) के साथ–साथ सीरम ट्राइग्लिसराइड (Serum Triglyceride) के बढ़ने हाईडेन्सिटी लीपोप्रोटीन (Reduced High Density Lipoprotein) के घटने, उच्च रक्तचाप और उच्च रक्त भार्करा स्तर में से कम से कम किन्हीं दो लक्षणों को पाया गया उन्हें किंग जॉर्ज मेडिकल यूनिवर्सिटी की सामान्य ओ पी डी से इस अध्ययन में शामिल होने के लिए आमंत्रित किया गया।

इनमें से कुल मिलाकर सिन्ड्रोम से पीड़ित 74 लोगों ने प्राम्भिक स्क्रिनिंग के बाद अध्ययन में भाग लेने हेतु सहमति प्रदान की किन्तु 63 लोगों ने अन्तिम रूप से इस में भगीदारी की जिनमें 52 पुरूष तथा 11 महिलायें शामिल थी। इन सभी लोगों के मानव देह माप संबधी, वाइटल और जैव रासायनिक कारकों का मापन/पुनर्सत्यापन कर उन्हें रात्रिकालीन निद्रा अध्ययन (पॉलीसोमनोग्राफी स्टडी) हेतु आमंत्रित किया गया। जहां 34 चैनल वाली निद्रा अध्ययन मशीन के माध्यम से किंग जॉर्ज मेडिकल यूनिवर्सिटी के पल्मोनरी मेडिसिन विभाग की निद्रा अध्ययन केन्द्र (Sleep Lab) में पूरी रात्रि उनका निद्रा अध्ययन किया गया। तकनीकी व अन्य कतिपय कारणों से 11 निद्रा अध्ययन पूरे नहीं हो पाये।

परिणाम

हमने पाया कि सिन्ड्रोम एक्स से पीड़ित लोगों मे से 74.6 प्रतिशत (47) लोग सिन्ड्रोम जेड से पीड़ित थे। सिन्ड्रोम एक्स से पीड़ित पुरूषों में सिन्ड्रोम जेड की ब्यापकता काफी अधिक (80.7 प्रतिशत,

42) पायी गयी जब कि सिन्ड्रोम एक्स से पीड़ित महिलाओं में सिन्ड्रोम जेड की व्यापकता उल्लेखनीय (45.4 प्रतिशत, 5) थी।

निष्कर्ष

सिन्ड्रोम एक्स से पीड़ित पुरूषों में सिन्ड्रोम जेड पाये जाने का जोखिम अत्यधिक है।

गुणवत्ता को बनाए रखने के नियमित निगरानी आवश्यक है ?

मंजुला भाटी
इलैक्ट्रोनिक्स क्षेत्रीय परीक्षण प्रयोगशाला, नई दिल्ली

हम किसी भी क्षेत्र में काम कर रहे होए भले ही वह उत्पादनए परीक्षण या अंशांकन हो, दिन रात हम गुणवत्ता शब्द के बारे में बात करते हैं, प्रत्येक संगठन में गुणवत्ता नियंत्रण या गुणवत्ता आश्वासन विभाग होता है। हमेशा नीतियों और प्रक्रियाओं को निर्धारित किए जाने पर जोर दिया जाता है, लेकिन अधिक महत्वपूर्ण है, उनका पालन करना। संगठन की कार्यप्रणाली के लिए अनेक प्रक्रियाओं को तैयार करने का कोई फायदा नहीं है यदि यह आश्वस्त ना किया जाए कि उनको दैनिक कामकाज करने में लागू किया जा रहा है या नहीं।

प्रत्येक संगठन के गुणवत्ता आश्वासन विभाग की जिम्मेदरी, काम करने के लिए निर्धारित प्रक्रियाओं को लागू करने के लिए की होती है। अधिकतर यह देखा गया है कि संगठनों में आडिट से कुछ दिन पहले रिकॉर्ड पूरे किए जाते है और आडिट प्रक्रिया पूरी करवा ली जाती है। किसी संगठन के गुणवत्ता आश्वासन विभाग के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है, कि वह नियमित रूप से निगरानी करे और यदि निगरानी कै दौरान कोई गैर अनुरूपता (non conformance) पाई जाती हे तो जो उचित कार्रवाई हो उसे जरूर करे।

यह सच है कि ज्यादातर, गुणवत्ता आश्वासन विभाग कोए संगठन के अन्य विभागों द्वारा पसंद नहीं किया जाता है, यदि यह विभाग सक्रिय होता है, तो इसकी तुलना, पुलिस विभाग से की जाती है, अन्यथा यह कहा जाता है कि यह विभाग केवल लेखा परीक्षा अवधि (आडिट) के दौरान ही सक्रिय होता है। लेकिन मुझे विश्वास है कि यह विभाग हर संगठन की रीढ़ की हड्डी है। गुणवत्ता आश्वासन विभाग को एक समाधान प्रदाता विभाग की तरह काम करना चहिए, एक समस्या खोजक के रूप में नही, नियमित निगरानी (surveillance), इस में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। नियमित निगरानी करते रहने से, गुणवत्ता आश्वासन अधिकारियों के अन्य विभाग के अधिकारियों के साथ व्यक्तिगत संबंध बढ़ जाते है, जिसके परिणामस्वरूप सामंजस्यपूर्ण वातावरण उभरता है, जिससे कि अन्य विभागों के अधिकारी आसानी से, नीतियों और प्रक्रियाओं को लागू करने में हो रही परेशनियौ को साझा कर सकते हैं ताकि एक प्रभावी निवारक कारवाई योजना तैयार किया जा सकता है।

परीक्षण/अंशांकन प्रयोगशाला की मान्यता के लिए आईएसओ/आईसी 107025 मानक का पालन किया जाता है। आईएसओ/आईसी 107025 मानक मुख्य खंड 4 के तहत खंड 4.1 से 4.15 प्रबंधन आवश्यकताओं के हैं जो प्रबंधन की जिम्मेदारियों की व्याख्या कर रहे हैं जैसेकि कैसे प्रबंधन का आयोजन किया जाएगा, कौन सी प्रक्रिया, जो संगठन में उपलब्ध हो, आदि और इसी मानक के मुख्य खंड 5 के तहत खंड 5.1 से 5.10 में तकनीकी आवश्यकताओं दी गई है जो परीक्षण/अंशांकन के निष्पादन से संबंधित हैं। ग्राहक से परीक्षण/अंशांकन के लिए जाब लिए जाने से लेकर रिपोर्ट के जारी करने तक, इस मानक केए खंड 4 के कई उप खंड और 5 खंड के सभी उप खंड कवर हो जाते हैं। इसके अलावा, लागू मानक या ग्राहक की आवश्यकता के आधार पर अंशांकन/परीक्षण के

लिए कुछ विशिष्ट तकनीकी आवश्यकता होती हैं। आईईसी 17025 आवश्यकताओं के साथ – साथ, परीक्षण/अंशांकन की इन विशिष्ट आवश्यकताओं को भी निष्पादित करते समय संबोधित किया जाना चाहिए।

इसलिए, चाहे कोई भी क्षेत्र हो या रेंज हो या परीक्षण/ अंशांकन में कितने भी कर्मचारी शामिल हो, कई आवश्यकताओं आम हैं। निगरानी किसी भी इन आम जरूरतों के आधार पर की जा सकती है, जैसे की . . .

- क्या परीक्षण/अंशांकन आइटम की विशिष्ट पहचान की गई है, या नही।
- क्या मापने के लिए अंशांकित उपकरणों का इस्तेमाल किया गया है, या नही।
- क्या गुणवत्ता आश्वासन स्वीकृत फार्मस और फामेटस को डेटा लिखने के लिए इस्तेमाल किया गया है, या नहीं।
- क्या काम के निष्पादन के समयए ग्राहकों के साथ समझौते व मानक के अनुसार, पर्याप्त वातावरण उपलब्ध है, या नहीं।
- क्या मापने के सभी उपकरणों को उचित लेबल हैं, या नहीं।
- क्या परीक्षण/अंशांकन ग्राहकों के साथ समझौते के अनुसार किया गया है, या नहीं।
- क्या परीक्षण/अंशांकन विधि मान्य है और उन्ही के अनुसार काम किया जा रहा है, या नहीं।

एक समय में एक ही मुद्दा लें और सभी संबंधित विभागों में निगरानी करे। इस तरह, जिस एक मुद्दा को अधिक बेहतर एकाग्रता की जरूरत है, पता चल जाएगा। धीरे धीरे उन विशिष्ट मुद्दों को लक्ष्य बनाए जो, विशेष प्रकार के परीक्षण/अंशांकन के लिए अवश्यक हैं। बाह्य एवं आंतरिक आडिट के दौरान आईएसओ/आईईसी 17025 के सभी खंड के साथ–साथ, परीक्षण/अंशांकन पैरामीटर विशिष्ट आवश्यकताओं और नियामक आवश्यकताओं (regulatory requirements) को लेखा परीक्षकों द्वारा जांचा जाता है।

गुणवत्ता आश्वासन विभाग को आंतरिक आडिट के आधार पर आंतरिक निगरानी, माह में कम से कम दो बार आम आधारित मुद्दों या विशिष्ट आवश्यकता आधारित मुद्दों को लेकर आवश्य करनी चहिए। इस तरह, संगठन द्वारा निर्धारित आंतरिक आडिट के समय तक (जो आम तौर पर एक वर्ष में एक बार होता है) या बाह्य आडिट के समय तक समस्त अंकेक्षण क्षेत्र को कवर किया जा साकेगा। इसके आडिट के समयए किसी भी प्रमुख गैर अनुरूपता या मामूली पर बहुत सारी गैर अनुरूपता, निकलने की संभावना, कम हो जाती है। इसके अलावा आडिट अवधि से पहले ब्यस्त दिन, जो पुराने रिकॉर्ड को अद्यतन करने में खर्च कि,जाते हैं, उनसे बचा जा सकता है।

यदि गंभीरता से लागू किया जाए तो संगठन, किसी भी समय किसी भी आडिट के लिए तैयार रहेगा. आडिट से पहलेए सैन्य व्यवस्था (logistical support) को छोड़कर, कोई अन्य तैयारी की अवश्यकता नहीं होगी.

एक बात है जो इस सब से ऊपर है यह है कि–

किसी संगठन में गुणवत्ता उस हद तक कार्यान्वित किया जा सकता है, जितना की शीर्ष प्रबंधन चाहता है।

जितना मजबूत गुणवत्ता आश्वासन विभाग होगा, उतना ही अधिक, संगठन का उत्पादन, गुणवत्ता पूर्न होगा।

ग्रामीण क्षेत्रों के लिये प्रौद्योगिकी का विकास (ऊर्जा के वैकल्पिक स्रोत– बायोगैस के सन्दर्भ में)

प्रेम प्रकाश राजपूत
तिलक महाविद्यालय, औरैया

देश के आर्थिक समृद्धि एवं विकास की गति, वहाँ की आधारिक संरचना पर निर्भर करती है तथा आधारिक संरचना को मजबूत बनाने में ऊर्जा का महत्वपूर्ण योगदान स्वाभाविक है ऊर्जा ही राष्ट्र की प्रगति, विकास और खुशहाली का प्रतीक है। वर्ष 1973 में सम्पूर्ण विश्व में ऊर्जा संकट में विकसित एवं विकासशील देशों का ध्यान ऊर्जा संरक्षण में सम्बन्धित उपायों और ऊर्जा आपूर्ति हेतु वैकल्पिक सम्भावनाओं की ओर आकृष्ट किया। इसको बल तब और मिला जब इसी दौरान तेल की कीमतों में भयावह वृद्धि आकलित की गयी जिससे समूचे विश्व का ध्यान इस ओर गया। भारत जैसे विकासशील देश में अधिकतर ऊर्जा की आपूर्ति जीवाश्म स्रोतों से की जाती रही है। ऊर्जा संकट काल में देश के विकास का मार्ग अवरूद्ध न हो इसलिये वैज्ञानिकों द्वारा ऊर्जा के वैकल्पिक स्रोत बायोगैस का विकास किया गया है।

ऊर्जा की बढ़ती मांग को तथा निकट भविष्य में जीवाश्म ईंधन के समाप्त होने की आशंका के कारण जैवगैस का विकास किया गया है। ग्रामीणों को खेती के अपशिष्ट और पशुओं के गोबर के उपलों के उपयोग को दूसरे ढंग से उपयोग लाने हेतु गोबर गैस का विकास करने को बाध्य होना पड़ा। सेप्टिक टैंक से गैस का उपयोग सर्वप्रथम इंग्लैण्ड के ''ईस्टर'' में 1885 में हुआ था। भारत में बम्बई नगर के माटुंगा में स्थित ऑकवर्थ कुष्ठधाम ने सेप्टिक टैंक से बायोगैस का प्रयोग पहली बार 1887 में प्रारम्भ किया था। और 1920 तक इसका उपयोग जारी रखा।

भारतीय विज्ञान संस्थान, बंगलौर के वैज्ञानिक डॉ जोशी और डॉ फाउलर ने अपशिष्ट सामग्रियों जैसे रद्दी कागज, केले की छालों व पत्तियों से गैस बनाने की प्रक्रिया पर खोज कार्य किया क्योंकि इनका उपयोग धीरे–धीरे समाप्त हो रहे जंगलों को बचाने के लिये पश्चिमी घाट के गांवों में किया जा सकता था। द्वितीय विश्वयुद्ध के समाप्त होते ही उन्होंने बायोगैस और उसके परिणामस्वरूप अच्छे उर्वरक क उपयोग की वकालत की। डॉ पाल और डॉ घोष ने विश्वविद्यालय के विज्ञान और प्रौद्योगिकी महाविद्यालय, कलकत्ता में अनिश्टकारक ''जलमोथा'' और जलकुम्भी–इकोरिमा क्रास पास पर 1920 के उत्तरार्द्ध में कार्य करते हुये बताया कि इससे बायोगैस का उत्पादन किया जा सकता है।

भारत में बायोगैस को विकसित करने कके पीछे प्रमुख कारण यह है कि यहां उपयोग में लायी जाने वाली कुल ऊर्जा में भोजन पकाने में प्रयुक्त ऊर्जा का प्रमुख भाग है। चूंकि बायोगैस वर्तमान ईंधनों का कई प्रकार से सक्षमतापूर्वक स्थान ले सकती हैं अतः यह स्वच्छ नव्यकरणीय ऊर्जा की ओर जाने का सबसे अच्छा रास्ता है। इसे वास्तविक रूप से प्रयोग के स्थान पर उत्पादित किया जा सकता है। अब प्रयोग में लाये जाने वाले ईंधन पूर्णतया अक्षम हैं क्योंकि भोजन पकाने में आम तौर पर उपलों की तापीय क्षमता 5 प्रतिशत से अधिक होती है ओर लकड़ी की क्षमता 10 प्रतिशत है।

विश्व में गोबर गैस को ईंधन के रूप में उपयोग करने वाला पहला देश चीन है जिसने सन् 1930 में इसका उपयोग आरम्भ कर दिया था। डॉ एस वी देसाई और उनके साथियों द्वारा गैस का उत्पादन सर्वप्रथम 1937 में ''दादर'' के सीवेज भुद्धिकरण केन्द्र से प्रारम्भ किया गया तथा इससे प्राप्ति गैस का कूड़ा ढोने की गाड़ियों के चलाने के उपयोग में लाया गया बाद में 1939 में पशु गोबर डाइजेस्टर (पाचक) का अध्ययन किया गया।

इस्मान और डूसिलियर द्वारा बनाई डिजाइन के अनुसार डाइजेस्टरों का निर्माण अल्जीरिया में किया गया। बाद में इसका विस्तार 1943 में फ्रांस में हुआ। पशु गोबर और कृषक अपशिष्ट वाला डाइजैस्ट भारत में एक फ्रांसीसी एम रेनोडोस के खेत पर प्रतिदिन 15–25 घन मीटर बायो गैस पैदा करने के लिये लगाया गया था।

पुणे के प्रो एन डी जोशी ने एक बायोगैस संयंत्र 1946 में अभिकल्पित किया जो श्री एस वी देसाई के 5 गैलन वाले डाइजेस्टर के समान था। भारत में बायोगैस संयंत्र के विकास में दूसरा कदम जशभाई जे पटेल द्वारा बायोगैस संयंत्र अभिकल्पना 1949 में किया गया। पटेल का प्रथम संयंत्र सितम्बर 1950 तक तैयार था। घूमते हुये ढक्कन के साथ एक पाचक में गैस धारक की भांति कार्य किया। इनके संयंत्र का प्रदर्शन हैदराबाद के निकट 'शिवरामपल्ली' में प्रथम सर्वोदय सम्मेलन के समय 1951 में किया गया और इसका नाम ''ग्राम लक्ष्मी'' रखा गया। एक ग्राम लक्ष्मी सेट उस्मानिया विश्वविद्यालय के कृषि संकाय को बेचा गया जिसने बैलगाड़ी पर रखकर गांवों में किसानों को दिखाया। प्रथम चार 'ग्राम लक्ष्मी' संयंत्र (1) तुलसीदास खिमजी, सांताक्रुज, (2) डब्ल्यू आर तलबलकर, अस्था जिला सितारा, (3) बालौद, गुजरात, अप्रैल (1951), (4) मपारा पारिख कके कारखाना, सान्ताक्रुज में स्थापित किये गये। इसके अतिरिक्त 1954 एवं 1955 में रत्नागिरि, इन्दौर एवं बालसाड़ में स्थापित किये गये ग्राम लक्ष्मी III संयंत्र आज भी कार्य कर रहा है।

कुछ गोबर गैस संयंत्र दिल्ली के निकट 1955 में लगाये गये थे जबकि गुजरात और मुम्बई राज्य में वर्श 1956–57 के मध्य सर्वोदय योजना के अन्तर्गत क्रमशः 10 और 250 संयंत्र स्थापित किये गये। साथ ही साथ पी आर ए आई लखनऊ ने 1957 में 60 संयंत्र स्थापित किये। भारतीय कृषि अनुसंधान के नये डिजाइन वाले गोबर गैसें संयंत्र विकसित किये जाने क बाद 1959 तक लगभग 500 संयंत्र त्याग दिये गये। 1961 मं खादी ग्रामोद्योग आयोग ने जैव गैस का कार्य अपने हाथों में ले लिया। इस आयोग ने 1963–64 में व्यक्तिगत किसानों को गैस संयंत्र के लिये वित्तीय सहायता देना प्रारम्भ किया। देश में 1974 में 6000 गैस संयंत्र सफलतापूर्वक कार्य कर रहे थे। गोबर गैस इकाइयों के निर्माण की वार्षिक दर में बहुत ज्यादा वृद्धि हुई है क्योंकि 1980 में इनकी संख्या 10,000 से बढ़कर 1992 के अन्त तक 1,80,000 हो गयी है। देश में 36.51 लाख से अधिक संयंत्र स्थापित हो चुके है।

गोबर, मानव मल, जलकुम्भी, पक्षियों का मल, शहरी एवं औद्योगिक नालों से प्राप्त होने वाले सड़ने योग्य पदार्थों आदि को हवा की अनुपस्थिति में विशेष परिस्थितियों में सड़ाकर प्राप्त की गई गैस को बायोगैस कहते हैं। यह एक स्वच्छ और सस्ता ईंधन है जो एक गैस के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। इस गैस में 55–70 मीथेन, 30–45 कार्बन डाई अक्साइड तथा कुछ मात्रा में विभिन्न प्रकार की गैसें सम्मिलित होती है। भोजन पकाने हेतु प्रति व्यक्ति/प्रतिदिन 5 घन फुट और प्रकाश हेतु 4.5 घन फुट गैस की आवश्यकता होती है।

गोबर की मौजूदगी और खाना पकाने की आवश्यकता को देखते हुए निम्नलिखित तालिका से किसान के पास पशुओं तथा उनकी आवश्यकता के हिसाब से सही नाप के संयंत्र का चुनाव किया जा सकता है।

इस समय में गैस संयंत्रों के निम्नलिखित प्रचलित डिजाइन है।

गैस संयंत्र की नाप (घन मी0)	रोजाना डाले जाने वाले गोबर की मात्रा (कि0ग्राम)	जरूरी बड़े पशुओं की संख्या	इसमें कितने व्यक्तियों का भोजन बन सकता है।
2	50	3 4	4 6
3	75	5 6	7 10
4	100	7 8	11 14
6	150	10 12	15 20
8	200	12 15	20 25
10	250	16 20	25 30

1. स्थिर गुम्बद (डोम) वाला जनता टाइप माडल।
2. तैरता हुआ (फ्लोटिंग) गैस होल्डर (के वी आई सी माडल)
3. दीनबंधु माडल।
4. ऐंगिल आइरन के फ्रेम पर लिपटा पोलीथीन चद्दर का बना चित्र सहित (गणेश माडल)।

संयंत्रों के और अधिक टिकाऊ रहने हेतु निरन्तर और इस दिशा मं भोध चल रहे हैं जिससे इस प्रौद्योगिकी के विकास में सार्थक सहयोग मिल सकेगा।

ग्रामीण क्षेत्रों के सर्वांगीण विकास हेतु ग्रामीणों की ऊर्जा/ईंधन सम्बन्धी आवश्यकताओं और उनकी आर्थिक स्थिति को ध्यान में रखते हुये अनुसंधानकर्त्ता ने सरलतम् प्रौद्योगिकी को विकास बायोगैस के रूप में किया है वर्तमान समय में पर्यावरणीय हितों को देखते हुये यह प्रौद्योगिकी समीचीन है इससे गोबर के कम उपयोग से अधिक गैस की प्राप्ति होती है और बायोगैस संयंत्र से प्राप्त खाद की मात्रा साधारण खाद की तुलना में 43 प्रतिशत अधिक प्रभावशाली होती है।[11] इसका प्रयोग पेट्रोल तथा डीजल चालित इंजनों में प्रयोग कर ईंधन की बचत कर सकते हैं।

वर्तमान समय में बढ़ती जनसंख्या की ऊर्जा सम्बन्धी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये किसी न किसी प्रौद्योगिकी को अपनाना होगा अर्थात ऊर्जा क्षेत्र में नई प्रौद्योगिकी क्रांति लानी होगी हमारे पास जो संसाधन उपलब्ध है उन्हीं के अन्तर्गत ऐसे उपाय खोजने होंगे जो पर्यावरणीय दृष्टि से स्वीकार्य है। उनमें से बायोगैस प्रौद्योगिकी ही एक मात्र विकल्प के रूप में जन–मानस के समक्ष उभर कर आया है। भारत सरकार को समय रहते इस प्रौद्योगिकी का सतत् विकास अवधारणा को साकार करने हेतु ठोस प्रचार–प्रसार के कदम उठाने होगे जिससे यह प्रौद्योगिकी लोकप्रिय होने के साथ–साथ अपने लक्ष्य को पा सके।

अन्ततः टिकाऊ ऊर्जा विकास कार्यक्रम में इस प्रौद्योगिकी को आधार स्तम्भ के रूप में देखा जा सकता है क्योंकि यह पर्यावरण अनुकूल ऊर्जा उत्पादन की प्रौद्योगिकी है साथ ही साथ कृषकों को स्वच्छ ईंधन एवं कृषि हेतु गोबर की उत्तम खाद की प्राप्त हो जाती है। इन लाभों के दृष्टिकोण से यह प्रौद्योकिी वर्तमान समय में उपर्युक्त प्रतीत होती है।

सन्दर्भ

1. पटेल, जशभाई जे (1992) : ''जैवगैस और इसकी विकासात्मक अवस्थाएं, खादी ग्रामोद्योग पत्रिका, वर्ष 38, अंक 7, अप्रैल, पृ0 327.
2. पटेल, जशभाई जे (1992) : ''जैवगैस और इसकी विकासात्मक अवस्थाएं, खादी ग्रामोद्योग पत्रिका, वर्ष 38, अंक 7, अप्रैल, पृ0 1.
3. नेगी, पी एस (1988) : ''भारत में ऊर्जा के स्रोत', जुगुल किशोर एण्ड कम्पनी, देहरादून, पृ0 150.
4. नेगी, पी एस (1988) : ''भारत में ऊर्जा के स्रोत', जुगुल किशोर एण्ड कम्पनी, देहरादून, पृ0 150.

5. पटेल, जशभाई जे (1992) : ''जैवगैस और इसकी विकासात्मक अवस्थाएं, खादी ग्रामोद्योग पत्रिका, वर्श 38, अंक 7, अप्रैल, पृ0 329.
6. खण्डेलवाल, के सी (1992) : ''बायोगैस ऊर्जा का उपयोगी स्रोत'', योजना वर्ष 36, अंक 23–24, जनवरी, पृष्ठ– 40।
7. सोनी, एम एल एवं भार्मा, पी के (1990) : ''मध्यप्रदेश में गैर–परम्परागत ऊर्जा स्रोत'', खादी ग्रामोद्योग पत्रिका, ग्रामोदय, मुम्बई, वर्ष 36, अंक 10, जुलाई, पृष्ठ–404.
8. नेगी, पी एस (1988) : ''भारत में ऊर्जा के स्रोत, संरक्षण और विकास'', जुगुल किशोर एण्ड कम्पनी, देहरादून, पृ0 160.
9. Khandelwal, K.C. & Mahdi (1987) : "Biogas Technology, A Practical Handbook, Vol-I, Tata Magra Hill Pub. Co. Ltd. New Delhi, Page- 51.
10. नेगी, पी एस (1988) : ''भारत में ऊर्जा के स्रोत'', जुगुल किशोर एण्ड कम्पनी, देहरादून, पृ0 151.
11. दिनेश मणि (2000) : ''ऊर्जा संसाधन और संरक्षण'', वैज्ञानिक तथा तकनीकी भाब्दावली आयोग, भारत सरकार,नई दिल्ली, पृष्ठ– 47.

डाइएटम एक प्राकृतिक संसाधनः विज्ञान एवं तकनीकी

डॉ रचना नौटियाल
राजकीय महाविद्यालय,देहरादून, उत्तराखण्ड

सारांश

डाइएटम, एक ऐसा सूक्ष्म शैवाल है जो इस पृथ्वी पर दो तिहाई संख्या मे पाया जाता है. इनकी उत्पत्ति लगभग 28 करोड़ वर्ष पहले एक परस्पर सहजीवन से शुरु हुई। इस सहजीवन की शुरुआत करीब 70 करोड वर्ष पहले ही हो चुकी थी। यह एक एककोशिकीय जीव है जिसकी कोशिका भित्ति सिलिका की बनी होती है। ये जीव कुछ ही माइक्रोन के आकार के होते है और कोशिका के स्तर पर विभिन्न प्रकार के आकारो के विशेषज्ञ कहलाए जाते हैं। सम्पूर्ण प्रथ्वी मे डाइएटम 25 प्रतिशत से भी अधिक आक्सीजन उत्पन्न करते है। इन प्रकाश सश्लेषण की क्रिया होने की वजह से ये प्रकृति में कार्बन फिक्सेशन मे भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते है। इनमें पायी जाने वाले सिलिका को कई प्रकार के नेनो–तकनीकी प्रयोगों में मुख्य स्रोत के रूप मे इस्तेमाल किया जाता है। इन्हें नेनो–तकनीकी के उद्योगालय या कारखाने की संज्ञा दी गयी है जैसे कि इनकी मदद से अपूर्व एवं नवीन बिजली के यन्त्र, सूक्ष्म जाल रचना, प्रस्तर मुद्रण बनाना, इम्यूनो–प्रेसिपीटेशन एव नेनो–मेडिसीन और ड्रग्स को शरीर मे प्रवेश करने देने मे मदद करना। यह एक कोशिकीय संरचना किस प्रकार से विभिन्न आणविक प्रक्रियाओ से होती हुई एक अकार्बनिक पदार्थ सिलिका को बनाती है (जैव–खनिज निर्माण प्रक्रिया), यह सभी नेनो पदार्थ के विज्ञान एव तकनीकी विशेषज्ञों के लिए रुचिकर विषय है। ये उच्च कोटी के जैवीय सूचक है, जिस वातावरण मे रहते है वहां पर प्रदूषण के स्तर की सूचना भी सही सही प्रकार से देते है। अमेरिका, कनाडा एव कई यूरोपीयन देशो मे वहां पायी जाने वाली नदियो एव झीलो मे डाइएटम्स द्वारा प्रदूषण की नियमित जांच वहां के सरकारी संस्थानो द्वारा की जाती है।

भारत मे डाइएटम्स से सम्बधित शोध बीसवीं शताब्दी के मध्य में शूरु हुआ जो कई वर्षों तक दक्षिणी, पश्चिमी एवं मध्य भारत तक ही सीमित रहा. अभी तक हमारे देश मे डाइएटम फ्लोरा एवं विभिन्न जल–स्रोतों मे इनकी उपस्थिति पर ही शोध केन्द्रित रहा है। गुजरात प्रदेश में डाइएटम के जीवाश्म विज्ञान पर कुछ समय काम किया गया है। 1985 के उपरान्त उत्तरी भारत मे इस विशय पर गहन शोध शुरु हुआ जिसमे इनकी पारिस्थिकी, विभिन्न प्रकार की जल–विद्युत परियोजनाओ के कारण गंगा एवं यमुना नदी के स्वास्थ्य पर पड़ने वाले प्रभावों, अलग–अलग प्रकार की जल–धाराओं मे इनकी जैव–विविधता, सम्पूर्ण उत्तराखण्ड मे अलग अलग नदियो की बेसिन स्ट्डीस पर काफी तेजी से शोध चल रहा है। लेखिका इस संगोष्ठी के माध्यम से उत्तराखण्ड की दून घाटी में पाये जाने वाले विभिन्न जल–स्रोतों मे डाइएटम्स की विविधता पर अपना शोध प्रस्तुत करना चाहती है।

विज्ञान एवं तकनीक अपृथ्थकरणीय है किसी भी प्रकार की तकनीकी के आधारभूत विज्ञान को जाने समझे बिना उस पर कार्य नही किया जा सकता। विश्व स्तर पर एक कोशिकीय जीव –समूह मे सबसे अधिक शोध का विषय डायएटम नामक शैवाल है जिसके तकनीकी पहलू पर अन्तर्राष्ट्रीय स्तर का शोध कार्य किया जा रहा है यह एक ऐसा महत्वपूर्ण जीव है जो प्रकृति मे मिलीमीटर एवं नैनोमीटर के स्तर तक जाकर शारीरिक रूप से भिन्न होता है। वर्तमान समय मे यह

सूक्ष्म जीव लगभग 250 जीवित वंश एंव 200000 से भी अधिक जातियो, प्रजातियो एवं उपजातियो द्वारा अपने विशिष्ट अंलकृत रूप मे इस पृथ्वी पर पाये जाते है।

उन्नीसवी शताब्दी मे विश्व स्तर पर शैवाल एवं प्रोटिस्ता ग्रुप की जैव विविधता एवं उससे सम्बन्धित विज्ञान पर उल्लेखनीय कार्य किया गया है। जर्मन वैज्ञानिक क्रिस्टियन गॉटफ्राइड एहरेनबर्ग जिन्हे उनके सभी साथी 'मि माइक्रोस्कोप' के नाम से बुलाते थे, ने डायएटमस पर सर्व. प्रथम खोज शुरू की और सम्पूर्ण विश्व के सभी महत्वपूर्ण स्थानो के डायएटमस पर शोध करने का श्रेय प्राप्त किया। विश्व प्रसिद्व पर्यावरणविद् चार्ल्स डार्विन ने भी 'बोयाज आफ द बीगल'नामक विज्ञान पत्रिका के प्रथम संस्करण 1839 मे एहरेनबर्ग के इस शोध (डायएटमस) विषय पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की थी।

भारत मे भी सर्वप्रथम 1845 मे कलकत्ता बोटोनिकल गार्डन मे डॉ फिलिप द्वारा एकत्रित किये गये डायएटम के नमूने, एहरेनबर्ग द्वारा ही शोध किये गये। एहरेनबर्ग द्वारा इन डाइएटम वंश एवं जातियो का नामकरण इन्टरनैशनल कोड फॉर जुलोजिकल नॉमनक्लेचर एवं इन्टरनैशनल कोड फॉर बोटैनिकल नॉमनक्लेचर के अनुच्छेद 45.4 पर आधारित था। तत्पश्चात देसिकाचारी कृश्णामूर्ति, गांधी, सरोद एवं कामत और कार्तिक नामक अनेक वैज्ञानिको द्वारा दक्षिण एवं पश्चिम भारत मे डायएटमस की जैव विविधता पर शोध किये जा चुके है।

इस पृथ्वी पर ऐसा कोई आद्रर्ता पूर्ण स्थान नही है, जहाँ पर किसी ना किसी प्रकार के डाइएटमस ना पाये जाते हो। यह कहना सत्य होगा कि हर दूसरी सॉस जो मनुष्य ले रहा है डाइएटमस से प्राप्त होती है। प्रकृति मे डाइएटमस सभी पोषक तत्त्वों के चक्रो को निर्धारित करते है चूंकि किसी भी पारिस्थिकी तंत्र की खाद्य श्रृंखला मे डायएटमस उत्पादक कहलाये जाते है। अतः पूरे विश्व की 20–25 प्रतिशत कार्बन–डाई–ऑक्साइड को प्रकाश संश्लेषण क्रिया विधि के द्वारा अवशोषित कर डाइएटमस आज के पर्यावरणविदो के लिए एक विशिष्ट एवं रोमांचक शोध का विशय बन चुका है।

डायएटमस नेनोटेक्नोलॉजी एक ऐसा अनूठा विज्ञान है जो जीवविज्ञान, जीव–रसायन विज्ञान, जैव प्रोद्योगिकी विज्ञान, भौतिकी, रसायन विज्ञान, पदार्थ विज्ञान एवं यान्त्रिकी सभी के साथ मिश्रित रूप मे है। पिछले 25 वर्षो से उत्तरी भारत मे लेखिका द्वारा डायएटमस पर वृहद शोध द्वारा इनकी लगभग 600 जाति एवं उपजातियां वर्णित की गयी है जिनमे से सभी डायएटमस अलग–अलग प्रकार के पर्यावरण एवं पारिस्थितकी तंत्र का प्रतिनिधित्व करते है। प्रस्तुत विवरण एक विशेष प्रकार की घाटी से सम्बन्धित है जिसमे डाइएटमस अलग–अलग परिवेश मे अलग प्रकार की जातियो की बहुलता के समुदाय मे रहते है। यह घाटी उत्तराखण्ड राज्य मे स्थित एक विशेष प्रकार की अद्भूत घाटी है जो उत्तर दिशा मे निचली हिमालय पर्वत श्रृंखला, दक्षिण दिशा मे शिवालिक पहाडियाँ पूरब दिशा मे गंगा नदी के बेसिन एवं पश्चिम दिशा मे यमुना नदी के बेसिन से घिरी हुई लगभग 1800 वर्ग किमी के क्षेत्रफल मे फैली हुई है। इस घाटी की विशेषता घाटी के मध्य मे स्थित राजपुर की पहाडियाँ भी है जो इस घाटी को बराबर दो हिस्सो मे बॉटती है एवं भारत की दो मुख्य नदियो के बेसिन का निर्माण करती है। इन नदियो को हम गंगा एवं यमुना नदी के नाम से जानते है।

वर्ष 2006 से वर्ष 2008 तक लगातार दो वर्षो तक इस घाटी के लगभग सभी छोटी–बडी नदियो एवं जल स्रोतो का भलीभांति डायएटम आधारित शोध करने के उपरान्त यहाँ लगभग 358 डायएटमस के वशं, जातियाँ एवं उपजातियाँ इस क्षेत्र विशेष के लिए वर्णित की गयी। जिनमे से लगभग 152 डायएटम जातियो एवं उपजातियो का उत्तरी भारत के किसी भी हिस्से से पहले वर्णन

नही किया गया। लेखिका द्वारा इस शोध के दौरान दो डायएटमस की उपजातियां विश्व के किसी भी अन्य हिस्से मे नही पायी गयी है वो उपजातियां इस क्षेत्र विशेष की एक पहचान बन चुकी है। ये सभी डायएटमस विभिन्न प्रकार के जल स्रोतो मे अलग–अलग वंश, प्रजातियाँ के रूप मे पाये गये एवं उनकी संख्या एवं समुदाय भी भिन्न–भिन्न प्रकार के पाये गये।

नीचे दी गयी तालिका दून घाटी मे पाये जाने वाली जातियाँ उनके बाहुल्य एवं रहन सहन के प्रमुख पंसन्द के अधार पर बनी है जिनसे यह स्पश्ट होता है कि वो इस घाटी मे किस प्रकार फैले हुये है।

दूनघाटी में डायटमस के प्रभावी वर्ग

बाधित नदी	बाधित परन्तु का शुद्ध पानी	मानवजनित बाधित नदी कृषि द्वारा	मानवजनित अर्द्ध शहरी नदी	कार्बनिक प्रदूषित नदियां	चौड़ी नदियां
एनकायोनिमा ली	सिम्बैला सबलैप्टोसिरोस	नैविक्यूला मिनसक्यूला वैराईटी मुरैलिस	गोम्फोनिमा पारब्यूलम	निश्चिया पैलिया	नैविक्यूला फा. ईलैप्टा
	एकनैन्थस ओरियन्टेलिस	गोम्फोनिमा पारव्यूलम	सिम्बैला एक्साईजा	सिनेड्रा अल्ना	सिम्बैला ट्युमिडा
	नैविक्यूला वैनेटा	सिनेड्रा अल्ना	कोकोनिस पैडिक्यूलस		सिम्बैला टर्जिड्युला
	सिम्बैला माईक्रो. सिफैला	नैविक्यूला कॉन्फरबेसिया	एनकायोनिमा माईन्यूटम		
		नैविक्यूला एलिग्नेन्सेस	निश्चिया फ्रुस्ट्युलम		
		नैविक्यूला श्नोरटराई	एकनैनथिडियम बायोसोलिटियाना		
		पिन्यूलेरिया ब्रोनाई	नैविक्यूला कैपिटोरिडियाटा		
		गाइरोसिग्मा स्कैलप्रो. इडिस	नैविक्यूला क्रिप्टोटिनैला		
		सुरीरैला लिनियरिस	एनकायोनिमा माईन्यूटम		
		साइक्लोटैला मैननघियाना	निश्चिया क्यूटजिंगयाना		

अपेक्षाकृत साफ जंगली नदी	खुली पूर्ण जंगल नदी	जलप्लावित नदियां	सल्फर नदी	प्राकृतिक स्रोत
कोकोनिस प्लेसेनट्युला वैरा. ईटी युग्लिप्टा	एकनैनथस लिनियरिस	एकनैन्थस लैन्सियोलैटा वैरा. ईटी रोस्ट्रेटा	एकनैन्थस माईक्रोसिफैला	एकनैन्थस लिनियरिस
	नविक्यूला विरिड्युला वैराईटा रोस्टिलैटा		एकनैन्थस कैटिनैटम	एकनैन्थस माईन्यूटिसिमा
				एकनैन्थस स्पेशिज
				एकनैन्थस गोन्डवाना
				फ्रस्टूलिया वल्गैर

उपग्रह स्थित नीतभारों का संरचना विश्लेषण

पुरुषोत्तम गुप्ता
[illegible]

सारांश

कृत्रिम उपग्रहों में प्रयुक्त नीतभारों पर निर्माण, परिवहन, प्रक्षेपण व कक्षा में भ्रमण के दौरान विभिन्न प्रकार के बल लगते हैं। निर्मित करने से पूर्व नीतभारों का इन बलों के लिए संरचना विश्लेषण किया जाता है। संरचना विश्लेषण के द्वारा हम किसी संरचना में उसके कार्यकाल में लगने वाले बलों से उत्पन्न प्रतिबलों और विकृतियों की गणना करते हैं। इस गणना से हम यह पूर्वानुमान लगा सकते हैं कि निर्माण के बाद संरचना संतोशजनक रूप से कार्य कर सकेगी अथवा नहीं। इस प्रकार हम संरचना के विकास की अवधि और धन की बचत कर सकते हैं। उपग्रह प्रमोचन की लागत उपग्रह के द्रव्यमान पर निर्भर करती है। संरचना विश्लेषण द्वारा उपग्रह और उसमें प्रयुक्त नीतभारों के द्रव्यमान को इश्टतमीकृत भी किया जाता है। इष्टतमीकरण के द्वारा हम नीतभारों का अभिकल्पन इस प्रकार करते हैं कि नीतभार कम से कम द्रव्यमान में अपना कार्य संतोषजनक रुप से सम्पन्न कर सकें। द्रव्यमान को न्यून करने की विधियों में मजबूत व अपेक्षाकृत कम घनत्व वाले पदार्थों का उपयोग एवं इष्टतमीकृत अभिकल्पन भाामिल हैं। प्रस्तुत लेख में नीतभारों की संरचना विश्लेषण की विधि पर प्रकाश डाला गया है। उदाहरण के तौर पर कुछ नीतभारों की संरचना विश्लेषण के परिणामों को प्रस्तुत किया गया है।

भूमिका

उपग्रहों का मानव हित में उपयोग सर्व विदित है। उपग्रह अंतरिक्ष में स्थित होकर बिना दृश्यमान हुए मानव सेवा में लगे रहते है। भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन इसरो ने अंतरिक्ष में भू–स्थिर और सुदूर संवेदन उपग्रह प्रणालियाँ स्थापित की हैं। भू–स्थिर उपग्रहों का उपयोग दूर संचार, शिक्षा, स्वास्थ्य, आदि कार्यो के लिए किया जाता है जबकि सूदूर संवेदी उपग्रहों का उपयोग प्राकृतिक संसाधनों के प्रबंधन, मानचित्रण,आपदा प्रबंधन आदि के लिए किया जाता है। उपग्रहों में इन कार्यो को सम्पन्न करने के लिए अनेक वैज्ञानिक उपकरण और प्रणालियाँ लगाई जाती हैं, जिन्हें नीतभार कहते हैं। नीतभारों में छातानुमा एन्टेना, केमरे,धातु के आवरण, पीसीबी, छोटे–छोटे इलैक्ट्रॉनिक घटक, तांबे के तार,सोल्डर, आदि भाामिल हैं। उपग्रह की सफलता इन नीतभारों के सुचारू रूप से कार्य करने पर निर्भर करती है, जिसमें यांत्रिक और विद्युत कार्य क्षमता भाामिल है। संरचना विश्लेषण द्वारा नीतभारों की यांत्रिक कार्य क्षमता निर्माण से पूर्व ही ज्ञात कर ली जाती है।

संरचना विश्लेषण

उपग्रहों में प्रयुक्त नीतभारों पर निर्माण, परिवहन, प्रक्षेपण व कक्षा में भ्रमण के दौरान विभिन्न प्रकार के बल लगते हैं। नीतभारों को निर्मित करने से पूर्व इनका संरचना विश्लेषण किया जाता है। संरचना विश्लेषण द्वारा हम किसी संरचना में उसके कार्यकाल में लगने वाले बलों से उत्पन्न प्रतिबलों और विकृतियों की गणना करते हैं। इस गणना से हम यह पूर्वानुमान लगा सकते हैं कि निर्माण के बाद संरचना संतोषजनक रूप से कार्य कर सकेगी अथवा नहीं। इस प्रकार हम संरचना के विकास की अवधि और धन की बचत कर सकते हैं।

उपग्रह प्रमोचन की लागत उपग्रह के द्रव्यमान पर निर्भर करती है। संरचना विश्लेषण द्वारा उपग्रह और उसमें प्रयुक्त नीतभारों के द्रव्यमान को इष्टतमीकृत भी किया जाता है। इष्टतमीकरण के द्वारा हम नीतभारों का अभिकल्पन इस प्रकार करते हैं कि नीतभार कम से कम द्रव्यमान में अपना कार्य संतोषजनक रुप से सम्पन्न कर सकें।

सीमित अवयव तकनीक

नीतभारों को इनकी जटिल संरचना के कारण संरचना विश्लेषण के सामान्य सूत्रों द्वारा हल करना लगभग असंभव होता है। इसलिए इनका संरचना विश्लेषण सीमित अवयव तकनीक द्वारा किया जाता है। इस तकनीक द्वारा जटिल संरचनाओं का विश्लेषण संख्यात्मक विधियों (numerical methods) द्वारा किया जाता है। सर्वप्रथम विश्लेषण की जाने वाली संरचना को एक निश्चित संख्या के अवयवों में विभक्त किया जाता है। इन अवयवों के गुण पूर्व में ज्ञात कर लिए जाते हैं। इस प्रकार संपूर्ण संरचना का एक गणितीय प्रतिमान (Mathematical model) आव्यूह के रूप में उपलब्ध होता है। इस गणितीय प्रतिमान को विभिन्न प्रकार की भार स्थितियों और सीमा अवस्थाओं (boundary conditions) के साथ हल किया जाता है। इसके द्वारा हमें संरचना में विकृतियों और प्रतिबलों का मान प्राप्त होता है। कंप्यूटरों द्वारा आव्यूह का हल निकालना व अन्य गणनाएं करना आसान होता है। अतः सीमित अवयव विधि प्रचलित एवं लागत प्रभावी बन गई है। संरचना विश्लेषण के लिए निसा–2/डिस्प्ले–III एवं नास्ट्रान/पेट्रान सॉफ्टवेयरों का उपयोग किया गया।

संरचना विश्लेषण के लिए जरूरी आँकड़ों में नीतभार में प्रयुक्त पदार्थ के यांत्रिक गुणधर्म, उस पर लगने वाले बल और नीतभार की ज्यामिति शामिल है।

नीतभारों में प्रयुक्त पदार्थों के यांत्रिक गुणधर्म

नीतभारों के निर्माण में अपेक्षाकृत कम घनत्व, अधिक मज़बूती और यंग मापांक (young's modulus) वाले पदार्थो का उपयोग किया जाता है। इनमें एल्युमिनियम व मैग्नेशियम की मिश्र धातुएँ शामिल हैं। इनका उपयोग नीतभारों के आवरण बनाने में किया जाता है। टाइटेनियम व उच्च शक्ति इस्पात का उपयोग नीतभारों में प्रयुक्त नट–बोल्टों में किया जाता है। कार्बन रेशा प्रबलित प्लास्टिक (CFRP) के एन्टिना बनाए जाते हैं।

पदार्थ	यंग मापांक (किग्रा/वर्ग मिमी) E	घनत्व d	स्थैतिक झुकाव बिंदु (किग्रा/वर्ग मिमी)	चरम–तनन सामर्थ्य (किग्रा/वर्ग मिमी)	E/dx1000
इस्पात 304A	21000	7.8	100	130	2.7
एल्युमिनियम 6061-T6	7000	2.7	28	35	2.5
टाइटेनियम	11000	4-43	85	95	2-5
मेग्नेशियम zk 61A	4500	1.7	18	27	2.7

कार्बन रेशा प्रबलित प्ला. स्टिक (CFRP)	30000	1.6	–	180	18.6

नीतभारों पर लगने वाले बल

नीतभारों पर लगने वाले बलों को मुख्यतः तीन भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है– पूर्व प्रमोचन बल, प्रमोचन बल और पश्च प्रमोचन बल

1. पूर्व प्रमोचन बल– नीतभारों की निर्माण प्रक्रिया में पदार्थ की काट–छाँट, नट–बोल्टों और सोल्डर द्वारा जड़ित करने की प्रक्रिया के कारण प्रतिबल उत्पन्न होते हैं एवं परिवहन के दौरान लगने कंपन बल लगते हैं। पूर्व प्रमोचन बल, प्रमोचन बलों की तुलना में अल्प होते हैं।
2. प्रमोचन बल–उपग्रह को पृथ्वी से अंतरिक्ष में प्रमोचन का समय आधे घंटे से भी कम समय लगता है। इस अवधि में उपग्रह और उस पर स्थित नीतभारों पर प्रमोचन यान की तीव्र गति, कंपन और ध्वनि के कारण विभिन्न प्रकार के बल लगते हैं। इन बलों में स्थिरवत् बल, ज्यावक्रीय कंपन, ध्वनिक बल, यादृच्छिक कंपन और प्रघात बल प्रमुख हैं।

   2.1 स्थिरवत् बल प्रमोचन यान की गति के कारण नीतभारों पर जो बल लगता है, उसे स्थिरवत् बल कहते हैं।

   2.2 ध्वनिक कंपन बल–नीतभारों पर सर्वाधिक ध्वनिक कंपन बल प्रमोचन यान के पृथ्वी से उपर उठने के तुरन्त बाद एवं यान की गति के पराध्वनि स्तर को पार करने के समय लगता है। इन बलों की आवृत्ति 10000 हर्टज तक और स्तर 140 से 145 डेसीबेल तक होता हैं। ध्वनिक बलों का प्रभाव अपेक्षाकृत अधिक क्षेत्रफल वाले नीतभारों जैसे कि छातानुमा एंटेनाओं और सौर–फलकों पर अधिक पड़ता है।

   2.3 यादृच्छिक कंपन बल–प्रमोचन यान जब वायुमंडल को चीर कर अंतरिक्ष की ओर बढ़ता है तो उस पर वायु जड़त्व के कारण यादृच्छिक कंपन बल लगता है। इन बलों की आवृत्ति 20 से 2000 हर्टज् तक होती है। नीतभारों के इलेक्ट्रानिक उपकरणों और इनके आवरणों को इस कंपल बन के लिए डिजाइन किया जाता है। यादृच्छिक कंपन बलों के कारण नीतभारों में टूट–फूट की संभावना अधिक होती है।

   2.4 प्रघात बल–प्रमोचन यान के विभिन्न चरण अपना कार्य संपन्न करने के बाद यान से एक विस्फोट के साथ विच्छिन्न होते हैं और अंत में इसी प्रकार उपग्रह भी यान से अलग होकर अपनी कक्षा में स्थापित होता है। इसके परिणाम स्वरूप उपग्रह स्थित नीतभारों पर प्रघात बल लगते हैं। प्रघात बल की अवधि एक सेकंड से भी कम होती है।

   प्रघात बल के प्रभाव को प्रघात अनुक्रिया स्पेक्ट्रम (SRS) के रूप में चित्रित किया जाता है। यह आलेख, एकल स्वतंत्रता कोटि (Single degree of freedom) संरचना पर किसी उत्तेजक बल की अनुक्रिया (Response) को द ार्शाता है। उत्तेजक बल सामान्यतः त्वरण व समय का पूर्ववृत्त (History) होता है ।
3. पश्च प्रमोचन बल (कक्षीय बल)–अंतरिक्ष में भारहीनता की अवस्था में जड़त्व बल भून्यवत् होता है। सौरफलकों और छातानुमा एन्टेनाओं के अन्तरिक्ष में खुलने के समय, इनके जोड़ों पर प्रघात बल लगता है। अंतरिक्ष में तापमान के उतार चढ़ाव के कारण तापीय विरूपण एवं प्रतिबल उत्पन्न होता है। इसके कारण संसूचकों की भू–संपर्क क्षमता पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

संरचना अभिकल्पन की कसौटियाँ

प्राकृतिक आवृत्ति

नीतभारों की विशिष्ट प्राकृतिक आवृत्तियाँ होती हैं और उन पर पर विभिन्न आवृत्तियों के कंपन बल लगते हैं। नीतभारों की एवं उन पर लगने वाले बनों की आवृत्ति समान होने पर अनुनाद उत्पन्न होता है। इसके कारण नीतभारों में अत्याधिक प्रतिबल ओर विरूपण उत्पन्न होता है। अनुनाद की संभावना को दूर करने के लिए नीतभारों को इस प्रकार अभिकल्पित किया जाता है कि उनकी प्राकृतिक आवृत्ति इन कंपन बलों से दूर हों।

प्रतिबल

नीतभारों पर लगने वाले बलों द्वारा उत्पन्न प्रतिबल, पदार्थ की प्रतिबल सहन करने की क्षमता से कम होना चाहिये अन्यथा नीतभारों को नुकसान पहुँच सकता है।

विक्षेपण

नीतभारों पर लगने वाले बलों द्वारा उत्पन्न विक्षेपण, विभिन्न नीतभारों और उनके घटकों के बीच की दूरी से कम होना चाहिए। इस प्रकार उनमें किसी प्रकार की टकराहट की संभावना को दूर किया जा सकता है।

कंपन जाँच

नीतभारों की संरचना विश्लेषण के पश्चात उनका निर्माण करके कंपन जाँच की जाती है। कंपन जाँच के परिणाम संतोषजनक होने पर नीतभार को प्रमोचन जनित कंपन सहने योग्य माना जाता है।

संरचना विश्लेषण का उदाहरण

जीसेट–4 उपग्रह के पुनरूज्जीवक नीतभार (Regenerative pay load) का संरचना विश्लेषण पुनरूज्जीवक नीतभार जीसेट–4 उपग्रह का एक महत्त्वपूर्ण उपकरण है। इसके द्वारा सूक्ष्म तरंग संकेतों को उपग्रह पर ही संसाधित (process) किया जा सकेगा।

परिचय

पुनरूज्जीवक नीतभार का वज़न 73 किलो ग्राम है। इसके अंतर्गत 63 इलैक्ट्रॉनिक पैकेज़ आते हैं। इन इलैक्ट्रॉनिक पेकेज़ों को 6 समूहों में विभक्त किया गया है। प्रत्येक समूह की रचना दूसरे से भिन्न है। इन 6 समूहों में 3 समूह 11 पेकेज़ वालेए 2 समूह 12 पैकेज़ वाले और 1 समूह 6 पेकेज़ वाला है। प्रत्येक पेकेज़ में इलैक्ट्रॉनिक घटक और मुद्रित परिपथ फलक (PCB) लगे हुए हैं।

सड़क परिवहन हेतु इन सभी पेकेज़ों को एक 6 मि.मी. मोटी एल्युमीनियम की चादर पर नट बोल्टों द्वारा स्थिर किया गया है। यह एल्युमीनियम की चादर 75 मिमी X 38 मिमी X 3 मिमी की चेनलों पर स्थिर है। इस पूरे सज्जीकरण (Assembly) को ट्रक की चेसिस पर स्थिर किया गया है।

संरचना विश्लेषण के लिए आंकड़े

संरचना के विभिन्न अवयवों के भारों का विवरण

1. अनुलिपि (Dummy) उत्तर तख्ती का भार शहतीरों (beams) के साथ–79 किग्रा।

2. सज्जीकरण का भार क्रमांक	पेकेज़ कूट	एक समूह का भार	कुल समूह	कुल भार
1.	GRP-10	12	4	48
2.	G90	9	1	9
3.	GRP-107	11	1	11
4.	परिपथ तारों का वज़न			5
			योग	73 कि.ग्रा.

नीतभार सज्जीकरण का कुल वज़न 79+73= 152 कि.ग्रा.

नीतभार में प्रयुक्त पदार्थों के यांत्रिक गुणधर्म

क्रमांक	पदार्थ	चरम तनन सामर्थ्य किलोग्राम/वर्ग मि.मी.	प्रत्यास्थता मापांक किलोग्राम / वर्ग मि.मी.	पाइजन का अनुपात	घनत्व	तापीय विस्तरण गुणांक
1	एल्युमीनियम	28	7000	0.34	2.7	24 E-6
2	मु.प.फ. (PCB)	28	21	0.118	2.042	14 E-6
3	मेग्नीि ायम	22	4500	0.3	1.8	24 E-6

नीतभार पर लगने वाले बल

1. प्रमोचन बलः प्रमोचन बलों को गुरूत्वीय त्वरण (जी) के गुणांक में व्यक्त किया जाता है।

1.1 स्थाई स्थिति त्वरण (steady state acceleration): 20 जी प्रत्येक अक्ष में स्वतंत्र रुप से।

1.2 ज्यावक्रीय कंपनः (sine vibration): नीतभार के स्थापन समतल के लम्बवत व समानांतर दिशाओं में यह बल निम्नलिखित है ।

स्थापन समतल के लम्बवत		स्थापन समतल के समानांतर	
आवृत्ति (हर्टज़)	स्तर	आवृत्ति (हर्टज़)	स्तर
5-20	12.4 मिमी.	5-18	11.5 मि.मी.
20-70	20 'जी'	18-70	15 'जी'
70-100	10 'जी'	70-100	8 'जी'

यादृच्छिक कंपन (Random vibration)

आवृत्ति (हर्टज)	स्तर
20-100	3 डीबी/अश्टक
100-700	0.1 जी2/ हर्टज्
700-2000	-3 डीबी/अश्टक
समग्र 'जी'	11.8

सड़क परिवहन जनित कंपन बल

सड़क परिवहन के दौरान उत्पन्न कंपन बलों का निर्धारण मुख्यतः निम्निलिखित स्थितियों पर आधारित होता है।

1. सड़क की अवस्थाः जैसे कि समतलए रेतीली, उबड़–खाबड़
2. वाहन का प्रकारः विभिन्न वाहनों की बनावट के अनुसार उनके भिन्न–भिन्न अवयवों की आवृत्ति अलग–अलग होती है और तदनुसार वे सड़क से उत्पन्न कंपनों को कम या अधिक कर सकते हैं। सामान्यतः भारवाहक वाहन 1 से 12 हट्र्ज तक की आवृत्ति के कंपन उत्पन्न करते हैं।
3. वाहन की गतिः वाहन को निर्धारित सीमा से अधिक गति से चलाने पर अधिक कंपन बल उत्पन्न हो सकते हैं और इससे नीतभार की सुरक्षा को खतरा उत्पन्न हो सकता है।

विश्लेषण के लिए निम्नलिखित तकनीकी साहित्य व प्रायोगिक परिणामों का उपयोग किया गया :

1. विभिन्न सड़क स्थितियों में माल–सामान पर लगने वाले अधिकतम कंपन बल (2.25 टन ट्रक व M-104 ट्रेलर के लिए)।

सड़क की अवस्था	अधिकतम त्वरण 'जी'				आवृत्ति
	लम्बवत	पार्श्व	उर्ध्व	वेक्टरयोग	
रेतीली	2.5	1.0	4.5	5.3	3.3 हर्टज्
उबड़–खाबड़ (30 किमी/घंटा)	0.5	1.0	1.5	1.9	
समतल	1.0	0.25	1.0	1.4	

• हेन्डबुक ऑफ वाइब्रेशन – हेरिस सी.एम.

2. जी–सेट –4 की उत्तर व दक्षिण पेनलों के सड़क परिवहन के दौरान कंपन का मापन

अक्ष	उच्चतम त्वरण 'जी'
x	8.61
y	6.0
z	18.8

संरचना विश्लेषण के परिणाम

1. प्राकृतिक आवृत्ति :

मुद्रित परिपथ फलक : 149 हर्टज्

नीतभार : 137 हर्टज्

नीतभार और एल्युमीनियम तख्ती का सज्जीकरण	: 24 हर्टज्
एल्युमीनियम तख्ती	: 34 हर्टज्

प्रतिबल

20 'जी" स्थाई स्थिति त्वरण के प्रमोचन बल के कारण प्राप्त प्रतिबल (stress) .

1 मुद्रित परिपथ फलक	: 2 कि.ग्रा. /वर्ग मि.मी.
2 नीतभार के परिवहन के लिए उपयोग में प्रयुक्त एल्युमीनियम तख्ती	: 16 कि.ग्रा. /वर्ग मि.मी.
3 मेग्नीशियम धारक (mount)	: 1.8 कि.ग्रा /वर्ग मि.मी.

निष्कर्ष

1. संरचना विश्लेषण द्वारा नीतभार व एल्युमीनियम स्थिरिकरण तख्ती के सज्जीकरण की प्राकृतिक आवृत्ति 24 हर्टज् प्राप्त हुई। यह मान नीतभार के सड़क परिवहन के दौरान उत्पन्न कंपन बलों की आवृत्ति (3.3 हर्टज्) की तुलना में बहुत अधिक है।
   अतः परिवहन के दौरान किसी प्रकार के अनुनाद (resonance) की संभावना नहीं है।
2. सम्मिलित वानमाइसेस प्रतिबलों का मान नीतभार में प्रयुक्त पदार्थों की सुरक्षित सीमा से कम है। अतः नीतभार, परिवहन या प्रमोचन बलों से सुरक्षित है।
3. कंपन बलों से उत्पन्न झुकाव के कारण नीतभार के अवयवों के आपस में टकराने की संभावना नहीं है।
4. नीतभार की कंपन जाँच के परिणाम संतोषजनक रहे हैं

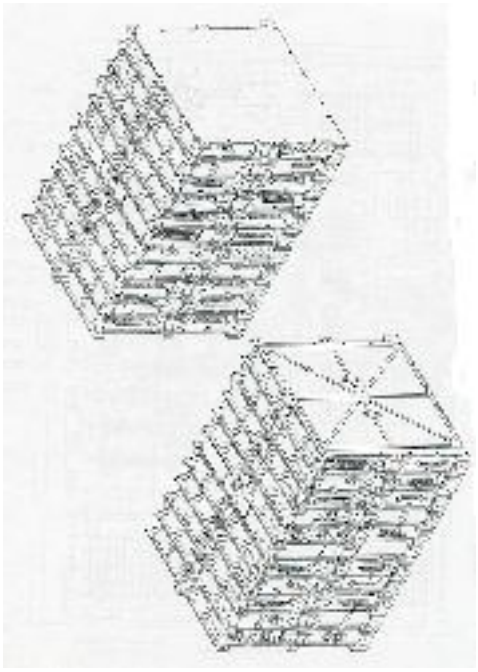

पुनरुज्जीवक नीतभार के एक पेलोड का रेखा चित्र।

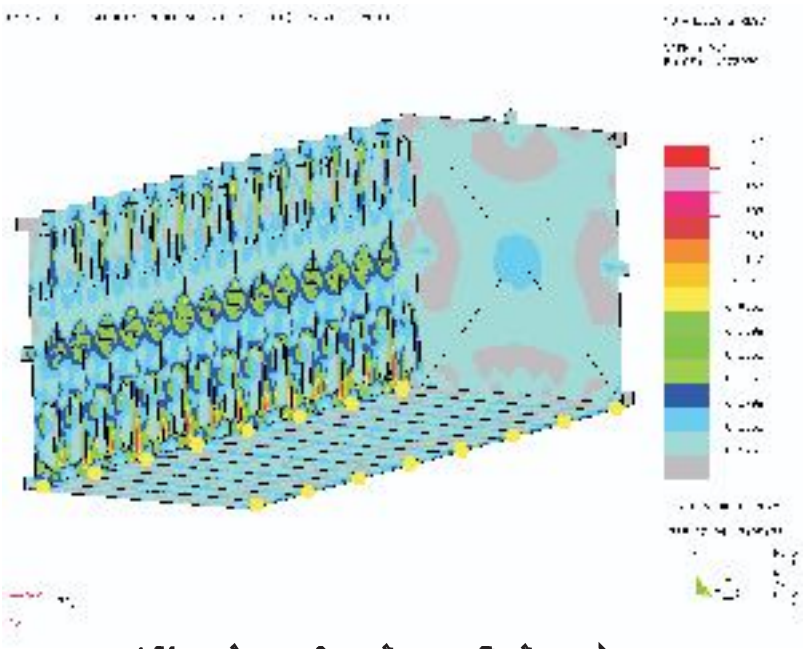

20 'जी' बल के कारण नीतभार में उत्पन्न प्रतिबलों का समोच्च नक्शा।

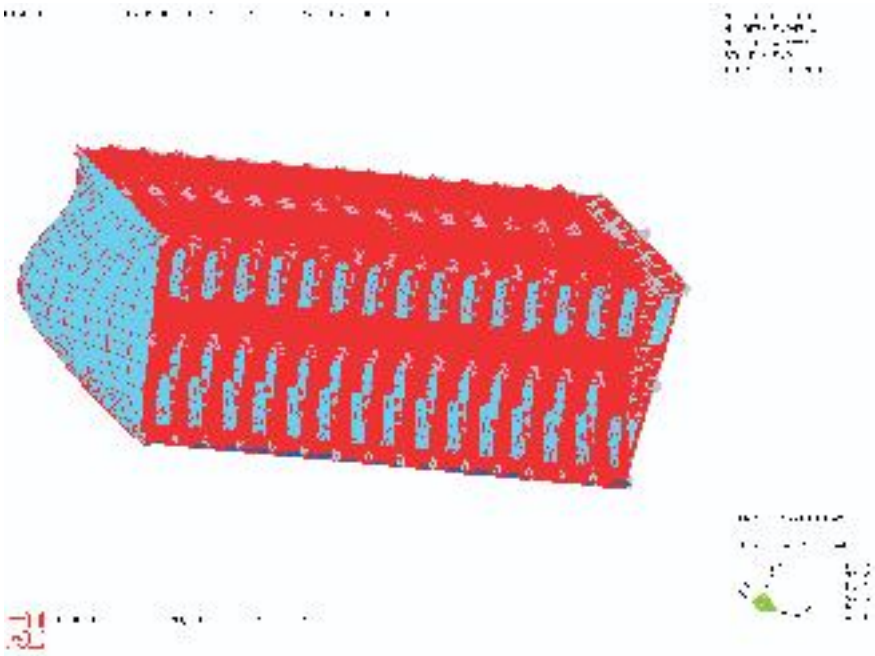

नीतभार की प्रथम प्राकृतिक आवृत्ति – 133 हर्ट्ज़।

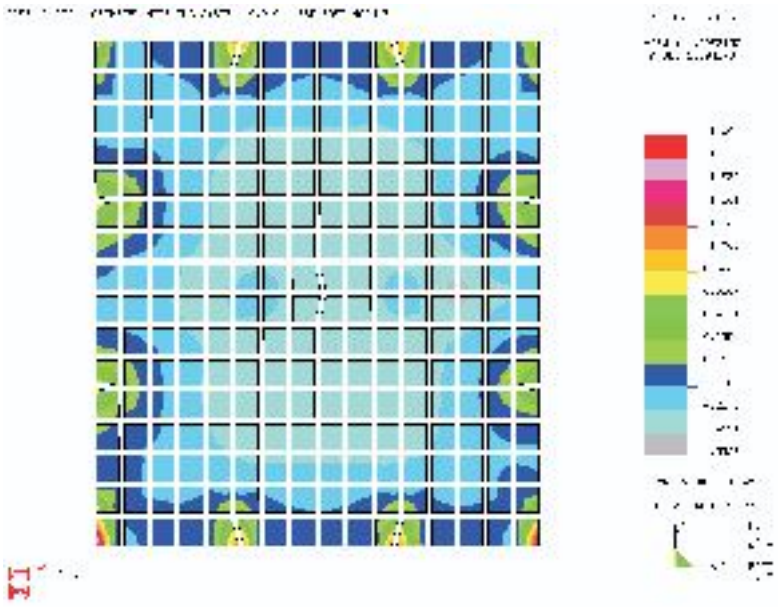

पीसीबी में 20 "जी" भार से उत्पन्न प्रतिबल।

परिवहन के लिए प्रयुक्त तख्ती का सीमित अवयव प्रतिमान।

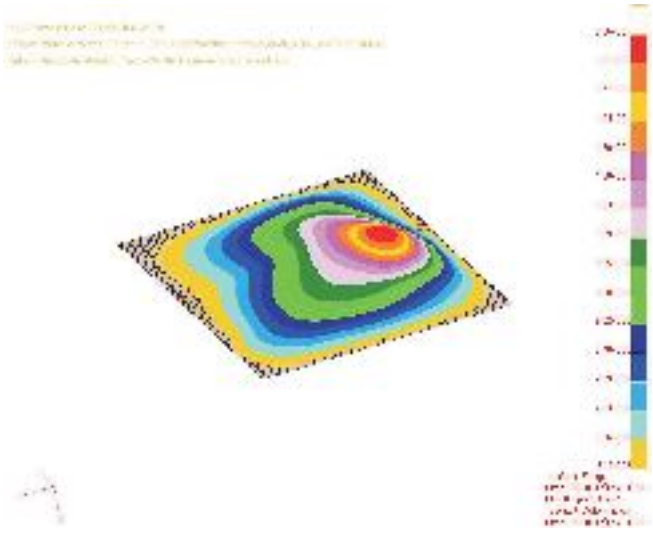

नीतभार और परिवहन तश्तरी की प्रथम प्राकृतिक आवृत्ति – 24 हर्ट्ज़।

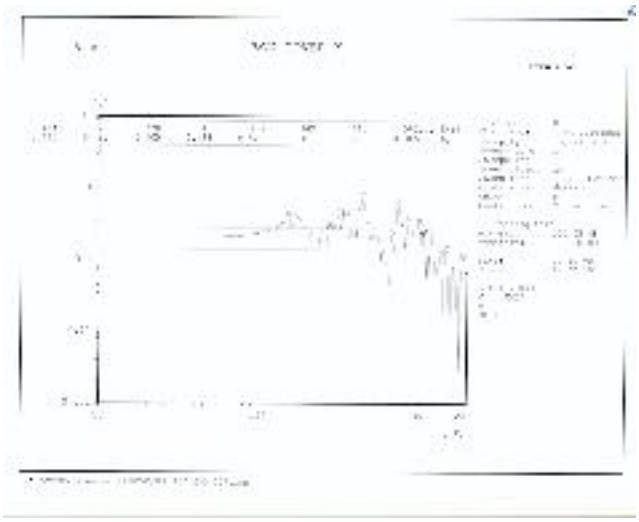

नीतभार की कंपन जाँच के परिणाम।

संदर्भ

1. हेरिस, सिरिल एम, हेन्डबुक ऑफ वाइब्रेशनएमेक्ग्रा हिल,1961
2. एक्सीलरोमीटर रेकार्ड ऑफ जीसेट–4 नार्थ एंड साउथ पेनल जेनरेटेड डयूरिंग 18.01.08. 30.01.08.
3. रिपोर्ट ऑन स्ट्रक्चरल एनेलिसिस ऑफ रिजनरेटिव पेलोड डाक्यूमेंट नं. GSAT/ STAF/ PG/ 01/ 1/03/2004.
4. विजकर, जेकब जाब, स्पेसक्राफ्ट स्ट्रक्चर्स, स्प्रिंगर–वरलाग, 2008.

विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी के युग में औद्योगिक समाज की भूमिका

सरताज अहमद, मौ. आमिर, आबिद गाजी, तथा मशरुल अहमद
स्वामी विवेकानन्द सुभारती विश्वविद्यालय, मेरठ, उत्तर प्रदेश

प्राचीन समय में विश्व भर में विज्ञान, गणित, ज्योतिश शास्त्र, खगोल विद्या और दर्शन ने अद्वितीय उपलब्धियां प्राप्त की थी। वैज्ञानिक ज्ञान, उच्च प्रौद्योगिकीय, औद्योगिक सरंचना और कुशल कार्यबल इस नए युग की धरोहर है। आधुनिक समाज में औद्योगिक विकास के माध्यम से सामाजिक परिवर्तन हुआ। आज विज्ञान तथा औद्योगिक अनुसंधान की उपलब्धियां आर्थिक प्रगति और विकास के महत्वपूर्ण माध्यम है।

मानव सभ्यता के अतीतकाल से लेकर आज तक औद्योगीकरण की प्रक्रिया निरंतर गतिशील रही है। भारत में प्राचीन काल में औद्योगीकरण अपनी उन्नत अवस्था में था। 18वीं शताब्दी के अंत तक औद्योगिक क्षेत्र में भारत अग्रणी देश रहा। जब विश्व के अधिकांश देश पिछड़े थे तब भारत औद्योगिक दृष्टि से विकसित था। यहां कृषि व्यवस्था तथा उद्योग धंधों द्वारा अधिक उत्पादन व लाभ प्राप्त होता था और अधिकांश राष्ट्रों से हमारे व्यापक आर्थिक संबंध थे।

कौटिल्य के अर्थशास्त्र, जातक कथाओं, धार्मिक ग्रंथों और विदेशी यात्रियों द्वारा लिखित यात्रा वृतांतों में भारतीय उद्योगों की झलक मिलती है। भारत में उपनिवेशवाद के दौरान ब्रिटिश शासन द्वारा अपनाई गई घातक औद्योगिक नीतियों ने भारत के उद्योग धंधों को चौपट कर दिया। भारत से कच्चा माल ब्रिटेन जाने लगा और वहां से मशीनों द्वारा तैयार माल भारत में खपाया जाने लगा। परिणामस्वरूप ब्रिटेन में तो औद्योगिक विकास होने लगा पर भारतीय अर्थव्यवस्था डगमगा गई।

भारत में औद्योगिकरण की प्रक्रिया का पुनः विधिवत सूत्रपात स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हुआ। भारत सरकार ने द्वितीय पंचवर्षीय योजना में औद्योगिकरण को प्राथमिकता दी। उद्योग–धंधों व कुटीर उद्योग को महत्व दिया जाने लगा। समाजवादी समाज की संरचना के आधार पर सार्वजनिक क्षेत्र के माध्यम से आर्थिक विकास को गति प्रदान की गई। भारत में पिछले दशकों में हुए औद्योगिक विकास ने विश्व के विकसित देशों को भी अचम्भित कर दिया। सभी विकसित राष्ट्र अपने उद्योग–धंधों का बड़े पैमाने पर भारत में विस्तार कर रहे हैं। देश में तेजी हो रहे सामाजिक –आर्थिक परिवर्तन से कृषि व्यापार, यातायात की उपलब्धता, रोजगार के अवसर, राष्ट्रीय आय और विदेशी व्यापार को प्रोत्साहन मिला है।

भारतीय जीवन और समाज, औद्योगिक जीवन की ओर अग्रसर हो रहा है। आधुनिक उद्योगवाद का प्रभाव समाज की संरचना और समस्त संस्थाओं पर पड़ा है। निरंतर प्रगति के क्षेत्र में उद्योगों में यंत्रों एवं मशीनों को अपनाने की प्रक्रिया को यंत्रीकरण के नाम से जानी जाती है। इन यंत्रों के माध्यम से बड़े पैमाने पर उत्पादन सम्भव हुआ है। औद्योगिक तकनीक विकास की वह प्रक्रिया है जिसमें श्रम विभाजन के साथ विशेष कार्य शक्ति द्वारा क्रेता एवं विक्रेता के मध्य संतुलन स्थापित होता है। औद्योगीकरण के कारण उत्पादन कार्यों में क्रमबद्ध परिवर्तन होते रहते हैं। इसके अन्तर्गत वे आधारभूत परिवर्तन आते हैं, जो किसी उपक्रम के यंत्रीकरण, नवीन उद्योगों के निर्माण, नये बाजार की स्थापना तथा किसी क्षेत्र के विदोहन के साथ–साथ होते हैं। यह एक प्रकार से पूंजी को गहन एवं विस्तृत बना

देने की प्रक्रिया है। औद्योगिकीकरण की प्रक्रिया केवल निर्माण उद्योगों तक ही सीमित नहीं है, अपितु इसके द्वारा किसी भी देश की सम्पूर्ण आर्थिक संरचना परिवर्तित की जा सकती है। आर्थिक विकास के लिए औद्योगीकरण बहुत आवश्यक है। औद्योगीकरण को अर्थिक विकास तथा रहन–सहन के स्तर में सुधार की कुंजी माना जाता है। निर्माण उद्योग के रूप में औद्योगिकरण को आर्थिक स्थिरता एवं निर्धनता को दूर करने की संजीवनी माना जाता है।

वर्तमान युग औद्योगिक युग है तथा औद्योगीकरण के इस युग में सामाजिक परिवर्तन की गति भी काफी तीव्र हो गई है क्योंकि विकास की गति में काफी तीव्रता आ गई है।

विकास की इस गति ने अनेक प्राचीन रूढिवादी परम्पराओं को समाप्त सा कर दिया है जो समाज के विकास में बाधक था। आज उद्योगों का आधुनिकीकरण किया जा रहा है। समाज भी औद्योगीकरण की इस तीव्र रफ्तार से अपने आपको अछूता नही रख पाया है क्योंकि औद्योगीकरण का प्रमुख आधार समाज ही है। अगर औद्योगीकरण उत्पादनो ंकी खपत समाज में नहीं हो पाए तो औद्योगीकरण की दिशा ही बदल जाएगी अतः समाज भी औद्योगीकरण के साथ–साथ अपने आपको परिवर्तित करता जा रहा है।

देश के औद्योगिक समाज के परिदृश्य पर नजर डाली जाए तो तस्वीर साफ चमकती नजर आती है। बड़े व मध्यम आकार की इकाइयां रोजगार के बढ़ते अवसर, शहरीकरण आदि की गति को बल मिल रहा है। यही नहीं, औद्योगिक विकास ने सामाजिक–आथिक विकास के ताने–बाने को मजबूती दी है।

लखनऊ की किशोरियों द्वारा ग्रहण किए जाने वाले पोषक पदार्थों की मात्रा तथा उनका पोषण स्तर

*स्वाती दीक्षित, *जेवी सिंह, *नीलम सिंह, **सूर्यकान्त, तथा ***जी जी अग्रवाल
**आई टी कॉलेज, लखनऊ*
***किंग जॉर्ज मेडिकल यूनिवर्सिटी, लखनऊ, उत्तर प्रदेश*
****सांख्यिकी विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ*

किशोरावस्था में शारीरिक वृद्धि बचपन और किशोरावस्था में ली जाने वाली खुराक से जुड़ी होती है। किसी व्यक्ति में पर्याप्त पोषण उसके द्वारा किए जाने वाले भोजन की मात्रा और उसकी गुणवत्ता पर निर्भर करता है। यह स्थिति उस व्यक्ति की सामाजिक आर्थिक स्थिति, खानपान की आदतों, सांस्कृतिक परिवेश और भोजन के चयन पर निर्भर करती है। हालांकि सांस्कृतिक कारक खाने के चयन व निर्धारण में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं पर गरीबी की स्थिति पोशण स्तर को सर्वाधिक प्रभावित करती है।

किशोरियों में कुपोषण की स्थिति दुबलेपन, कमजोर मांशपेशियों और कार्यक्षमता में कमी के रूप में परिलक्षित होती है। ऐसी कुपोषित किशोरियां कालान्तर में नाटी मां के रूप में प्रसव के दौरान उल्लेखनीय जोखिम का सामना करती हैं। जीवन का दूसरा दशक किसी भी व्यक्ति के जीवन की वह अवस्था है जब बाल्यावस्था की तुलना में उसके शरीर का विकास सबसे तेजी से होता है और व्यक्ति अपने वजन और लम्बाई में क्रमशः 35 फीसदी और 11 से 18 फीसदी की वृद्धि करता है।

दूसरे शब्दों में किशोरावस्था हमें वह मौका प्रदान करती है जब हम किशोरियों में होने वाली कुपोषण की समस्या को सुलझा कर, उन्हें कुपोषण और मातृत्व के जोखिमों के दुश्चक्र से निजात दिला सकते हैं।

विधि– यह अध्ययन लखनऊ में ग्रामीण, शहरी और मलिन बस्ती की किशोरियों में किया गया।

अध्ययन रूपरेखा–यह एक क्रॉससेक्शनव अध्ययन था जो कि अध्ययन के उद्देश्यों के अनुरूप था।

अध्ययन इकाई–लखनऊ की 10–19 वर्ष के बीच की किशोरी।

नमूना संख्याः भारत के उत्तर प्रदेश के लखनऊ जिले की किशोरियां इस अध्ययन में शामिल थीं। नमूना संख्या के लिये उपयुक्त संख्या की गणना पूर्ण में किये गये विभिन्न अध्ययनों के आधार पर की गयी। इन अध्ययनों में पोषण स्तर और खान–पान की आदतों वाले कारकों को गणना का आधार बनाया गया। गणना के आधार पर 576 की नमूना संख्या उपयुक्त पायी गयी।

नमूना चयन की क्रियाविधि–प्रथक स्तरीय रैन्डम नमूना चयन की प्रक्रिया ग्रामीण, शहरी और मलिन बस्तियों के चयन में प्रयुक्त की गयी जिसके लिये कुल 586 किशोरियों (151 ग्रामीण क्षेत्रों से, 150 मलिन बस्तियों से व 286 शहरी क्षेत्र के मध्य व उच्च वर्गीय स्तर से) का चयन किया गया।

ग्रामीण क्षेत्र के चयन के लिये, रैन्डम ढंग से प्रखण्ड सरोजनी नगर का चयन लखनऊ के 100 प्रखण्डों की सूची से किया गया। तदुपरान्त रैन्डम चयन द्वारा इस प्रखण्ड के 10 गांवों में से एक बन्थरा का चयन किया गया। मालिन बस्ती के चयन के लिए पूर्व की भाँति रैन्डम रूप से लखनऊ के 6 जोन

से एक जोन जोन संख्या 2 ऐशबाग को चुनकर, एक वार्ड राजाजीपुरम का चयन कर वहाँ की 10 मलिन बस्तियो की सूची से 2 मलिन बस्तियो हैदरकैनाल व पाटा की किशोरियो को अध्ययन हेतु चुना गया।

शहरी किशोरियों के नमूनो के लिये जिले के स्कूलों की सूची से पुनः रैन्डम चयन के द्वारा दोनों विद्यालयों से 143 किशोरियों को शामिल किया गया।

अध्ययन में शामिल होने की पात्रता

अभिभावक व किशोरियो की लिखित स्वीकृति के उपरान्त चयनित 10 से 19 वर्ष की किशोरियों

अध्ययन मे शामिल न करने के कारण

अध्ययन में शामिल होने की अनिच्छा या शादी

अध्ययन उपकरण/साधन

एक उपयुक्त प्रश्नावली को विकसित किया गया जो अध्ययन की जरूरतों को भली–भाँति पूरा करती हो इस प्रश्नावली को पूर्व परीक्षण से प्राप्त परिणामों के आधार पर किंचित परिवर्तित कर सुधारा भी गया।

पोषण पदार्थ ग्रहण करने की मात्रा का निर्धारण 24 घण्टे स्मरण विधि के द्वारा किया गया एवं पोषण की पर्याप्तता के अध्ययन के जिये पोषण पर्याप्तता अनुपात का उपयोग किया गया जाकि प्रतिदिन व्यक्ति द्वारा किसी विशिष्ट पोषक पदार्थ को ग्रहण करने की मात्रा को उस विशिष्ट पोषक पदार्थ हेतु संस्तुत दैनिक मात्रा विभाजित करने के उपरान्त प्राप्त होता है। इसके द्वारा प्राप्त संख्या 1 या अधिक होने पर पर्याप्त, 0.66 से 1 के बीच होने पर ठीक ठाक और 0.66 से कम होने अपर्याप्त के रूप मे परिभाषित किया गया।

रक्त मे 11.5 प्रति 100 मि0ली0 से कम हीमोग्लाबिन को रक्तअलप्ता के रूप मे परिभाषित किया गया।

परिणाम व विमर्श

विवरण निम्म सारणियो मे दिये गये है।

अधिकांश किशोरियों मे प्रोटीन 85 फीसदी कैल्शियम 79.9 फीसदी व विटामिन ए 89.1 फीसदी हेतु पोषण पर्याप्तता का अनुपात अपर्याप्त, 0.66 से कम पाया गया।

कुछ किशोरियों मे वसा (35.5 फीसदी) व लौह (34.6 फीसदी) भी अपर्याप्तता देखी गयी। लौह पदार्थो की पर्याप्तता केवल 20.3 प्रतिशत किशोरियो मे पायी गयी।

14.7 प्रतिशत किशोरियों मे सभी पोषक तत्त्वों की अपर्याप्तता पायी गयी।

यह अपर्याप्तता शहरी किशोरियो की तुलना मे ग्रामीण व मलिन बस्ती की किशोरियों में अधिक थी।

27.7 फीसदी किशोरियों मे 6 पोषक तत्वों की अपर्याप्तता पायी गयी। 28.5, 6.3, व 1.2 फीसदी किशोरियों क्रमशः पांच, चार, तीन, दो व एक पोषक पदार्थों की अपर्याप्तता से पीड़ित पायी गयीं।

पोषक पदार्थों को ग्रहण करने के आकड़ों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि किशोरियो के आहार में वसा के अतिरिक्त सभी पोषक पदार्थों की अपर्याप्तता उल्लेखनीय स्तर तक है।

ऊर्जा आवश्यकता और पोषक पदार्थों की अपर्याप्तता का यह अन्तर प्रोटीन, कैल्शियम और विटमिन ए के मामले मे खासतौर पर पाया गया। यह निष्कर्ष आई सी डी सी के पूर्व अध्ययनों खाते हैं जहाँ कैलारी अपर्याप्तता का स्तर 36 34 और 26 फिसदी किशोरियो मे पाया गया।

यह अपर्याप्तता मुख्यताः पोशण मे कमी के कारण ही थी। पोषक तत्वो की यह कभी 2001 की योजना आयोग की सरकारी रिपोर्ट 2000 के अध्ययन के समान ही है।

महिलाओं स्वास्थ्य से सम्बंधित एक महत्वपूर्ण पोषक पदार्थ, आयरन की भोजन में अपर्याप्तता इस संदर्भ मे भी महत्वपूर्ण है कि यह उनके मातृत्व सम्बन्धी स्वास्थ्य को गंभीर रूप से प्रभावित करती है। खान पान के मामले मे गलत चयन या अस्वास्थ्य कर पंसद भी पोषक पदार्थो की अपर्याप्तता का एक प्रमुख कारण है।

इसके अतिरिक्त ग्रमिण व मालिन बस्ती मे रहने वाली किशोरियों आर्थिक कठिनाईयो और सामाजिक सांस्कृतिक व धार्मिक पूर्वाग्रहो के चलतें भेदभाव का शिकार होती है।

सारणी 1. किशोरियों द्वारा ग्रहण पोषक पदार्थो की मात्रा।

आयु (वर्ष मे)	प्रोटीन (ग्रामं)	वसा (ग्राम)	लौह (मिली ग्राम)	कैल्शियम (मिल ग्रामं)	विटामिनन ए (μ ग्राम)
10	28.8±7.8	18.8±10.2	17.1±5.3	268.0±147.8	214.4±107.3
11	28.9±9.5	19.9±7.9	19.6±15.1	277.1±135.8	219.5±163.5
12	29.7±8.4	18.9±10.0	19.5±6.1	282.1±114.1	254.5±142.5
13	31.0±9.6	22.4±9.9	19.9±6.3	324.0±116.5	263.2±150.5
14	34.2±8.7	25.3±10.4	22.4±6.1	325.1±127.0	236.9±101.0
15	32.1±8.3	22.3±10.5	21.1±6.9	294.2±130.0	221.6±91.7
16	31.7±10.0	21.4±8.4	20.4±5.2	293.1±107.3	200.9±76.7
17	32.9±10.3	23.5±11.2	21.1±7.1	308.1±129.8	229.6±77.1
18	30.1±9.5	18.8±6.7	19.9±5.8	258.6±63.2	218.6±74.8
19	28.9±6.8	17.2±5.4	34.4±49.6	258.3±59.6	361.8±169.8

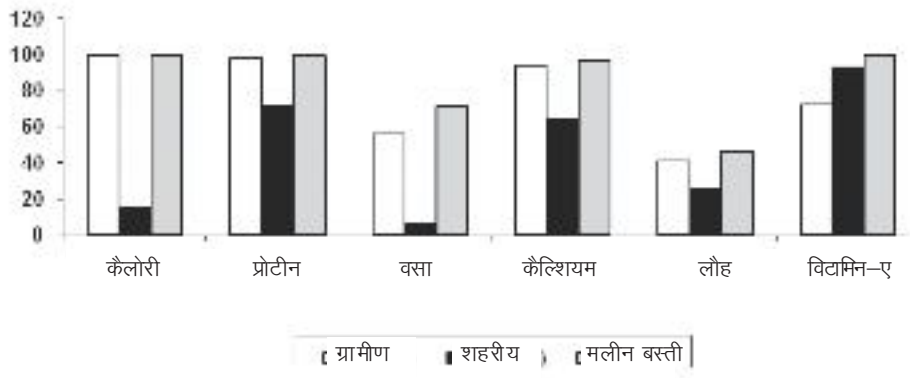

चित्र 1. ग्रामीण शहरी व मलिन बस्ती की किशोरियों में ऊर्जा आवश्यकता तथा पोषण पर्याप्तता अनुपात के आधार पर अपर्याप्त का विवरण।

सारणी 2. ग्रामीण भाहरी व मलिन बस्ती की किशोरियों में उर्जा आवश्यकता तथा पोषण पर्याप्तता अनुपात का वितरण।

पेषक तत्त्वों की पर्याप्तता का अनुपात*	ग्रामीण (%)	शहारीय (%)	मलीन बस्ती (%)	कुल (%)
कैलोरी				
अपर्याप्त	98.70	15.10	99.30	87.40
अत्यधिक पर्याप्त	1.30	24.90	0.70	12.60
पर्याप्त	0.00	0.00	0.00	0.00
प्रोटीन				
अपर्याप्त	98.00	70.90	98.70	85.00
अत्यधिक पर्याप्त	2.00	28.40	1.30	4.70
पर्याप्त	0.00	0.70	0.00	0.30
वसा				
अपर्याप्त	55.60	6.30	70.70	35.50
अत्यधिक पर्याप्त	29.80	15.10	23.30	31.00
पर्याप्त	14.60	78.60	6.00	43.50
कैल्शियम				
अपर्याप्त	93.40	64.20	96.00	79.90
अत्यधिक पर्याप्त	6.00	26.00	4.00	15.20
पर्याप्त	0.70	9.80	0.00	4.90
लौह				
अपर्याप्त	41.10	25.30	46.00	34.60
अत्यधिक पर्याप्त	41.10	51.20	37.30	45.10
पर्याप्त	17.90	23.50	16.70	20.30
विटामिन–ए				
अपर्याप्त	72.20	92.60	99.30	89.10
अत्यधिक पर्याप्त	20.50	6.70	0.70	8.70
अत्यधिक पर्याप्त	7.30	0.70	0.00	2.20

सारणी 3. तीनों समूहों में पोषक पदार्थों की अपर्याप्तता।

अपर्याप्ता	ग्रामीण		शहरीय		मलीन बस्ती		योग्य	
	n	%	n	%	n	%	n	%
1 पोषक तत्त्व के संदर्भ में	0	0.00	7	2.50	0	0.00	7	1.20
2 पोषक तत्त्व के संदर्भ में	2	1.30	35	12.30	0	0.00	37	6.30
3 पोषक तत्त्व के संदर्भ में	2	1.30	38	13.30	0	0.00	40	6.80
4 पोषक तत्त्व के संदर्भ में	17	11.30	70	24.60	6	4.00	93	15.90
5 पोषक तत्त्व के संदर्भ में	50	33.10	86	30.20	28	18.70	164	28.00
6 पोषक तत्त्व के संदर्भ में	51	33.80	41	14.40	67	44.70	159	27.10
7 पोषक तत्त्व के संदर्भ में	29	19.20	8	2.80	49	32.70	86	14.70

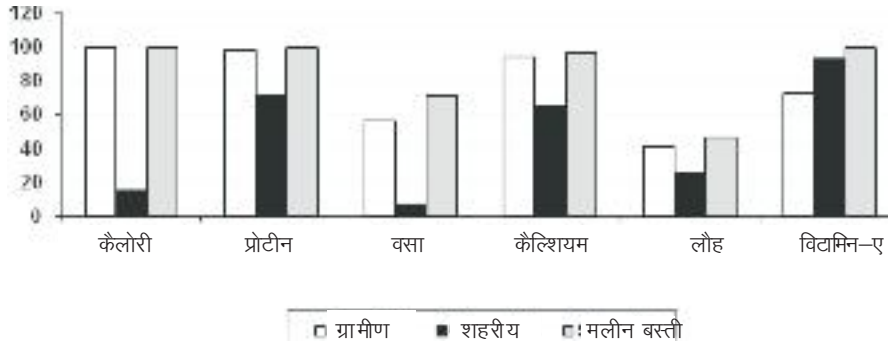

चित्र 2. तीनों समूहों में पोषक पदार्थों की अपर्याप्तता का विवरण।

सारणी 4. पोषक पदार्थ पर्याप्तता अनुपात, दुबलेपन और नाटेपन में सम्बन्ध।

	m/n, %	m/n, %
कैलोरी		
अपर्याप्त	166/512, 32.4%	201/512, 39.3%
अत्यधिक पर्याप्त	26/74, 35.1%	22/74, 29.7%
पर्याप्त	-	-
प्रोटीन		
अपर्याप्त	156/498, 31.3%	201/498, 40.4%
अत्यधिक पर्याप्त	30/86, 34.9%	20/86, 23.3%
पर्याप्त	2/2, 100%	2/2, 100%
वसा		
अपर्याप्त	63/208, 30.3%	111/208, 53.4%
अत्यधिक पर्याप्त	103/123, 83.7%	46/123, 37.4%
पर्याप्त	22/255, 8.6%	66/255, 25.9%
कैल्शियम		
अपर्याप्त	147/468, 31.4%	195/468, 41.7%
अत्यधिक पर्याप्त	30/89, 33.7%	19/89, 21.3%
पर्याप्त	11/29, 37.9%	9/29, 31.0%
लौह		
अपर्याप्त	78/203, 38.42%	94/203, 46.3%
अत्यधिक पर्याप्त	69/264, 26.1%	96/264, 36.4%
पर्याप्त	41/119, 34.5%	33/119, 27.7%
विटामिन–ए		
अपर्याप्त	151/522, 28.9%	196/522, 37.4%
अत्यधिक पर्याप्त	26/51, 50.9%	19/51, 37.3%
पर्याप्त	11/13, 84.6%	8/13, 61.5%

सारणी 5. लौह पदार्थों के ग्रहण करने व रक्ताल्पता में सम्बन्ध।

तत्त्व लौह/हेतु पोषक पर्याप्ता अनुपात	ग्रामीण	शहरी	मलीन बस्ती	कुल (%)
	m/n,%	**m/n,%**	**m/n,%**	**m/n,%**
अपर्याप्त	62/62, 100	56/72, 77.8	69/69, 100	187/203, 92.1
अत्यधिक पर्याप्त	62/62, 100	84/146, 57.7	55/56,98.2	202/264, 76.5
पर्याप्त	27/27, 100	48/67, 71.6	25/25, 100	100/119, 84.0
	151/151, 100	188/285, 65.9	149/150, 99.3	489/586, 83.4

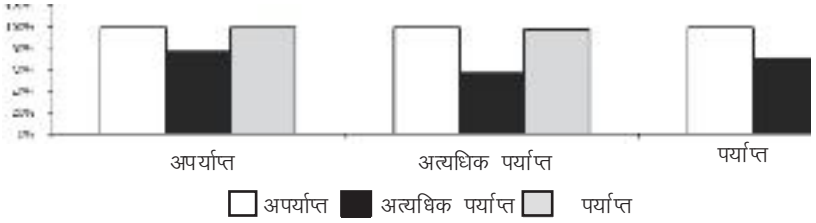

चित्र 3. लौह पदार्थों के ग्रहण करने व रक्ताल्पता में सम्बन्ध।

संदर्भ

1. Agarwal KN, Gomber S, Bisht H, Som M. Anaemia prophylaxis in adolescent school girls by weekly or daily iron-folate supplementation. Indian Pediatr 2003; 40: 296-301.
2. Basu Sabita, Basu Srikanta, Hazarika Ranjita and Parmar Veena Prevalence of Anemia among School Going Adolescents of Chandigarh INDIAN PEDIATRICS 2005; 42: 593-597.
3. Greiner T, Brolin L, Madhavi M, Puri A, Paulraj N, Gupta A. Reaching out to children in poverty: the integrated child development services in Tamil Nadu, India. Sida evaluation, Department of Democracy and Social Development, 2000; 40-41, 125-7.
4. Indian Planning Commission Report of the working group on adolescents for the Tenth Five-Year Plan Government of India, Planning Commission, 2001; 1-3.
5. Malhotra Anita and Passi Santosh Jain Diet quality and nutritional status of rural adolescent girl beneficiaries of ICDS in north India Asia Pac J Clin Nutr 2007;16 (Suppl 1):8-16 8.
6. Senderowitz J. Adolescent health: reassessing the passage to adulthood. World Bank Discussion Paper No. 272, Washington, D.C: World Bank, 1995.
7. Tanner JM. Foetus into man: Physical growth from conception to maturity. New York: Open Book Publishing Limited, 1978; 22-36.
8. Thame M, Wilks RJ, Macfarlane-Anderson N, Bennett FI, Forrester TE Relationship between maternal nutritional status and infant's weight and body proportions at birth Eur J Clin Nutr 1997; 51:134-8.
9. WHO. Women of South East Asia – a health profile. Geneva: World Health Organization, 2000; 105-8.
10. World Health Organization. Physical status: The use and interpretation of anthropometry. WHO technical report series; 854. Geneva: WHO, 1995.

उंगली के निशान पर आधारित जीवसांख्यिकी (बॉयोमैट्रिक) सुरक्षा तंत्र

नीरज कुमार सिंह
संत लौंगोवाल अभियांत्रिकी एवं प्रौद्योगिकी संस्थान, लौंगोवाल, संगरूर, पंजाब

परिचय

अंतरिक्ष की व्यापकता मनुष्य की कल्पना शक्ति से परे है। पृथ्वी इसका एक बहुत ही छोटा भाग है, परन्तु 7 अरब की मानव जनसंख्या एवं असंख्य जीव–जन्तुओं, वनस्पतियों के साथ यह बहुत ही जटिल तंत्र का निर्माण करती है। मानव जाति की बढती जरूरतों के कारण आज के समाज में सूचना–प्रौद्योगिकी का तेजी से बढ़ता चलन एवं सूचना और नेटवर्क सुरक्षा की बढ़ती आवश्यकता कुशल और सटीक व्यक्तिगत पहचान प्रणालियों की जरूरत पर बल देते हैं। बॉयोमेट्रिक तंत्र (Biometric System) उपभोक्ता पहचान (User Identification) एवं नेटवर्क की सुरक्षा (Network Security) से जुड़े बहुत सारे समस्याओं का एक समाधान है। यह एक व्यक्ति की भौतिक, रासायनिक या व्यवहारिक विशेषताओं के आधार पर उसकी पहचान स्थापित करने का विज्ञान है। इस प्रकार एक बॉयोमेट्रिक प्रणाली व्यक्ति के अद्वितीय लक्ष्णों या विशेषताओं के आधार पर उसे एक स्वचालित पहचान प्रदान करता है। जानबूझकर अथवा अनजाने में हो रहे पासवर्ड का दुरुपयोग वर्तमान समय की सुरक्षा प्रणाली में एक बहुत बड़ी कमी है। उपलब्ध सभी बॉयोमेट्रिक तकनीकों में, उंगलियों के निशान (Fingerprint) पर आधारित सत्यापन प्रणाली ने उंगलियों के निशान के लम्बे इतिहास और फोरेंसिक में अपने व्यापक उपयोग की वजह से सबसे ज्यादा आकर्षण (Attention) प्राप्त किया है।

बॉयोमेट्रिक पहचान प्रणाली

विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की वह शाखा जिसमें जैविक आंकड़ों एवं तथ्यों की माप और विश्लेषण के आधार पर इंसानों की पहचान को निश्चित किया जाता है बायोमेट्रिक्स कहलाती है। यह अंग्रेज़ी शब्द बायोमेट्रिक्स दो यूनानी भाब्दों बायोस (जीवन) और मेट्रोन (मापन) से मिलकर बना है। नेटवर्किंग, संचार प्रौद्योगिकी में आई तेजी से किसी व्यक्ति की पहचान की जांच पड़ताल करने के विश्वसनीय तरीकों की आवश्यकता बढ़ गई है। पहले भी व्यक्तियों की पहचान उनके चित्र, हस्ताक्षर, हाथ के अंगूठे और अंगुलियों के निशानों से की जाती रही है, किन्तु समय के साथ इनमें हेरा–फेरी होने लगी। इसे देखते हुए वैज्ञानिकों ने जैविक विधि से इस समस्या का समाधान करने का तरीका खोजा है जिसे बायोमेट्रिक्स कहते हैं।

जैसाकि हम सभी जानते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति विशेष में कुछ लक्षण ऐसे होते हैं जो उसे अन्य इंसानों से अलग करते हैं। यही लक्षण हैं जो व्यक्ति विशेष की सटीक पहचान में सहायक होते हैं। इंसानों के इन्ही लक्षणों के नमूने बायोमेट्रिक नमूने कहलाते है। इन बायोमेट्रिक नमूनों को कम्यूटर में एक विशेष डेटाबेस तैयार कर स्टोर कर लिया जाता है तथा समय आने पर एक विशेष सॉफ्टवेयर के माध्यम से व्यक्ति के नमूनों को लेकर डेटाबेस में स्टोर नमूनों से तुलना करने के बाद

सही व्यक्ति की पहचान कर ली जाती है। जब हम किसी व्यक्ति के बायोमेट्रिक नमूने (फिंगर प्रिंट, आयरिस) एक इलैक्ट्रॉनिक उपकरण (फिंगर प्रिंट स्केनर, आयरिस स्केनर) की मदद से कम्प्यूटर में स्टोर करते है तो इस प्रक्रिया के दौरान सॉफ्टवेयर इन नमूनों का विशेष कोड/स्ट्रक्चर तैयार कर लेता है जो कि यूनिक होता है तथा दूसरी बार जब तुलना के लिए पुनः फिंगर प्रिंट/आयरिस नमूने लिए जाते है तो सोफ्टवेयर पुनः वही कोड/स्ट्रक्चर तैयार कर डाटाबेस में स्टोर उस व्यक्ति के कोड/स्ट्रक्चर से तुलना कर यह संदेश दे देता है कि सम्बंधित व्यक्ति कौन है।

बायोमेट्रिक्स प्रणाली को अत्यधिक विश्वसनीय माना गया है। इसके कई कारण हैं, जैसे प्रत्येक व्यक्ति में पाई जाने वाली बायोमेट्रिक्स विशिष्ट होती है। बायोमेट्रिक लक्षणों को न तो भुलाया जा सकता है और न ही इनमें फेरबदल किया जा सकता है। यदि किसी दुर्घटनावश अंग विकृत हो जाए, तभी इसमें बदलाव संभव है, अन्यथा यह लक्षण व्यक्ति में स्थायी प्रकृति के होते हैं। पहचान बनाये रखने के लिए एकत्रित बायोमेट्रिक आंकड़ों को पहले एन्क्रिप्ट किया जाता है, ताकि उसका क्लोन न बनाया जा सके। इसके अलावा इस तकनीक को पासवर्ड एवं कार्ड के साथ मिलाकर प्रयुक्त किया जा सकता है। इस प्रकार बायोमेट्रिक प्रणाली की विश्वसनीयता और भी बढ़ जाती है। मानव गुणधर्मों को बायोमेट्रिक्स में निम्न पैरामीटरों के रूप में प्रयोग किया जा सकता है –

- सार्वभौमिकता – ये गुणधर्म प्रत्येक व्यक्ति में उपलब्ध होने चाहियें।
- अद्वितीयता – कितनी सटीकता से ये बॉयोमेट्रिक भिन्न–2 व्यक्तियों को अलग करते हैं।
- स्थायित्व – कितनी सटीकता से बॉयोमेट्रिक आयु वृधि और भविश्य में होने वाले अन्य परिवर्तनों से अप्रभावित रहता है।
- प्रदर्शन – सटीकता, गति और प्रयुक्त प्रौद्योगिकी की मजबूती।
- स्वीकार्यता – प्रौद्योगिकी वैश्विक स्तर पर स्वीकार्य हो।

विशेष लक्षण (Feature)

इंसान के वे खास लक्षण जो उसे किसी दूसरे व्यक्ति से अलग पहचान देते हैं। इनमें प्राकृतिक, शारीरिक, व्यवहारिक और आनुवंशिक लक्षण भाामिल होते हैं। इन लक्षणों को मुख्यतः दो गुणधर्मो के आधार पर वर्गीकृत या विभाजित किया जाता है :

1. **मनोवैज्ञानिक (फिजियोलोजिकल) लक्षण** : ये लक्षण मुख्यतः व्यक्ति के शरीर के अंगों की बनावट से सम्बंधित होते हैं। जैसकि उसकी उंगलियों के निशान (फिंगर प्रिंट), अंगूठे के निशान, आयरिस यानि आँखों की पुतली, चेहरे की बनावट, डीएनए इत्यादि कुछ बायोमेट्रिक लक्षण हैं जो व्यक्ति विशेष की पहचान में सहायक होते हैं।
2. **व्यवहारिक (बिहेवियरल) लक्षण** : इस वर्गीकरण में व्यक्ति के व्यवहार को आधार माना जाता है। इसका मापन व्यक्ति के हस्ताक्षर, उसकी आवाज, बातचीत का तरीका, चलने का ढंग आदि के आधार पर करते हैं। कुछ शोधकर्ताओं ने बॉयोमेट्रिक्स के इस वर्ग के लिए बिहेवियोमेट्रिक्स शब्द गढ़ा है।
3. **रासायनिक लक्षण** : इस वर्गीकरण में व्यक्ति के शरीर की गंध, पसीना की रासायनिक संरचना आदि का प्रयोग किया जाता है।

इन बायोमेट्रिक लक्षणों में सबसे ज़्यादा सफल, सरल और सटीक परिणाम देने वाले लक्षण हैं आयरिस तथा फिंगर प्रिंट। यही वजह है कि इंसानों के इन दो लक्षणों को आधार बनाकर व्यापक रूप से इसके इस्तेमाल के लिए विश्व स्तर पर कई प्रयोग किये जा रहे हैं जिनके सकारात्मक परिणाम भी प्राप्त हो रहे हैं।

विभिन्न बॉयोमेट्रिक प्रौद्योगिकियों को दो अन्य आधारों पर भी विभाजित किया जा सकता है, जो इस प्रकार हैं –

1. **स्पर्श पर आधारित बॉयोमेट्रिक प्रौद्योगिकियाँ** (Contact Based Biometric Technologies)
   - उंगलियों के चिह्न
   - अंगूठे के निशान
   - हस्ताक्षर
2. **बिना स्पर्श की बॉयोमेट्रिक प्रौद्योगिकियाँ** (Contactless Biometric Technologies)
   - आयरिस यानि आँखों की पुतली का स्कैन,
   - दृष्टिपटल स्कैन
   - चेहरे की बनावट
   - शरीर की गंध
   - आवाज
   - चलने का ढंग

विभिन्न बायोमेट्रिक तकनीकों की तुलना

बायोमेट्रिक लक्षण	सार्वभौमिकता (Universality)	अद्वितीयता (Uniqueness)	स्थायित्व (Permanence)	संकलन (Collectability)	प्रदर्शन (Performance)	स्वीकार्यता (Acceptability)	चकमा (Circumvention)
चेहरे की बनावट (Face)	उच्च	निम्न	मध्यम	उच्च	निम्न	उच्च	निम्न
उंगलियों की छाप (Fingerprint)	मध्यम	उच्च	उच्च	मध्यम	उच्च	मध्यम	उच्च
हस्त ज्यामिति (Hand Geometry)	मध्यम	मध्यम	मध्यम	उच्च	मध्यम	मध्यम	मध्यम
आँखों की पुतली (Iris)	उच्च	उच्च	उच्च	मध्यम	उच्च	निम्न	उच्च
दृष्टिपटल अवलोकन (Retinal scan)	उच्च	उच्च	मध्यम	निम्न	उच्च	निम्न	उच्च
हस्ताक्षर (Signature)	निम्न	निम्न	निम्न	उच्च	निम्न	उच्च	निम्न
आवाज़ ताप आलेख (Voice)	मध्यम	निम्न	निम्न	मध्यम	निम्न	उच्च	निम्न
Thermogram	उच्च	उच्च	निम्न	उच्च	मध्यम	उच्च	उच्च

बायोमेट्रिक्स तकनीक की कार्यप्रणाली

बायोमेट्रिक्स प्रणाली में सबसे पहले एक समूह विशेष का नामांकन (Enrollment) किया जाता है और इस प्रकार एक डाटाबेस तैयार कर लिया जाता है। यह समूह विशेष कोई भी हो सकता है, चाहे वह स्थानीय स्तर पर हो या फिर राष्ट्रीय या अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर या फिर किसी विभाग अथवा किसी कंपनी विशेष के कर्मचारी। किसी भी स्तर के उस समूह विशेष के बायोमेट्रिक नमूने

(फिंगर प्रिंट, आयरिस, या फिर दोनों) एक सॉफ्टवेयर तथा एक इलैक्ट्रॉनिक उपकरण (फिंगर प्रिंट स्केनर, आयरिस स्केनर) के माध्यम से डेटाबेस में संचित (Store) कर लिए जाते हैं। फिर इन नमूनों के साथ सम्बंधित व्यक्ति की कुछ जानकारियाँ जैसे नाम, पता, लाइसेंस नंबर, फोटोग्राफ इत्यादि भी संचित कर ली जाती हैं तथा व्यक्ति को एक पहचान पत्र (आई कार्ड) भी दे दिया जाता है। फिर समय आने पर पुनः इस पहचान पत्र के साथ व्यक्ति का नमूना लेकर डेटाबेस में संचित नमूने से तुलना कर यह सुनिश्चित किया जाता है कि दावा करने वाला व्यक्ति वही है कि नहीं जिसके नाम अथवा पते का पहचान पत्र वह लेकर आया है।

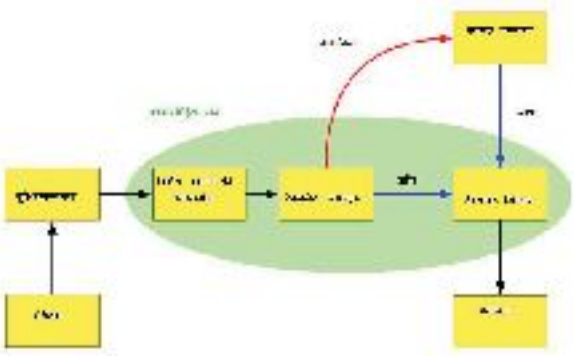

एक बॉयोमेट्रिक प्रणाली निम्नलिखित दो तरीकों से किसी व्यक्ति विशेष की पहचान सुनिश्चित कर सकती है :

1. **सत्यापन** (Verification) : जब एक से एक की तुलना अथवा पहचान करनी हो तो सत्यापन किया जाता है। अर्थात वह व्यक्ति जो दावा कर रहा है उसके बायोमेट्रिक्स नमूने (फिंगर प्रिंट या फिर आयरिस) को लेकर पहले से ही डाटाबेस में संग्रहीत उसी व्यक्ति के नाम और कोड के बायोमेट्रिक्स नमूनों (फिंगर प्रिंट या आयरिस) से मिलान करके यह सत्यापित किया जाता है कि वह व्यक्ति विशेष जो वह होने का दावा कर रहा है, वह ठीक है या नहीं। स्मार्ट कार्ड प्रयोक्ता का नाम अथवा परिचय संख्या के साथ संयोजन करके भी ऐसा किया जा सकता है।
2. **पहचान** (Identification) : जब एक से अनेक की तुलना करनी हो तो पहचान किया जाता है। पहचान मुख्यतः संदिग्धों की पहचान के लिए किया जाता है। इसमें एक अज्ञात व्यक्ति की पहचान करने के प्रयास में एक बॉयोमेट्रिक डाटाबेस के साथ कई अभिगृहीत बॉयोमेट्रिक नमूनों की तुलना की जाती है। व्यक्ति की पहचान करने में सफलता तभी प्राप्त होती है जब बॉयोमेट्रिक नमूने की तुलना डाटाबेस में संचित टेम्पलेट के साथ पूर्व निर्धारित समय सीमा के भीतर किया जाये।

वर्तमान में व्यक्ति की जांच पड़ताल हेतु दो विधियों का प्रयोग किया जाता है:

1. **धारक आधारित** : ये व्यक्ति के पास उपलब्ध सुरक्षा कार्ड, क्रेडिट कार्ड पर आधारित हा. `ता है। इनमें आसानी से फेरबदल किया जा सकता है और इसी कारण क्रेडिट कार्ड के दुरूपयोग की घटनाएं प्रायः सुनायी देती हैं।
2. **ज्ञान आधारित** : फिशिंग एवं हैकिंग में प्रौद्योगिकी के बढ़ते प्रयोग से कोई कूट भाब्द (Password) अब उतना सुरक्षित नहीं रह गया, जितना पहले हुआ करता था। साथ ही लंबे समय तक प्रयोग न करने पर पासवर्ड भूल जाने की भी समस्या रहती है। ऐसे में व्यक्ति की इन्हीं कमजोरियों का निदान करने में बायोमेट्रिक्स सहायक है। बायोमेट्रिक्स में शरीर और उसके अंग से संबंधित लक्षणों को सुरक्षा का आधार बनाया जाता है।

लगभग सभी बोयामेट्रिक प्रणालियों में मुख्यतः तीन चरण होते हैं –

- सबसे पहले बायोमेट्रिक सिस्टम में नामांकन किया जाता है।

- दूसरे चरण में इन चीजों को सहेजने का कार्य होता है।
- इसके बाद तुलना की जाती है।

वर्तमान में बात करने के तरीके, हाथ की नसों, रैटिना, डीएनए के आधार पर भी बायोमेट्रिक कार्ड बनाए जाते हैं। पहली बायोमेट्रिक्स तकनीक का इस्तेमाल वर्श 2004 में एथेंस (ग्रीस) में हुए ओलम्पिक गेम्स के दौरान किया गया था।

बॉयोमेट्रिक्स के रूप में अंगुलियों के चिह्न

प्रश्न यह उठता है की इतने सारे बायोमेट्रिक पैरामीटर उपलब्ध होने के बौजुद क्यूँ हम अंगुलियों के चिह्न को किसी व्यक्ति की पहचान होने के लिए प्रयोग कर रहे हैं ? इसका उतर है कि ये सार्वभौमिक, अद्वितीय एवं स्थायी होते हैं। इन्हे आसानी से प्राप्त कर संचयित किया जा सकता है, इनसे छेर–छार की संभावना कम है, विश्व स्तर पर इन्हें मान्यता प्राप्त है साथ ही बायोमेट्रिक प्रणाली के तौर पर इनका प्रदर्शन बहुत ही अच्छा है।

अंगुलि चिह्न

मनुष्य के हाथों तथा पैरों के तलवों में गहरी महीन उभरी रेखाएँ दृष्टिगत होती हैं। ये हल चलाए खेत की भाँति दिखतीं हैं। वैसे तो वे रेखाएँ इतनी सूक्ष्म होती हैं कि सामान्यतः इनकी ओर ध्यान भी नहीं जाता, किंतु इनके विशेष अध्ययन ने एक विज्ञान को जन्म दिया है जिसे अंगुलि चिह्यन विज्ञान कहते हैं। इस विज्ञान में अंगुलियों के ऊपरी पोरों की उन्नत रेखाओं का विशेष महत्व है। कुछ सामान्य लक्षणों के आधार पर किए गए विश्लेषण के फलस्वरूप इन रेखाओं से बनने वाली आकृतियों को चार भागों में बाटा गया है, ये हैं:

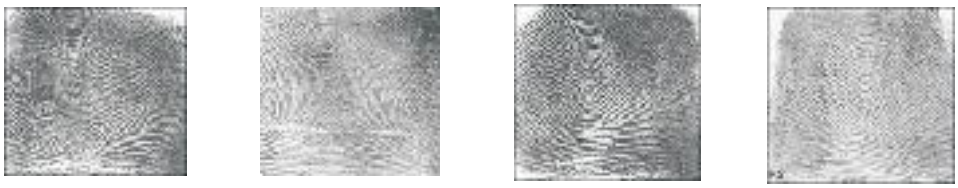

(1) चक्र (Whorl), (2) भांख (Loop), (3) चाप (Arch) तथा (4) मिश्रित (Tented Arch)

1 चक्र (Whorl) 2 भांख (Loop) 3 चाप (Arch) 4 मिश्रित (Tented Arch)

उँगली चिह्न (Fingerprint) एवं इससे संबंधित विज्ञान का इतिहास

" चेहरा झूठ बोल सकता है परन्तु अंगुलि चिह्न नहीं "

ऐसा विश्वास किया जाता है कि उँगली चिह्न विज्ञान का जन्म अत्यंत प्राचीन काल में एशिया में हुआ। भारतीयों ने उपर्युक्त शंख, चक्र तथा चांपों का विचार भविष्य गणना में किया है। दो हजार वर्ष से भी पहले चीन में उँगुली चिह्नों का प्रयोग व्यक्ति की पहचान के लिए होता था। किंतु आधुनिक उँगली चिह्यन विज्ञान का जन्म हम 1823 ई. से मान सकते हैं, जब ब्रेसला (जर्मनी) विश्वविद्यालय के प्राध्यापक श्री परकिंजे ने उँगली रेखाओं के स्थायित्व को स्वीकार किया। उँगली चिह्यन विज्ञान का प्रयोग व्यक्तिगत पहचान के लिए किया जा सकता है, यह विचार सर्वप्रथम सन् 1858 में बंगाल प्रान्त के हुगली जिले के जिलाधिकारी, सर विलियम हर्शेल द्वारा प्रदान किया गया था ।

वर्तमान उँगली चिह्न प्रणाली का प्रारंभ 1858 ई. में इंडियन सिविल सर्विस के सर विलियम हरशेल ने बंगाल के हुगली जिले में किया। बाद में, डॉ. हेनरी फाल्ड्स ने विचार दिया कि अपराध

स्थल पर पाए गए लेटेन्ट प्रिन्ट्स से अपराधियों को खोजा जा सकता है एवं वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि दो उँगली चिह्न एक जैसे नहीं हो सकते। हर्शेल एवं फाल्ड्स के विचारों के आधार पर, 1892 ई. में प्रसिद्ध अंग्रेज वैज्ञानिक सर फ्रांसिस गाल्टन ने उँगली चिह्नों पर अपनी एक पुस्तक प्रकाशित की जिसमें उन्होंने हुगली के सब–रजिस्ट्रार श्री रामगति बंद्योपाध्याय द्वारा दी गई सहायता के लिए कृतज्ञता प्रकट की। उन्होंने उँगली रेखाओं के अद्वितीयता एवं स्थायित्व के मूल आधार को वैज्ञानिक तौर पर स्थापित किया एवं उँगली छापों के वर्गीकरण तथा उनका अभिलेख रखने की एक प्रणाली बनाई जिससे संदिग्ध व्यक्ति की ठीक से पहचान हो सके। किंतु यह प्रणाली कुछ कठिन थी। तब बाद में दक्षिण प्रांत (बंगाल) के पुलिस इंस्पेक्टर जनरल सर एडर्वड रिचर्ड हेनरी ने दो भारतीय अधिकारियों खान बहादुर अजीजुल हक, पुलिस सब–इंस्पेक्टर एवं राय बहादुर हेमचन्द्र बोस की मदद से उक्त प्रणाली में सुधार करके उँगली चिह्न के वर्गीकरण की सरल प्रणाली निर्धारित की। इस प्रणाली की अचूकता देखकर भारत सरकार ने 1897 ई. में विश्व का प्रथम उँगली–छाप–कार्यालय कलकत्ता की राइटर्स बिल्डिंग में स्थापित किया।

उँगली चिह्न द्वारा पहचान दो सिद्धांतों पर आधारित है, एक तो यह कि दो व्यक्तियों की अंगुलियों के निशान कभी एक से नहीं हो सकते, और दूसरा यह जीवन भर ही नहीं अपितु जीवनोपरांत भी नहीं बदलते। अतः किसी भी विचारणीय अंगुली चिह्न को किसी व्यक्ति की अंगुली चिह्न से तुलना करके यह निश्चित किया जा सकता है कि विचारणीय अंगुली चिह्न उसकी है या नहीं।

परियोजना डिजाइन (System Design) : पूरी परियोजना को चार भागों में विभाजित किया गया है –

1. छवि अधिग्रहण (Image Acquisition)
2. पूर्व प्रसंस्करण (Pre&Processing)
3. टेम्पलेट मिलान (Template Matching) और
4. सत्यापन (Verification)

फिंगरप्रिंट स्कैनर प्रणाली दो बुनियादी कार्य करता है–पहला व्यक्ति की उंगली की छवि लेता है, और दूसरा यह निर्धारित करता है की इस प्राप्त छवि की लकीरों (Ridge) और घाटियों (Valley) का प्रतिमान (Pattern) पूर्व स्कैन छवियों में की लकीरों और घाटियों के प्रतिमान से मेल खाता है कि नहीं।

इस प्रणाली में डिजिटल सिग्नल प्रोसेसिंग (Digital Signal Processing) जटिल डीएसपी कार्यों का सम्पादन करता है जैसे कि फिल्टर (Filters), रूपांतरण (Transforms), विशेष लक्षणों का निश्कर्शण (Feature Extraction), मिलान प्रक्रिया (Matching Operations) एवं अन्य।

किसी व्यक्ति की उंगली की छवि को पाने के अनेक तरीके हैं परन्तु हमने इस परियोजना में यह कार्य विभिन्न प्रकार के सेंसरों (Fingerprint Sensors) के उपयोग द्वारा किया है। यहाँ समान्यतः निम्न प्रकार के सेंसरों का प्रयोग किया जाता है –

- ऑप्टिकल संवेदक (Optical sensors)
- धारिता संवेदक (Capacitive sensors)
- अल्ट्रा ध्वनि संवेदक (Ultra&sound sensors)
- दबाव संवेदक (Pressure sensors)

परियोजना चित्रण

- तापीय संवेदक (Thermal sensors)

इस परियोजना में छवि अधिग्रहण के लिये हमने ऑप्टिकल संवेदक का उपयोग किया है। स्कैनर के ग्लास प्लेट पर उंगली रखते ही स्कैनिंग की प्रक्रिया शुरू हो जाती है और सीसीडी कैमरा उसकी तस्वीर ले लेता है, इस प्रक्रिया में सबसे पहले लेजर (Laser) या LED की सहायता से उंगलियों के निशान पर प्रकाश डाला जाता है फिर सीसीडी (CCD) या सस्ते CMOS संवेदक का उपयोग कर छवि को प्राप्त किया जाता है। समान्यतः संवेदक के साथ एनालॉग–डिजिटल कनवर्टर मॉड्यूल भी जुड़ा होता है जो एनालॉग जानकारी को डिजिटल डेटा स्ट्रीम में परिवर्तित करता है। Resolution, dynamic range and pixel density छवि की गुणवत्ता में योगदान देने वाले प्रमुख घटक हैं साथ ही ये सेंसर की परिशुद्धता (Accuracy) को भी प्रभावित करते हैं। संगृहीत डेटा से प्रिंट की तुलना करने से पहले, स्कैनर प्रोसेसर यह सुनिश्चित करता की सीसीडी ने जो छवि अभिगृहीत की है वो अच्छी गुणवत्ता वाला है। एक बार जब छवि प्राप्त कर ली जाती है तब डिजिटल जानकारी को एक डिजिटल सिग्नल प्रोसेसर में मैच उत्पन्न करने के लिये डाल दिया जाता है।

मिलान प्रक्रिया में पहला कदम प्राप्त निशानों से छोटे–छोटे टेम्पलेट तैयार करना होता है क्योंकि कोई फिंगर प्रिंट आधारित प्रणाली पूर्ण निशान को पहचान के लिए उपयोग नही करती। उसके बाद DSPs प्रत्येक निशान से विशिष्ट लक्ष्णों वाली आकृतियों (Features) एवं पैटर्न को निकालने और उनसे एक अद्वितीय डिजिटल कोड बनाने के लिए एल्गोरिदम (Algorithms) का उपयोग करते हैं। इस प्रक्रिया के दूसरे चरण में स्कैन छवि से उत्पन्न कोड को पहले से परिभाषित डेटाबेस की संभावित मैचों से तुलना किया जाता है। इस कार्य के लिये यह आवश्यक है कि यह प्रणाली नेटवर्क डेटाबेस (Networked Database) या अनह्रासी स्मृति इकाई (Non and Volatile Memory Unit) जिसमें जानकारी रखी गई है का संपूर्ण रूप से उपयोग करने के लिए स्वतंत्र हो। मैच प्राप्त होते ही व्यक्ति की पहचान हो जाती है।

स्वचालित अंगुलि चिह्न पहचान प्रणाली

इस सुरक्षा प्रणाली की कार्यक्षमता को बढ़ाने के क्रम में इसे मुख्य स्वचालित बनाने पर बल दिया गया है। इसमें इमेज प्रोसेसिंग और पैटर्न रेकोगनिशन तकनीक का प्रयोग करके एनकोड, स्टोर और अंगुली चिह्न मिलान जिसमें चान्स प्रिन्ट भी शामिल है, का कार्य किया गया है। साथ ही अंगुली चिह्न मिलान के लिए पैटर्न क्लास, माइनूशिया लोकेशन, डायरेक्शन, नेबरिंग सूचना, रिज् काउन्ट्स एवं डिस्टेन्स डेनसिटि, टाइप, प्रिन्ट बैकग्राऊन्ड /फोरग्राउन्ड सूचना आदि उपयोग किया गया है।

इसके स्वचालन भाग के विकास में LabVIEW सॉफ्टवेयर प्रयोग किया गया है। अंत में, "निर्णायक स्तर" पर ज्यामितीय मिलान फलन (Geometric Matching Function) से मिलान स्कोर को उत्पन्न कर अंतिम निर्णय के लिए उपयोग किया गया है, यानि व्यक्तिगत पहचान की पुष्टि करने में इस्तेमाल किया गया है।

उपयोग

रेखाओं का ध्यान से निरीक्षण करने पर उनमें निजी विशेषताएँ रेखांतों (एंडिंग) तथा द्विशाखाओं (बाइफ़कैशन) के रूप में दिखाई देता है। यह प्रणाली निम्न तीन कार्यों के लिए विशेष उपयोगी है :

1. विवादग्रस्त लेखों पर की उँगली चिह्नों की तुलना व्यक्ति विशेष की उँगली चिह्नों से करके यह निश्चित करना कि विवादग्रस्त उँगली चिह्न उस व्यक्ति की है या नहीं ;
2. ठीक नाम और पता न बताने वाले अभियुक्त की उँगली के चिह्नों की तुलना दंडित व्यक्तियों की उँगली के चिह्नों से करके यह निश्चित करना कि यह पूर्व–दंडित है अथवा नहीं ;
3. घटनास्थल की विभिन्न वस्तुओं पर अपराधी की उँगली के अंकित चिह्नों की तुलना संदिग्ध व्यक्ति की उँगली के चिह्नों से करके वह निश्चित करना कि अपराध किसने किया है ;
4. नवजात बच्चों की अदला–बदली रोकने के लिए विदेशों के अस्पतालों में प्रारंभ में ही बालकों की पद छाप तथा उनकी माताओं की उँगली के चिह्न ले लिए जाते है;
5. किसी भी नागरिक द्वारा समाज सेवा तथा अपनी रक्षा एवं पहचान के लिए अपनी उँगली चिह्न की सिविल रजिस्ट्री कराकर दुर्घटनाओं या अन्यथा क्षतविक्षत होने या पागल हो जाने की दशा में अपनी तथा खोए हुए बालकों की पहचान सुनिश्चित की जा सकती है;
6. इलैक्ट्रॉनिक ताले (Electronic Door Lock) ;
7. स्मार्ट कार्ड (Smart Cards) ;
8. वाहन प्रज्वलन नियंत्रण प्रणाली (Vehicle Ignition Control Systems); और
9. फिंगरप्रिंट से नियंत्रित किये जाने वाले USB छड़ें (USB Sticks with Fingerprint Controlled Access) एवं अन्य।

निष्कर्ष

इस बॉयोमेट्रिक प्रणाली में छवि अधिग्रहण के लिये हमने ऑप्टिकल संवेदक का उपयोग किया है। इस परियोजना में उंगलियों के निशान की छवि से विशिष्ट लक्ष्णों वाले आकृतियों (Features) को निकालना और पहले से परिभाशित डेटाबेस की जानकारी से तुलना करना भामिल है। इस परियोजना में फिंगरप्रिंट सत्यापन टेम्पलेट स्कोर मिलान विधि (FVTSM) का उपयोग करके किया गया है। इस कार्य का उद्देश्य उँगलियों के निशान का प्रयोग कर किसी व्यक्ति के पहचान की पुष्टि करने के लिए प्रणाली विकसित करना है। इसमें उँगली के एक निशान को संगृहीत टेम्पलेट के रूप में इस्तेमाल किया गया है और अन्य निशानों को पहचान सत्यापन के लिए इस्तेमाल किया गया है।

सन्दर्भः

1. http%@@soni2601kamal-blogspot-com@2009@12@blog&post_08-html
2. http%@@www-livehindustan-com@news@tayaarinews@technology science@67&70&103965-html

3. www-wikipedia-com
4. http%@@www-ti-com@lsds@ti@apps@appshomepage-page
5. Bolle R] Connell J] et al- Guide to Biometrics] Springer] 2003-
6. Jain LC] Intelligent Biometric Techniques in Fingerprint and Face Recognition] CRC Press] 1999
7. Maltoni D] Jain AK] Maio D] Prabhakar S] Handbook of Fingerprint Recognition] Springer] 2004
8. Vacca JR] Biometric Technologies and Verification Systems] Butterworth & Heinenmann] 2007
9. Munir MU] Javed MY(**Fingerprint Matching using Gabor Filters**(2005
10. NTSC Subcommittee on Biometrics] **Fingerprint Recognition**] 2000
11. http%@@www-isc365-com@Biometrics_Security_Vs_Convenience-aspx
12. http%@@www-csse-uwa-edu-au@~pk@Research@MatlabFns
13. http%@@biometrics-cse-msu-edu@fingerprint-html
14. Biometrics Consortium homepage(www-biometrics-org-
15. Chellappa] R-] Wilson] C-] and Sirohey] A- Human and machine recognition of faces% A survey- In Proceedings of the IEEE 83] 5 (1995) 705–740-
16. Daugman] J-G- High confidence visual recognition of persons by a test of statistical independence- IEEE Trans- Pattern Anal- and Machine Intell- 15] 11 (1993)1148–1161-
17. Furui] S- Recent advances in speaker recognition- Pattern Recognition Letters 18 (1997) 859–872-
18. Jain] A-K- Bolle] R- and Pankanti S- (eds-)- Biometrics% Personal Identification in Networked Society- Kluwer] New York] 1999-

भारतीय कृषि में जैव प्रौद्योगिकी

अनुराधा तिर्की एवं सुशीला कुजुर
रविशंकर शुक्ल विश्व विद्यालय, रायपुर, छत्तीसगढ
कमला नेहरू कॉलेज, कोरबा छत्तीसगढ

विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में भारत की अग्रणी भूमिका के बारे में लोगों की आम विचार–धारा यही होगी कि यह एक दिवास्वप्न जैसा है। लेकिन इस बारे में न केवल देश के वैज्ञानिक दावा कर रहे हैं, बल्कि देश–विदेश के चोटी के वैज्ञानिक भी भारत के इस दावे का जोरदार समर्थन कर रहे हैं। इन लोगों का कहना है कि भारत बहुत कम समय में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में नेतृत्व प्रदान कर सकता है और कर रहा है। नई विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी नीति ने सभी क्षेत्रों में चाहे कृषि हो, उद्योग व्यापार, कारोबार या सेवाएँ तथा संचालन हो सब में विज्ञान की समस्या–समाधान देखने पर जोर दिया गया है। राष्ट्रपति डॉ कलाम ने सहस्राब्दी जैव प्रौद्योगिकी सम्मेलन में कहा भी था कि हमारे राष्ट्र की आर्थिक शक्ति को प्रतिस्पर्धात्मकता से ही ताकत मिलेगी और प्रतिस्पर्धात्मकता को ज्ञान की शक्ति सें बल मिलेगा और विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के कारण ही कृषि क्षेत्र में जैव प्रौद्योगिकी से जीन क्रांति का शुरूआत हुआ।

कृषि क्षेत्र में एक और क्रांति के युग में प्रवेश कर चुके हैं यह ''जीन क्रांति'' कहलाती है। जो जैव–प्रौद्योगिकी के विकास से सम्भव हुई है। जैव तकनीक से उगाई गई फसलों को ट्रांसजेनिक फसलें कहा जाता है। ट्रांसजेनिक प्रौद्योगिकी में दूसरी हरित क्रांति लाने की पूरी क्षमता विद्यमान है। वैसे प्रकृति में भी जीन का हस्तांतरण एक पौधे से दूसरे पौधे में होता रहा है। पौधों के प्रजनक परंपरागत तरीकों से, जंगली पौधों से विभिन्न फसलों के संस्करण के रूप में जीन हस्तान्तरण करते रहे हैं। हरित क्रांति की सफलता का कारण भी जीन हस्तांतरण द्वारा हजारों संकर प्रजातियों का उत्पादन ही था। परंपरागत पद्धति में जीन का हस्तांतरण सजातीय प्रजातियों में ही किया जाता है जबकि ट्रांसजेनिक तकनीक के अन्तर्गत यह विजातीय प्रजातियों में होता है, जैसे 1980 में स्विट्जरलैण्ड में पोट्रीकल महोदय द्वारा डैकोडिल पौधे से बीटा कैरोटिन वाले जीन को धान के पौधों में हस्तांतरित किया गया। इसके बाद इस जीन को एशिया की धान की अधिक उपज देने वाली प्रजातियों में डाला गया। गरीब जनता के लिए जो चावल पर आश्रित रहती है आवश्यक है।

भारत में जनसंख्या का दबाव खाद्य, रेशे और ईंधन के लिए बढ़ता जा रहा है। इस दबाव का मुकाबला पौध प्रजनन और इंजीनियरिंग अनुसंधान से किया गया है जिसे आम तौर पर हरित क्रांति कहा जाता है लेकिन हरित क्रांति तकनीक खाद्य, ईंधन आवास और रेशे के लिए बढ़ती चुनौतियों का सामना करने में अब पर्याप्त नहीं रही है। अतः कृषि उत्पादन बढ़ाने के लिए अब नई तकनीकों की आवश्यकता है। जिसमें जैव तकनीकी विविधता के विकास में अद्वितीय है। डी एन ए तकनीक के पुनः संयोजन के उपयोग से ऐसी किस्मों को बनाना सम्भव हो गया है जो कीटों के हमले का सामना करने में सक्षम है। इससे कीटनाशक दवाइयों पर निर्भरता भी कम होगी। बीजों का तेजी से विकास के लिए टिशू कल्चर का विकास बहुत ही महत्वपूर्ण साबित हुआ है। इससे लकड़ी वाले पौधों की प्रजनन प्रक्रिया को भी तेज करना संभव हो गया है जो आम तौर पर प्राकृतिक परिस्थितियों में बहुत धीमी होती है।

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद और कृषि एवं सहकारिता विभाग की ओर से किसानों को जैविक खेती के प्रति जागरूक किया जा रहा है। इसके अलावा विभिन्न कृषि विश्वविद्यालय, कृषि विज्ञान केन्द्रों की ओर से भी गांव–गांव किसानों को जैविक खेती के बारे में प्रशिक्षित किया जा रहा है। एक तरह से यह कृषि की नई क्रांति है। विदेशों की तर्ज पर अब भारत में भी कृषि क्षेत्र में नई क्रांति का सूत्रपात हो गया है। हरित क्रांति के बाद भारत के किसान अब ई–खेती के जरिए नई मिसाल कायम कर रहे हैं। भारत के गावों में यह नया ही नहीं अनोखा प्रयोग है और यह प्रयोग साकार हो सका है हरित क्रांति और संचार क्रांति के एक सूत्र में पिरोने के बाद। इन दोनों क्रांतियों के युग्म के रूप में अब ई–खेती को बढ़ावा देने की भरसक कोशिश की जा रही है। सरकार की ओर से ई–खेती से जुड़े किसानों को समुचित सुविधाएँ वरीयता के आधार पर उपलब्ध कराई जा रही है वहीं विभिन्न कृषि विश्वविद्यालयों के वैज्ञानिक भी भारत में हो रहे नए प्रयोग को लेकर उत्साहित हैं। वे ई–खेती से जुड़े किसानों को लगातार प्रोत्साहित कर रहे हैं। पंजाब में बड़ी संख्या में किसान ई–खेती से जुड़ चुके हैं, जबकि दूसरे राज्यों में भी यह प्रयोग शुरू हो चुका है। यह अलग बात है कि अभी ई–खेती को लेकर जिस तरह से किसानों में उत्साह है, उससे भविष्य की तस्वीर काफी खुशनुमा होने की उम्मीद है।

भारत की अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले कृषि क्षेत्र में हो रहे इस नए प्रयोग को बेहतरीन तरीके से प्रभावी बनाने की दिशा में निरंतर प्रयास हो रहा है। किसानों को सूचनाओं से लैस कर, उनमें खेती के प्रति ललक पैदा करने और जो किसान खेती से जुड़े हैं। उन्हें अधिक लाभ दिलाने की दिशा में ई–खेती बेहद महत्वपूर्ण है। केन्द्र सरकार की ओर से भी मशीनों से की जाने वाली खेती को प्रोत्साहन दिया जा रहा है। लोकसभा में एक सवाल के जवाब में कृषि और खाद्य प्रसंस्करण राज्य मंत्री हरीश रावत ने जानकारी दी कि कृषि मंत्रालय केन्द्रीय क्षेत्र की विभिन्न योजनाओं के जरिये खेती के मशीनीकरण को प्रोत्साहन दे रहा है। इन योजनाओं में कृषि का वृहद् प्रबंध, राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन, राष्ट्रीय कृषि विकास योजना शामिल हैं। इसके अलावा इन योजनाओं से हितधारकों को मशीनीकरण के बारे में जागरूक बनाना और समुचित कृषि मशीनों और उपकरणों की खरीद के लिए किसानों और अन्य लाभार्थियों को वित्तीय सहायता उपलब्ध कराना शामिल है। इसी के तहत कृषि विभाग की ओर से किसानों के लिए ऐसी व्यवस्था बनायी गई है कि वे किसी भी स्थान से फोन करके कृषि संबंधी जानकारी ले सकते हैं। इसके अलावा किसानों को कम्प्यूटर आधारित इंटरनेट के जरिये भी कृषि संबंधी जानकारी उपलब्ध करायी जा रही है।

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद की ओर से बनाई गयी वेबसाइट के जरिये भी किसानों की कृषि से संबंधित सूचनाओं और जानकारियों को एक कोष के रूप में सहेजा गया है। एक औसत के मुताबिक, भारतीय कृषि की वैश्विक उपस्थिति को दर्शाते हुए करीब 166 देशों से प्रतिमाह 2 लाख से ज्यादा लोग इस साइट से जानकारी हासिल करते हैं। कृषि ई–संसाधनों से संबंधित संकाय, राष्ट्रीय कृषि अनुसंधान प्रणाली की 2900 से ज्यादा पत्रिकाओं और 124 पुस्तकालयों की पहुंच के लिए निःशुल्क ऑनलाइन सुविधा प्रदान कर रहा है। इससे इस बात का संकेत मिलता है कि भारत भविष्य में ई–खेती की ओर तेजी से बढ़ रहा है।

सरकार का प्रयास– पंजाब सरकार की ओर से भी किसानों को ई–खेती से जोड़ने की कोशिश की जा रही है। इसके लिए सरकार की ओर से किसान सूचना केन्द्र विकसित किया गया है। इस केन्द्र ने विभिन्न स्थानों पर अपने 200 कियोस्क तैयार किये हैं। सभी कियोस्क को एक सूचना तंत्र से जोड़ा गया है। इन कियोस्कों को कृषि विश्वविद्यालयों से भी संबद्ध किया गया है। ऐसे में कियोस्क संचालक को यदि किसान के सवाल का सही जवाब नहीं मिल पाता है तो वह सीधे विश्वविद्यालय के विशेषज्ञों से संपर्क कराता है और विशेषज्ञ किसानों की समस्या का समाधान कर देते हैं।

जैव तकनीक में अनुसंधान के परिणाम लोगों तक उतनी आसानी से नहीं पहुंच पा रहे हैं जितनी आसानी से हरित क्रांति अपनायी गई थी। जैव तकनीक विशेष रूप से पुनः संयोजक डी.एन.ए. तकनीक के उपयोग से अपेक्षित किस्में तैयार की जा सकती हैं। लेकिन इस तरह से तैयार ट्रांसजेनिक किस्मों का व्यापक रूप से परीक्षण नहीं किया जा सकता है। हालांकि अनुभव के आधार पर भारत में ट्रांसजेनिक किस्मों के परीक्षण के लिए जैव तकनीक विभाग में अनुकूल परिस्थितियाँ विद्यमान हैं। फिर भी लोगों में आम धारणा यह है कि व्यस्तता मानव–स्वास्थ्य और जैव विविधता के लिए पर्याप्त नहीं है।

अतः ऐसी परिस्थिति में ग्रामीण जन को विभिन्न प्रकार से प्रेरित किये जाने की आवश्यकता है जिससे वे अधिक से अधिक जागरूक और गतिशील हो सके। यह कार्य संचार माध्यमों के द्वारा निरन्तर किया जा सकता है। देश के 90 प्रतिशत क्षेत्र में करीब एक अरब लोगों तक रेडियो का प्रसारण होता है। टीवी की पहुंच 80.2 करोड़ परिवारों तक हो चुकी है, टेलीफोन की सुविधा उपलब्ध है, लाखों लोग मोबाइल धारक हैं। विभिन्न भाषाओं में समाचार पत्र एवं पत्रिकाएँ प्रकाशित की जाती हैं। इन्हीं संचार माध्यमों से जैव प्रौद्योगिकी व जैव तकनीकी के बारे में लोगों तक इसकी जानकारी पहुंचायी जानी चाहिए ताकि लोगों के द्वारा ट्रांसजेनिक पौधों को तभी अपनाया जाएगा। अब सामान्य खतरों एवं हानियों, मानव स्वास्थ्य तथा पोषण पर पड़ने वाले प्रभाव तथा पर्यावरण व कृषि की निरंतरता से संबंधित शंकाएँ दूर कर दी जाएंगी।

सदर्भ

1. कुरूक्षेत्र।
2. योजना।
3. समाचार पत्र।

अंतरिक्ष के क्षेत्र में भारत की प्रगति

शशि किरण कुजूर एवं भूमि राज पटेल
शा. ग. न. अग्रवाल स्नातक महाविद्यालय, भाटापारा
शा. स्नातक महाविद्यालय कांकेर, छत्तीसगढ़

भारत में अंतरिक्ष कार्यक्रम की शुरूआत 1962 में मानी जाती है। जब भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान समिति का गठन हुआ। तदुपरान्त 1963 में केरल के तिरूवनंतपुरम के निकट थुम्बा में रॉकेट प्रक्षेपण केन्द्र से अमेरिका से प्राप्त दो चरणों वाले रॉकेट को अंतरिक्ष में छोड़ा गया उसके बाद भारत ने इस क्षेत्र में कभी पीछे मुड़कर नहीं देखा बल्कि आज इनसैट व दूर संवेदी उपग्रहों तथा ए.एस.एल.वी. पी. एस.एल.वी. व जी.एस.एल.वी. से होता हुआ तकनीकी विकास के मामले में शीर्ष पर पहुंचा हुआ है।

1962 में गठित भारतीय राष्ट्रीय अंतरिक्ष अनुसंधान समिति का प्रथम अध्यक्ष विक्रम सारा भाई कों बनाया गया। 1969 में इस समिति का पुनर्गठन करकें इसका नाम भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन (Indian Space Research Organisation ISRO) कर दिया गया तथा इसके भी प्रथम अध्यक्ष विक्रम सारा भाई को ही बनाया गया। इसके पश्चात् देश में अंतरिक्ष अनुसंधान को एक वित्तीय आधार प्रदान करने कें लियें 1972 में अंतरिक्ष विभाग तथा अंतरिक्ष आयोग का गठन किया गया। इसका परिणाम यह हुआ कि इसके तीन वर्ष बाद ही 19 अप्रैल 1975 को भारत ने अपना पहला उपग्रह 'आर्यभट्ट' अंतरिक्ष में छोड़ा और इसके साथ भारत में अंतरिक्ष उपग्रह के एक नये युग में प्रवेश किया। 'आर्यभट्ट' के प्रक्षेपण से उत्साहित होकर अंतरिक्ष वैज्ञानिकों नें इनसैट श्रृंखला के उपग्रहों की परिकल्पना की इस श्रृखला कें प्रथम श्रेणी के उपग्रहो इनसैट 1ए से इनसैट 1डी का निर्माण भारतीय अंतरिक्ष वैज्ञानिकों द्वारा निर्धारित मान दण्डों के आधार पर अमेरिकी वैज्ञानिको ने किया था। लेकिन इस श्रृखला के दूसरी पीढ़ी के उपग्रहों इनसैट 2ए से इनसैट 2डी का निर्माण पूर्णतः स्वदेशी तकनीक पर आधारित भारतीय वैज्ञानिकों द्वारा किया गया।

इनसैट श्रेणी के उपग्रहों के बाद दूरसंवेदी उपग्रहों की श्रृंखला आई. आर. एस. – 1ए से 1डी तक का निर्माण किया गया। इन उपग्रहों का भारतीय संसाधनों के सर्वेक्षण और प्रबंधन में महत्वपूर्ण योगदान है। इसके बाद सितम्बर 1993 में आई.आर.एस. – 1ई ध्रुवीय उपग्रह प्रमोचक रॉकेट पी.एस. एल.वी. से अंतरिक्ष में छोड़ा गया। किन्तु इसे निर्धारित कक्षा में स्थापित नही किया जा सका।

लेकिन इसकी अलग अलग प्रणालियों ने ठीक तरह से काम किया था और इस प्रकार भारत ने उपग्रहों के प्रक्षेपण के क्षेत्र में काफी कुछ सफलता हासिल कर ली। भारत की यह अधूरी सफलता उस समय पूर्ण हो गयी जब 29 सितम्बर 1997 को पी एस एल वी–सी 1 से आई आर एस 1 डी को सफलतापूर्वक अंतरिक्ष की कक्षा में स्थापित कर दिया गया। इस प्रक्षेपण के साथ ही भारत विश्व का छठा देश हो गया जो एक हजार किग्रा वर्ग के उपग्रह को पृथ्वी की निचली कक्षा में स्थापित करने की क्षमता रखता है। अन्य पांच देश अमेरिका, रूस, चीन, जापान और यूरोपीय संगठन हैं।

भारतीय अंतरिक्ष कार्यक्रम का मूल उददेश्य दूरसंचार टेलीविजन प्रसारण मौसम अध्ययन और संसाधनों के सर्वेक्षण तथा प्रबंधन के क्षेत्र में अंतरिक्ष प्रौद्योगिकी विकसित करना, उन पर आधारित सेवाएं

उपलब्ध कराना तथा इसके लिए उपग्रह प्रक्षेपण यान तथा सम्बद्ध भूप्रणालियां विकसित करना है। अंतरिक्ष कार्यक्रम का कार्यान्वयन प्रमुख रूप से भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन (इसरो) राष्ट्रीय सुदूर संवेदन संस्थान तथा भौतिक अनुसंधान प्रयोगशाला के माध्यम से होता है।

विक्रम साराभाई ने 50 वर्ष पूर्व भारत को अंतरिक्ष में विशेष स्थान दिलाने का स्वप्न देखा था। उनका यह स्वप्न पूरा हो गया है। राष्ट्रीय विकास के लिए भारत ने जनोपयोगी उपग्रह तैयार किये हैं। पर्यावरण, सुरक्षा, साधन, प्रबंधन, आपदा निवारण, संचार तथा शिक्षा आदि के क्षेत्रों में हमें निरंतर लाभ मिलते जा रहे है। अन्य देशों के मुकाबले अंतरिक्ष पर हमारा ध्यान कम है। लेकिन हमारी तकनीक आधुनिकतम है। इस समय अंतरिक्ष संगठन का मुख्य उद्देश्य निर्धारित कार्यक्रमों को पूरा करना है। आज संचार क्रांति सारे संसार में फैल गयी है। यह आज की संस्कृति तथा कल के भविष्य को परिलक्षित करती है। अंतरिक्ष युग ने भौगोलिक, सांस्कृतिक तथा सामाजिक सीमाओं के बंधन तोड़ दिए हैं।

भारत ने मनुष्य और समाज की समस्याओं के समाधान में अंतरिक्ष टैक्नोलाजी के उपयोग में महत्त्वपूर्ण प्रगति की है। संचार, प्रसारण, और मौसम संबंधी सेवाओं के लिए दुनिया की सबसे बड़ी घरेलू बहुद्देशीय उपग्रह प्रणाली इनसेट के साथ साथ दूर संवेदन के लिए विश्व की विशालतम दूर संवेदन प्रणाली का जाल बिछाया गया है जिसका संसाधन के सर्वेक्षण और प्रबंधन में उपयोग किया जा रहा है। इनसेट और आई आर एस से समाज के सबसे निचले स्तर के लोगों की भलाई के लिए टैक्नोलाजी के उपयोग करने की भारत की क्षमता और संकल्प का पता चलता है। आई आर एस श्रेणी के उपग्रहों के प्रक्षेपण के लिए भू समकक्ष उपग्रह प्रक्षेपण यान जी एस एल वी के विकास की दिशा में भी शानदार प्रगति हुई। इससे पता चलता है कि भारत महत्वपूर्ण टैक्नोलाजी के क्षेत्र में आत्मनिर्भरता प्राप्त करने के कार्य को कितनी अहमियत देता है।

आने वाले दशकों में अंतरिक्ष कार्यक्रम के अंतर्गत अंतरिक्ष टैक्नोलॉजी के बड़े पैमाने पर उपयोग पर जोर जारी रहेगा। लेकिन साथ ही हमें जटिल तथा बदलती हुई चुनौतियों का सामना करने के लिए भी उपाय करने होंगे। भारत स्वदेशी क्षमता से परिष्कृत टेक्नोलॉजी (तकनीकी) के विकास तथा उपयोग के लिए लगातार प्रयास करता रहेगा। डायरेक्ट टू होम टेलीविजन और डिजिटल ऑडियो प्रसारण, टेली–एजुकेशन, टेली हेल्थ, कम्यूनिकेशन, नेवीगेशन, मोबाइल कम्यूनिकेशन, मौसम विज्ञान आपदा प्रबंधन आदि के क्षेत्र में अंतरिक्ष टैक्नोलॉजी की मदद ली जायेगी। भारत और अधिक परिष्कृत उपग्रहों का विकास और प्रक्षेपण करके अंतरिक्ष पर आधारित दूर संवेदन के क्षेत्र में बढ़त बनाये रखेगा। इन उपग्रहों में कृषि वानिकी, जल, खनिज, शहरी विकास और पर्यावरण की निगरानी जैसे कार्यो के लिए बेहतर किस्म और क्षमता के उपकरण लगे होंगे। इस समय प्रयोग में लाये जा रहे ध्रुवीय उपग्रह प्रक्षेपण यान (पी एस एल वी) की प्रक्षेपण क्षमता बढ़ाई जायेगी और इस बात का ध्यान रखा जायेगा कि ये भविष्य में छोडे जाने वाले भारी व परिष्कृत किस्म के आई आर एस और इनसेट उपग्रहों को प्रक्षेपित कर सके। ब्रह्माण्ड के बारे में हमारे ज्ञान को बढ़ाने के लिए अंतरिक्ष विज्ञान के क्षेत्र में अनुसंधान को प्रोत्साहन दिया जायेगा और वैज्ञानिकों के लिए कार्य के नये क्षेत्र विकसित होंगे।

प्रौद्योगिकी के विकासात्मक पहलू भारत के संदर्भ में

मीना गुप्ता एवं अरुणा कुजूर
पं. रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय, रायपुर, छत्तीसगढ
हॉलीक्रास महिला महाविद्यालय अम्बिकापुर सरगुजा, छत्तीसगढ

भारत जैसे विकासशील देश में विकास की मंजिल चुनौतिपूर्ण है। मानवीय संसाधनों से युक्त एक अरब से अधिक जनसंख्या वाले देश में युवाओं की भूमिका क्या हो सकती है इस पर चिन्तन मनन की आवश्यकता है। विकसित होने के लिए भारत की छटपटाहट निश्चित ही विकास के सूरज को इस धरती पर चमकायेगी। विकास को परिभाषित करते हुए स्वामी विवेकानन्द ने कहा था कि ''एक राष्ट्र तभी विकसित कहलाता है जब उसकी जनता में विद्या और बुद्धिमता का प्रसार अनुपात में बराबर हो।''

लोगों की व्यक्तिगत प्रगति से ही राष्ट्र की प्रगति होती है। इस प्रगति में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी का महत्त्वपूर्ण योगदान बढ़ता जा रहा है, रेडियो, टेलीविजन, कम्प्यूटर, इन्टरनेट, टेलीफोन, मोबाइल, समाचार–पत्र पत्रिकाएं, सिनेमा इत्यादि संचार माध्यमों जिनमें मुख्यतः इलैक्ट्रानिक मीडिया ने तो जैसे पूरे विश्व को समेट दिया है और 'वसुधैव कुटुम्बकम की संकल्पना को साकार कर दिया है। आज कोई भी व्यक्ति विश्व के किसी भी स्थान से पूरी दुनिया के सम्पर्क में रह सकता है। दुनिया भर की सरकारों के द्वारा अपनी सेवाओं को हर नागरिक तक पहुंचाने के लिए सूचना प्रौद्योगिकी के आधुनिक साधनों का इस्तेमाल किया जा रहा है। भारत में भी नेशनल इन्फोर्मैटिक्स सेन्टर (एन आई सी) की स्थापना और रेल टिकटों की ऑनलाइन बुकिंग के साथ ही ई–प्रशासन की शुरुआत हुई जिसके माध्यम से व्यक्ति घर बैठे कम्प्यूटर, मोबाइल फोन के द्वारा संबंधित अधिकारी से अपने कार्य के बारे में सूचना हासिल कर सकेगें, सवाल पूछ सकेगें और भष्ट्राचार पर भी नियंत्रण पाया जा सकेगा। आंध्रप्रदेश, कर्नाटक, दिल्ली, चंडीगढ़, गोवा, असम, पंजाब और उत्तर प्रदेश जैसे राज्यों ने एन आई सी के सहयोग से ग्रामीण क्षेत्रों में ई–प्रशासन का सफल प्रयोग किया है। जमीन की मिल्कियत सबंधी कागजातों के कम्प्यूटरीकरण और भू–राजस्व उगाही की प्रक्रिया को आसान बनाने के लिए कर्नाटक सरकार ने भूमि नामक ऑनलाइन व्यवस्था के अर्न्तगत राज्य भर के जमीन कागजात को इलैक्ट्रॉनिक रूप में रखा है। अब उन्हे अपनी जमीन का नक्शा, मालिकाना हक या अन्य कोई प्रमाण पत्र आसानी से उपलब्ध हो जाते हैं। उन्हें पटवारी या लेखपाल के चक्कर नहीं लगाने पड़ते हैं। प्रशासनिक तंत्र में सुधार के लिए पंजाब सरकार ने सिंगल यूजर विण्डो डिस्पोजल हेल्पलाइन फॉर एप्लीकेंटस परियोजना शुरु की है। इसके अन्तर्गत विभिन्न तरह के लाइसेंस पासपोर्ट, राशनकार्ड और पेंशन जैसी 24 सरकारी सेवाओं से संबंधित शिकायतों का निपटारा एक ही छत के नीचे हो सके, इसलिये सभी 18 जिलों में सुविधा केन्द्र खोले गए हैं जो पूरी तरह ऑनलाइन है।

दिल्ली सरकार और दिल्ली नगर निगम के अन्तर्गत आने वाले सभी विभागों की वेबसाइटों का मास्टर पोर्टल delhigovt.nic.in एक ऐसी खिड़की है जिससे लगभग पूरी दिल्ली देखी जा सकती है। यह पोर्टल सुचनाओं के साथ–साथ जन्म, मृत्यु, विवाह, आय और जाति प्रमाण पत्रों के लिए ऑनलाइन आवेदन करने की सुविधा भी देती है।कम्प्यूटरीकरण की मदद से सर्वोच्च न्यायालय के पूर्णतः लंबित मामलों की संख्या में काफी गिरावट आई है। 1996 कम्प्यूटरीकरण से पहले सर्वोच्च न्यायलय में जहां 152000 मुकदमे लंबित थे, वहीं अब लंबित मामलों की संख्या घटकर 29000 के करीब रह गई है।

भारत की सूचना प्रौद्योगिकी जनित सेवा आई टी ई एस बी पी ओ उद्योग देश के कुल आई सी टी उद्योग में उच्च संभावनाओं वाला ऊँचे विकास का क्षेत्र बना हुआ है।

भारत ने एक महत्वाकांक्षी परियोजना के अर्न्तगत शिक्षा के लिए पूर्ण समर्पित उपग्रह 'एडुसैट' की अंतरिक्ष में स्थापना कर दूरवर्ती शिक्षा के क्षेत्र में एक नए युग की शुरूआत की है। संचार माध्यमों का सबसे बड़ा योगदान विकास की आवश्यकता के बारे में जनचेतना जागृत करने में है। अपने विभिन्न कार्यक्रमों द्वारा वे साक्षरता के प्रसार जनसंख्या नियंत्रण की आवश्यकता, रोजगार के अवसर बढ़ाने के नए व आधुनिक तरीकों के प्रयोग, बच्चों एवं महिलाओं की स्थिति में सुधार और समाज के प्रति चेतना जगाने एवं पशुपालन आदि द्वारा गांवों की आर्थिक स्थिति को सवारने में अदभुत भुमिका निभा रहे हैं। साथ ही गांव में स्वास्थ्य संबंधी चेतना जगाने, बीमारियों की रोकथाम, किसानों को खाद्यानों के सही मूल्य की सूचना पंचायत प्रणाली को मजबुत बनाने तथा रूढ़ियों एवं अंधविश्वासों को मिटाने का कार्य कर रहे हैं।

देश–विदेश की विविधताओं, संसाधनों, सांस्कृतिक, गतिविधियों एवं आवश्यकताओं की रूपरेखा तथा समझ से ग्रामीण जन रूबरू हो रहे हैं। वास्तव में इसका लाभ भी उन्हें मिला है। इस प्रकार मीडिया एवं संचार साधनों का सकारात्मक उपयोग भारतीय ग्रामीण समाज को एक नई दिशा दे सकता है। इसके अलावा विभिन्न क्षेत्रों के विकास में प्रद्योगिकी का महत्व दिन–प्रतिदिन बढ़ता जा रहा हैं।

– अहमदाबाद के प्लाज्मा अनुसंधान संस्थान में उच्च तापमान चुंबकीय सीमित प्लाज्मा के अध्ययन के लिए आदित्य टोकामक चलाया रहा है। इस टोकामक के अध्ययन से कण परिवहन की प्रगति पर महत्त्वपूर्ण प्रभावों की जानकारी मिलती है।

– अप्रैल, 1993 में इलैक्ट्रॉनिक हार्डवेयर प्रौद्योगिकी पार्क योजना (ई.एच.टी.पी.) को आरम्भ किया गया। इस योजना के द्वारा सम्पूर्ण विश्व की इलैक्ट्रॉनिक्स महाशक्तियों को भारत में इलेक्ट्रॉनिक विकास के लिए उपयुक्त आधार बनाने में सहायता देने के लिए आमंत्रित करने में सुविधा होगी।

– विभिन्न प्रकार के वित्तीय और गैर वित्तीय लेन–देन को सुरक्षित जल्दी और आसान तरीके से निपटने के लिए बहु–उपयोगी स्मार्ट कार्ड (एम ए एस पी) का प्रचलन बढ़ रहा है। इन कार्डो की बहु–आयामी क्षमताओं और बड़ी तादाद में इस्तेमाल की आशा के चलते दसवीं पंचवर्षीय योजना में कार्ड को विकास के नये कदम के रूप में रखा गया है।

– भारतीय राष्ट्रीय वैज्ञानिक प्रलेखन संस्थान (आई एन एस डी ओ सी) ने स्वदेशी तकनीक पर आधरित ऑप्टिकल स्टोरेज प्रणाली और रिट्रीवर प्रणाली विकसित की है। इस प्रणाली के अन्तर्गत (ओ सी डी) कम्पैक्ट डिस्क में लगभग 6 लाख पृष्ठों की सूचना संग्रहित की जा सकती है। इसे दूरभाष प्रणाली द्वारा प्राप्त किए जाने वाले आंकड़ों एवं सूचनाओं की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली माना जाता है।

आम आदमी के जीवन स्तर को सुधारने और उनके जीवन को समृद्ध बनाने के एक साधन के रूप में सूचना प्रौद्योगिकी ने ग्रामीण और साधनहीन शहरी क्षेत्रों में पी.सी सी. और इंटरनेट के प्रसार का एक महत्वाकांक्षी कार्यक्रम शुरू किया है। विभाग ने ई–गवर्नेंस के लिए संपर्क सुविधा मुहैया कराने के लिए ब्लॉक स्तर पर स्टेट वाइड एरिया नेटवर्क (स्वॉन) स्थापित करने के कार्यक्रम की भी घोषणा की है। इसके साथ ही उत्तर पूर्व और जम्मू एवं कश्मीर के पर्वतीय और दूरदराज क्षेत्रों जैसे उत्तरांचल, अण्डमान और निकोबार तथा लक्षद्वीप में भी सीआईसी. स्थापित करने का प्रस्ताव है।

आज के प्रौद्योगिकी के युग में भारतीय अर्थव्यवस्था को गतिशील तथा विकास के पथ पर अग्रणी बनाए रखने के लिए मानव पूंजी निर्माण का सारतत्व है–मनुष्य के सर्वोत्तम को उजागर करना

और यह सब उसके ज्ञान, कौशल, क्षमता, साकारात्मक कार्य, मनोवृत्ति तथा मूल्यों पर निर्भर करता है। अतः मानव पूंजी निर्माण की एक उपयुक्त रणनीति का निर्माण कर विद्यमान तथा भावी समस्याओं का निराकरण किया जा सकता है। क्योंकि मानव पूंजी निर्माण विकास की एक ऐसी प्रक्रिया है जो निरन्तर किये जाने वाले प्रयासों के फलस्वरूप दीर्घकाल में फलीभूत हो पाती है। अतः राष्ट्रीय स्तर पर कौशल निर्माण के लिए प्रर्याप्त एवं लगातार विनियोग, असीमित धैर्य तथा पूर्ण सर्तकता की आवश्यकता है ।

सदर्भ

1. योजना।
2. कुरूक्षेत्र।
3. सिविल सर्विसेज टाइम्स।

जखराना नस्ल की बकरियों के उत्पादन एवं जनन गुणों में आनुवांशिक सुधार

साकेत भूषण एवं गोपाल दास
केन्द्रीय बकरी अनुसंधान संस्थान, मखदूम, फरह, मथुरा, उत्तर प्रदेश

सारांश

जखराना बकरी की एक महत्वपूर्ण दुग्ध देने वाली नस्ल है जो अपने बड़े शारीरिक आकार के कारण मांस उत्पादन के लिए भी उपयोगी है। इस नस्ल की बकरियों का रंग काला तथा कान एवं मुँह के जबड़े पर सफेद रंग पाया जाता है। जखराना नस्ल की एक रेबड़ केन्द्रीय बकरी अनुसंधान संस्थान में पाली जा रही है। प्रजनन कराने के लिये उनके प्रजनक नर तथा मादा का चयन उनके शारीरिक भार तथा दुग्ध उत्पादन क्षमता के आधार पर किया जाता है। प्रजनन के लिए बकरों का चयन 9 माह के शारीरिक भार के आधार पर तथा मादाओं का चयन 90 दिन के दुग्ध उत्पादन के आधार पर किया जाता है। सन् 2011–12 के बीच कुल 83 बकरियों ब्यॉई जिनसे 119 बच्चे पैदा हुये। 119 बच्चों में से 59 बच्चे (49.57%) नर तथा 60 बच्चे (50.42%) मादा थे। 83 ब्यॉत में 49 बकरियों (59.03%) ने एक बच्चा, 32 बकरियों (38.55%) ने दो बच्चे तथा 2 बकरियों (2.40%) ने तीन बच्चों को जन्म दिया। दो या दो से अधिक बच्चे देने वाली कुल बकरियॉ 34 (40.96%) थी। जखराना बकरियों में जनन दर 1.43 पाया गया है। गर्भकाल, ब्यॉत अन्तराल तथा शु क काल जखराना बकरियों में क्रमशः 152.4±0.52, 289.-23±0.78 तथा 142.64±0.57 दिन पाया गया । प्रजनन हेतु नर बकरों का चयन उनके 9 माह के शारीहरिक भार व उनकी माताओं की 90 दिन के दुग्ध उत्पादन के आधार पर किया जिससे नर बच्चों का वर्ष 2010–11 का 9 माह तथा 12 माह का शारीरिक भार वर्ष 2009–10 से क्रमश 24.96% तथा 30.53% बढ़ गया। इसी तरह 3 तथा 6 माह पर मेमनों का वजन 2010–11 से 2011–12 में क्रमशः 31.43% तथा 30.47% बढ़ गया। 90 दिन के दुग्ध उत्पादन के आधार पर मांदा बकरी का चयन प्रजनन के लिये करने पर 30, 60, 90, 120 तथा 150 दिन का दुग्ध उत्पादन 2009–10, से 2011–12 में कमशः 28.65%, 25.95%, 28.63%, 44.47% तथा 55-37% बढ़ा। औसत दुग्ध उत्पादन अवधि जखराना बकरी की 158.35±4.05 दिन पाई गई तथा बकरियों से पूर्ण दुग्ध अवधि में औसत 181.82±7.31 लीटर दूध प्राप्त किया गयां। रेबड़ में न्यूनतम दुग्ध उत्पादन अवधि 77 दिन तथा अधिकतम दुग्ध उत्पादन अवधि 259 दिन पाई गई।

प्रस्तावना

जखराना भारत की दूधा देने वाली एक महत्वपूर्ण बकरी की नस्ल है। यह नस्ल अपने बड़े शारीरिक आकार के कारण मांस उत्पादन के लिए भी उपयोगी है। इस नस्ल की बकरियों का रंग काला तथा कान एवं मुँह के जबड़े पर सफेद रंग पाया जाता है। इस नस्ल का नाम जखराना राजस्थान के अलवर जिले के गॉव जखराना के नाम पर पड़ा है, क्योंकि यह नस्ल शुद्ध रूप से इसी गॉव में पाई जाती है। इसके अतिरिक्त इस नस्ल की बकरियॉ अलवर के समीपवर्ती जनपदों तथा इस नस्ल की

कुछ शुद्ध व मित्रित बकरियॉ हरियाणा प्रदेश के नारनौल, गुणगॉव, भिवानी एवं रोहतक तथा उत्तर प्रदेश के समीपवर्ती क्षेत्रों में भी मिलती हैं ।

सामग्री एवं विधियां

जखराना नस्ल की एक रेबड़ केन्द्रीय बकरी अनुसंधान संस्थान में पाली जा रही है जिसका उदेश्य है कि जखराना नस्ल का दूध एवं मांस उत्पादन बढ़ाने की दृष्टि से उन्नयन किया जाये। जखराना बकरियॉ अपनी उम्र, उत्पादन तथा जनन स्थिति के अनुसार अलग–अलग बाड़ों में रखी गई हैं। बकरियों को अर्ध सघन प्रवन्धन में रखकर पाला गया जिसमें बकरियॉ प्रातः 8 बजे से सायं 4 बजे तक चरने के लिए भेजी गयी तथा बाकी समय में बाड़े में रखकर आवश्यकतानुसार दाना, हरा चारा तथा भूसा आदि दिया गया। प्रजनन कराने के लिये उनके प्रजनक नर तथा मादा का चयन उनके शारीरिक भार तथा दूध उत्पादन क्षमता के आधार पर किया गया । प्रजनन के लिए बकरों का चयन उनके 9 माह के शारीरक भार तथा उनकी माताओं के 90 दिन के दुग्ध उत्पादन के आधार पर तथा मादा बकरियों का चयन 90 दिन के दुग्ध उत्पादन के आधार पर किया गया। बच्चा होने पर जन्म के तुरंन्त बाद वजन, लिंग, जनन का प्रकार, जन्म के पहले मॉ का वजन आदि को रिकार्ड किया गया उसके बाद बच्चों को 3 माह तक हर 15 दिन के अन्तर पर तथा तीन माह के बाद प्रत्येक माह के अंतर पर वजन रिकार्ड किया गया। बच्चों को मॉ का दूध देना तीन माह की उम्र में बंद कर दिया गया। सभी जानवरों को पी पी आर, इन्टरोटोक्सीनिया, एफ एम डी आदि की बीमारियों का टीका समयानुसार लगाये गये। बच्चो में दस्त की बीमारी होने पर उनकी चिकित्सा भी समय समय पर की जाती रही ।

परिणाम एवं परिचर्चा

शारीरिक भार

वर्ष 2009–10, 2010–11 तथा 2011–12 में पैदा हुये जखराना बच्चों का जन्म भार, 3, 6, 9 तथा 12 माह के वजन का औसत भार तालिका 1 में दिया गया है। राय एवं सिंह (2005) ने जखराना बकरियों का उनके प्रजनन क्षेत्र में अध्ययन किया तथा वर्तमान परिणामों से कम जन्म भार तथा 3, 6 व 12 माह के भार से अधिक शारीरिक भार पाया जो कमशः 2.54±0.11, 12.28±1.50, 16.47±1.89 व 25.30±3.01 कि0ग्रा0 थे। वर्तमान अध्ययन से ज्ञात हुआ है किं नर बच्चों का 9 माह तथा 12 माह पर शारीरिक भार वर्ष 2010–11 में वर्ष 2009–10 की तुलना सें कमशः 24.96% तथा 30.53% बढ़ गया। इसी तरह 3 तथा 6 माह पर मेमनों का वजन 2010–11 से 2011–12 की तुलना में कमशः 31.43% तथा 30.47% बढ़ गया। परिणाम बताते हैं कि 9 माह के नर बच्चे का चयन वजन के आधार पर करने पर 3, 6, 9 तथा 12 माह पर बच्चों का वजन पिछले साल की तुलना में बढ़ा था। मेमनों का जन्म भार 2010–11 में 2009–10 से कम पाया गया परन्तु 2011–12 में जन्म भार में बृद्धि पायी गई। 3 माह का वजन 2010–11 में 2009–10 की तुलना में बढ़ा परन्तु 2011–12 में पुनः कम हो गया। 6 माह का वजन 2009–10 से 2010–11 तथा 2011–12 में बढ़ा पाया गया। 9 माह का वजन भी 2010–11 में 2009–10 से बढ़ा हुआ था परन्तु 2011–12 में 2010–11 से कम हो गया। 12 माह का वजन 2010–11 में 2009–10 की तुलना में काफी बढ़ा पाया गया परन्तु 2011–12 में 2010–11 से कम प्राप्त हुआ। इसका मुख्य कारण था कि केवल दो बच्चों का वजन ही 2011–12 तक लिया जा सका जिससे परिणाम पूर्ण रूप से प्रदर्शित नहीं हो सके। परिणामों से जानकारी मिलती है कि दस्त की बीमारी हो जाने पर बच्चों का वजन बहुत कम हो जाता है।

तालिका 1. जखराना बच्चों के विभिन्न आयु पर शारीरिक भार (कि0ग्रा0)।

2009-10	जन्म	3 माह	6 माह	9 माह	12 माह
समग्र औसत	2.76±0.44 (123)	7.68±0.13 (108)	10.37±0.21 (75)	14.34±0.36 (58)	19.55±055 (42)
नर	2.800±0.049 (68)	7.977±0.200 (61)	10.888±0.320 (49)	14.891±0.575 (37)	20.812±0.653 (33)
मादा	2.628±0.064 (55)	7.270±0.132 (47)	9.703±0.224 (38)	13.355±0.186 (27)	17.321±0.388 (24)
एकल बच्चे	2.898±0.076(50)	7.855±0.265 (42)	10.689±0.350 (36)	14.352±0.438 (25)	19.723±0.636 (22)
बहु बच्चे	2.667±0.055 (72)	7.551±0.033 (66)	10.145±0.218 (51)	14.174±0.399 (39)	19.103±0.478 (35)
2010-11	जन्म	3 माह	6 माह	9 माह	12 माह
समग्र औसत	2.58±0.03 (89)	10.00±0.22 (80)	13.53±0.30 (75)	17.92±0.43 (64)	25.52±0.92 (25)
नर	2.65±0.41 (53)	9.92±.0.28 (47)	13.77±0.43 (43)	18.79±0.68 (42)	24.04±0.74 (40)
मादा	2.51±0.06 (36)	10.10±0.34 (34)	13.24±0.42 (33)	16.94±0.51 (30)	22.87±0.74 (29)
एकल बच्चे	2.59±0.34 (39)	9.73±0.33 (35)	13.95±0.48 (32)	17.90±0.61 (32)	23.49±0.74 (32)
बहु बच्चे	2.62±0.34 (43)	10.35±0.29 (40)	13.56±0.42 (36)	18.44±0.77 (33)	24.04±0.79 (32)
2011-12	जन्म	3 माह	6 माह	9 माह	12 माह
समग्र औसत	2.71±0.38 (115)	9.29±0.16 (55)	14.40±0.27 (27)	15.82±1.38 (6)	18.75±0.35 (2)
नर	2.70±0.42 (56)	9.36±1.46 (30)	14.16±0.57 (24)	15.27±1.20 (4)	-
मादा	2.71±0.50 (57)	9.29±0.22 (30)	13.78±0.45 (27)	16.5±1.55 (2)	18.75±0.35 (2)
एकल बच्चे	2.72±0.44 (48)	9.32±0.30 (27)	14.09±0.54 (22)	16.13±1.51 (3)	18.5±0.0 (1)
बहु बच्चे	2.69±0.47 (65)	9.33±0.20 (34)	13.87±0.50 (30)	15.23±1.59 (3)	19.0±0.0 (1)

दुग्ध उत्पादन

वर्ष 2009–10, 2010–11 तथा 2011–12 में पैदा हुये बकरियों का 30, 60, 90, 120 तथा 150 दिन का औसत दुग्ध उत्पादन सारणी 2 में दिया गया है। राय एवं सिंह (2005) ने जखराना बकरियों में सघन व विस्तृत प्रवन्धन में 60 व 90 दिन का दूध उत्पादन क्रमशः 152.87±2.69 व 143.0±3.2 तथा 107.39±2.11 व 118.0±2.3 लीटर पाया जो कि वर्तमान परिणामों से कम था। इसी प्रकार मण्डल एवं सहयोगियों (2010) ने इस नस्ल की बकरियों में 90, 140 दिन व कुल दुग्ध उत्पादन क्रमशः 101.98±2.38, 144.60±3.53 व 166.05±5.21 लीटर प्रकाशित किया है । 90 दिन के दुग्ध उत्पादन के आधार पर मांदा बकरी का चयन प्रजनन के लिये करने पर 30, 60, 90, 120 तथा 150 दिन का दुग्ध उत्पादन 2009–10 से 2011–12 में क्रमशः 28.65%, 25.95%, 28.63%, 44.47% तथा 55.37% बढ़ा। 2009–10 से 2011–12 तक दुग्ध उत्पादन लगातार बढ़ना यह सिद्ध करता है कि बड़े जानवरों में वातावरण ज्यादा असर नहीं करता है तथा बड़े जानवरों में दस्त की शिकायत भी कम होती है इसी कारण उचित चयन के परिणाम स्वरूप हर वर्ष दुग्ध उत्पादन में लगातार बृद्धि होती गई। औसत दुग्ध उत्पादन अवधि जखराना बकरी की 158.35±4.05 दिन पाई गई तथा बकरियों से पूर्ण दुग्ध अवधि में औसत 181.82±7.31 लीटर दूध प्राप्त किया गयां। रेबड़ में न्यूनतम दुग्ध उत्पादन अवधि 77 दिन तथा अधिकतम दुग्ध उत्पादन अवधि 259 दिन पाई गई। राय एवं चौरे (1965) ने एक अध्ययन

तालिका 2. जखराना बकरियों के विमिन्न अवधि में दूध उत्पादन (लीटर)।

वर्ष	30 दिन	60 दिन	90 दिन	120 दिन	150 दिन
2009-10	37.02±1.17 (83)	72.20±2.70 (83)	98.0±3.9. (73)	114.76±4.32 (70)	125.034±5.77 (67)
2010-11	38.63±1.831 (34)	74.87±3.81 (34)	105.68±6.68 (31)	132.32±7.32 (27)	159.63±10.37 (23)
2011-12	46.96±1.690 (69)	90.94±3.13 (66)	126.06±4.59 (59)	165.80±5.479 (50)	192.01±8.07 (26)

तालिका 3. जखराना बकरियों के जनन गुण।

व्याँत संख्या	कुल बच्चे	नर बच्चे	मादा बच्चे
83	119	59(49.57%)	60(50.42%)
एकल जनन	बहु जनन	जुड़वाँ जनन	तिड़वाँ जनन
49(59.03%)	34(40.96%)	32(38.55%)	2(2.40%)
जनन दर	गर्भ अवधि	व्याँत अन्तराल	शुष्क अवधि
1.43	152.47±0.52	289.23±0.78	142.64±0.57

के माध्यम से ज्ञात किया कि बकरियों मे दुग्ध उत्पादन का बढना बहु बच्चा स्तन पान के द्वारा होता है न कि बहु बच्चा पैदा करने के कारण परन्तु मारकेटन एवं मिलरस्की (2000) ने पाया कि बहु बच्चा पैदा करने वाली बकरियों में एकल बच्चा पैदा करने वाली बकरियों से अधिक दूध उत्पादन होता है।

जनन गुण

वर्ष 2011–12 के बीच कुल 83 बकरियों का ब्याँत हुआ जिनसे 119 बच्चे पैदा हुये। 119 बच्चों में से 59 बच्चे (49.57: नर तथा 60 बच्चे (50.42%) मादा थे। 83 ब्याँत में 49 बकरियों (59.03%) ने एक बच्चा, 32 बकरियों (38.55%) ने दो बच्चे तथा 2 बकरियों (2.40%) ने तीन बच्चों को जन्म दिया। दो या दो से अधिक बच्चे देने वाली कुल बकरियॉ 34 (40.96%) थी। जखराना बकरियों में जनन दर 1.43 पाया गया। जखराना बकरियों में गर्भकाल, ब्याँत अन्तराल तथा शुष्क काल क्रमशः 152.4±0.52, 289.23±0.78 तथा 142.64±0.57 दिन पाया गया । राय एवं सिंह (2005) ने जखराना बकरियों के ग्रह क्षेत्र में प्रथम ब्याँत, ब्याँत अन्तराल व जुड़वॉ मेमना पैदा होने की दर को अर्ध सघन एवं सघन प्रवन्धन में अध्ययन किया और इन गुणों का औसत क्रमशः 561.24±9.83 दिन, 287.78±9.89 दिन व 1.54±0.16 तथा 632.65±7.83 दिन, 322.86±9.34 दिन व 1.32±0.16 प्रकाशित किया है।

संदर्भ

1. मण्डल, ए0, भूषण, एस0, राउत, पी0 के0 एवं शर्मा, एम0 सी0 (2010),एनवायरमेनटल एफेक्टस ऑन प्रोडक्सन ट्रेट्स ऑफ।
2. जखराना गोट इण्डियन जनरल ऑफ एनीमल साइन्सेस, 80(11): 1141–1144.
3. मारगेटिन, एम0 एवं मिलरस्की, एम0 (2000). दी इफैक्ट ऑफ नौन जेनेटिक फैक्टर्स ऑन मिल्क यील्ड एण्ड कम्पोजीशन इन
4. गोट्स ऑफ व्हाइट शोर्ट – हेयर्ड ब्रीड, कैच जनरल ऑफ एनीमल साइन्स, 45(11): 501–509.
5. रॉय, बी0 एवं सिंह, एम0के0 (2005) प्रोडक्सन परफौरमेन्स ऑफ जखराना गोट्स इन इट्स होम ट्रैक्ट, इण्डियन जनरल ऑफ एनीमल साइन्सेस, 75(10): 1176–1178.
6. राय, जी0 एस0 एवं चौरे, पी0 ए0 (1965) लैक्टशनल परफौरमेन्स ऑफ जमुनापारी एण्ड बरबरी गोट्स, इण्डियन वेटेरिनरी जनरल, 42: 958–961.

भारतीय सैनिकों में कम स्तर के मस्तिष्क कैंसर का एफ डोपा और एफ डी जी द्वारा तुलनात्मक मूल्यांकन

सचिन कटारिया
नाभिकीय औषधि तथा सम्बद्ध विज्ञान संस्थान, दिल्ली

परिचय

पैट् स्कैन (पॉज़िट्रोजन उत्सर्जन टोमोग्राफी) में मस्तिष्क कैंसर गांठों का निदान प्रायः एफ डी जी का प्रयोग करके किया जाता है। परन्तु मस्तिष्क ऊतकों में ग्लूकोज के उपापचय (मेटाबोलिजम) की अधिक दर होने के कारण एफ.डी.जी. की संवेदनशीलता कम ग्रेड के मस्तिष्क कैंसर के संदर्भ में सीमित होती है। इस संदर्भ में अमीनो अम्ल एनालोग पर आधारित पैट् अनुरेखक, मस्तिष्क की कैंसर गांठ का प्रतिबिम्ब लेने में प्रयोग किए जा सकते हैं जो कि अति संवेदनशील होते हैं। मस्तिष्क गांठों में एक सामान्य ऊतक की तुलना में एफ डोपा का अन्तर्ग्रहण अधिक मात्रा में होता है क्योंकि एफ डोपा एक सामान्य अमीनों अम्ल ट्रान्सपोर्टर के द्वारा ब्लड–ब्रैन बेरियार को पार कर लेता है।

हमारे इस अध्ययन का उद्देश्य कम स्तर के मस्तिष्क कैंसर के एफ डोपा और एफ डी जी के अन्तर्ग्रहण का तुलनात्मक मूल्यांकन करना था जिससे कि रोग का सटीक और शीघ्र निदान हो सके।

विधि

कम स्तर के ग्लायोमा (मस्तिष्क कैंसर) के 15 रोगी हमें रिसर्च एण्ड रेफेरल आर्मी अस्पताल से रेफर किए गए थे। इन रोगियों में रोग निदान का अध्ययन एफ डोपा और एफ डी जी रेडियो अनुरेखकों का बारी–बारी से प्रयोग करके पैट् स्कैन द्वारा किया गया।

पैट् स्कैन की कार्य प्रणाली

पैट् स्कैन करने से पूर्व साइक्लोट्रॉन नामक मशीन में एक रेडियोधर्मी औषधी तैयार की जाती है। तत्पश्चात् इस रेडियोधर्मी औषधि को किसी भी प्राकृतिक रसायान जैसे ग्लूकोज, डोपा आदि के साथ संयोजित करके एक विकिरण अनुरेखक (रेडियोट्रेसर) का निर्माण किया जाता है। अब जब भी यह विकिरण अनुरेखक रोगी के शरीर में मौजूद होगा तो यह रोगी के शरीर के उन हिस्सों में जाएगा जो हिस्से रेडियोधर्मी औषधी से बंधे प्राकृतिक रासायनिक पदार्थ का इस्तेमाल करते हैं। उदाहरण के लिए फ्लोरोडिऑक्सी ग्जूकोज जो कि एक रेडियोधर्मी पदार्थ है, को ग्लूकोज के साथ संयोजित करके एक विकिरण अनुरेखक तैयार किया जाता है। इसके बाद यह विकिरण अनुरेखक शरीर के उन हिस्सों में जाएगा जो हिस्से ग्लूकोज का प्रयोग सामान्य कोशिकाओं की तुलना में ऊर्जा प्राप्त करने के लिए अधिक करते हैं जैसे कि कैंसर की गांठों वाले ऊतक।

रोगी के शरीर में इस विकिरण अनुरेखक के विघटन के बाद पॉजीट्रॉन उत्पन्न होते हैं । पैट् तकनीक में इन पॉजीट्रॉनों के विघटन से उत्पन्न ऊर्जा का प्रयोग संगणक स्क्रीन पर त्रि–आयामीय प्रतिबिम्ब का निर्माण करने में होता है। विकिरण अनुरेखक के विघटन का अनुकरण करते हुए पैट् प्रतिबिम्ब हमें इस बात की जानकारी देता है कि शरीर के विभिन्न हिस्से किस प्रकार से कार्य करते हैं। इसके बाद एक नाभिकीय औषधि विशेषज्ञ इस प्रतिबिम्ब का अध्ययन करके पैट् स्कैन की अन्तिम रिपोर्ट (प्रतिवेदन) तैयार करता है।

पैट् स्कैन किस प्रकार सम्पन्न किया जाता है?

पैट् स्कैन कराने के लिए रोगी को 06 से 08 घंटे बिना कुछ खाए–पीए (खाली पेट) रहना पड़ता है। पैट् स्कैन कराने से पूर्व चाय पीना भी वर्जित है। इसके बाद रोगी के हाथ में बहुत अल्प मात्रा में विकिरण अनुरेखक का एक टीका लगाया जाता है। यह विकिरण अनुरेखक करीब 30 से 40 मिनट में शरीर के उन हिस्सों में पहुंचता है जिसका प्रतिबिम्ब लेना है। इस समय के दौरान रोगी का चलना–फिरना एवं बात करना वर्जित होता है।

इसके बाद रोगी को स्कैनिंग के लिए पैट् स्कैनर नामक जांच कक्ष में ले जाया जाता है। एक स्कैन करने में प्रायः 20 से 30 मिनट का समय लगता है।

परिणाम

एफ डोपा के परिणाम सभी रोगियों में सकारात्मक थे। एफ.डी.जी. के परिणाम केवल सात रोगियों में ही सकारात्मक थे।

सभी 15 रोगियों में इन दोनों रेडियो अनुरेखकों के अन्तर्ग्रहण का विश्लेषण स्टैडाराइज्ड अपटेक ब्ल्यू और ट्यूमर टू सामान्य अनुपात के द्वारा किया गया ताकि रोग के निदान के संदर्भ में इनकी सटीकता निर्धारित की जा सके।

अमीनो अम्ल और प्रोटीन कैटाबोलिजम मस्तिष्क ऊतकों की तुलना में अधिक बढ़ जाता है। इसी कारण अमीनों अम्ल पर आधारित रेडियो अनुरेखक जैसे एफ डोपा, मस्तिष्क कैंसर के निदान में अधिक विशिष्ट और संवेदनशील है।

एफ डी जी के सकारात्मक परिणाम केवल सात रोगियों में पाए गए पर प्रतिबिम्ब कॉन्ट्रास्ट और गांठ परिसीमन निम्न श्रेणी के थे।

निष्कर्ष

कम स्तर के ग्लायोमा के निदान में एफ डोपा के प्रतिबिम्ब सभी रोगियों में एफ डी जी की तुलना में श्रेष्ठ हैं। अर्थात् एफ डोपा की विशिष्टता और संवेदनशीलता मस्तिष्क कैंसर के निदान में अति उत्कृष्ट है।

सामाजिक कौशल और खुशी में संबंध

संदीप पांचाल एवं ह ल जोशी*
[illegible] दिल्ली
*[illegible]

सारांश

इस अध्ययन का उद्देश्य युवाओं में खुशी और सामाजिक कौशल के संबंधों का पता लगना है। यह अध्ययन 200 स्नातक और स्नातकोत्तर (76 पुरुष और 124 महिला) छात्रों को लेकर किया गया हैं जिनकी आयु 18 साल से लेकर 24 हैं ऑक्सफोर्ड खुशी सूची (ओ एच आई) अर्गयले, मार्टिन, और क्रोस्स्लंद (1989), और सामाजिक कौशल सूची (एस एस आई) रिग्गिआ (1986) को सभी उत्तरदाताओं पर संचालन किया गया। प्राप्त डेटा का विश्लेषण वर्णनात्मक सांख्यिकी और सहसंबंध विश्लेषण द्वारा किया गया। इस अध्ययन के परिणाम से यह पता चलता है कि उच्च खुशी और कम खुशी समूह के युवा भ. ावनात्मक संवेदनशीलता, सामाजिक अभिव्यक्ति और सामाजिक नियंत्रण चर पर काफी अलग है। सहसंबंध विश्लेषण से पता चला है कि खुशी चर भावनात्मक संवेदनशीलता, सामाजिक अभिव्यक्ति, और सामाजिक नियंत्रण के साथ सकारात्मक रूप से संबंधित हैं।

प्रस्तावना

स्चुमकेर और हजेल (1984) सामाजिक कौशल को परिभाषित करते हुए किसी भी संज्ञनात्मक प्रक्रिया या प्रकट व्यवहार जिसमें एक व्यक्ति एक अन्य व्यक्ति के साथ बातचीत में व्यस्त होता है (422) । संज्ञानात्मक कार्यों में सहानुभूति या अन्य लोगों की भावनाओं को समझने, भेदभाव और सामाजिक कोड के बारे में अनुमान लगाने, और भविष्यवाणी व सामाजिक व्यवहार के परिणामों का मूल्यांकन शामिल होता हैं। प्रकट व्यवहार में गैर मौखिक (उदाहरण के लिए, आंख से संपर्क, चेहरे की अभिव्यक्ति) और मौखिक व्यवहार (जैसे, भाषण) सामाजिक अभिव्यक्ति के घटक में शामिल होता हैं। सामाजिक कौशल एक कौशल का समूह है जिसमे सूचनाओं का कोड, भेजने, मौखिक और गैर मौखिक सूचनाओं को रगुलेट करने व सकारात्मक और अनुकूली सामाजिक संबंधों को बढ़ाने की सुविधा प्रयुक्त होती है (रिग्गिओ, 1986), खुशी शब्द को अंग्रेजी मे हप्पिनेस्स कहा जाता है। हप्पिनेस्स चर सबजेकटिव वेल बीइंग का भावनात्मक तत्व है जिसका मतलब सकारात्मक भावनाओ का अधिक होना व नकारात्मक भावनाओ का कम होना होता है। हप्पिनेस्स को कई सबजेकटिव वेल बीइंग के नाम से प्रयोग किया जाता है। खुशी और सामाजिक कौशल का एक दूसरे से गहन संबंध है। बहुत सारे अध्ययनों मे इस संबंध की पुष्टी हूई है। जैसे डिएनेर और सेलिगमन (2002) ने एक अध्ययन में यह पाया गया कि बहुत खुश लोग कम खुश लोग के समूहों की तुलना में अत्यधिक सामाजिक, मजबूत, रोमांटिक और अन्य करीबी सामाजिक रिश्तों के साथ होते है। उन्होंने यह भी निष्कर्ष निकाला कि अच्छे सामाजिक संबंधों का होना खुशी के लिए आवश्यक हैं। एक अध्ययन के द्वारा, ल्युबोमिरर्की, राजा, और डिएनेर (2005) से पता चला है कि खुश लोग जीवन के कई आयामों में सफल रहते हैं और इस सफलता की वजह कम से कम उनकी आंशिक रूप से खुशी है। खुश लोग अधिक सामाजिक, परोपकारी, और

सक्रिय होते है, उनकी अधिक मजबूत शरीर और प्रतिरक्षा प्रणाली व अच्छे संघर्षशील होते है। ल्युबोर्निओस्की और उसके सहयोगी (2006) ने एक अध्ययन मे यह पाया कि मूड और मनमौजी लक्षण, सामाजिक रिश्तों, जीवन में उद्देश्य, और वैश्विक जीवन संतुष्टि खुशी की सबसे अच्छी भविष्यवाणी करते हैं।

उद्देश्य

1. उच्च और निम्न खुशी समूहों के युवाओं के बीच सामाजिक कौशल पर अंतर की जांच करना।
2. युवाओं के बीच खुशी और सामाजिक कौशल के संबंधों का अध्ययन करना।

परिकल्पना

1. उच्च खुशी समूह सामाजिक कौशल पर कम खुशी समूह की तुलना में उच्च स्तर दिखाते हैं।
2. खुशी सामाजिक कौशल के साथ सकारात्मक रूप से संबंधित है।

विधि

नमूना

वर्तमान अध्ययन 200 स्नातक और स्नातकोत्तर छात्रों को लेकर किया गया है (पुरुष समूह में 76 और महिला समूह में 124) प्रतिभागियों की उम्र 18 से लेकर 24 साल और औसत आयु 21 साल है। नमूना–स्तरीकृत यादृच्छिक नमूना द्वारा गर्ल्स कॉलेज और पंजाब यूनिवर्सिटी चंडीगढ़ से लिया गया है।

उपकरण

1. ऑक्सफोर्ड खुशियाँ सूची (ओ. एच. आई.) ऑक्सफोर्ड खुशी इन्वेंटरी अर्गयले, मार्टिन, और क्रोस्स्लंद (1989) द्वारा विकसित किया गया है।
2. सामाजिक कौशल सूची (एस. एस. आई.) सामाजिक कौशल सूची (एसएसआई) रिग्गिओ (1986) द्वारा विकसित एक व्यापक आत्म रिपोर्ट उपाय के रूप में सामाजिक संचार कौशल का आकलन करने के लिए डिजाइन किया गया है।

प्रक्रिया

संबंध स्थापित और उचित शिक्षा प्रदान करने के बाद ऊपर वर्णित साइको– मेट्रिक उपकरण द्वारा प्राप्त डेटा का विश्लेषण वर्णनात्मक सांख्यिकी और सहसंबंध विश्लेषण सांख्यिकीय द्वारा किया गया।

परिणाम और चर्चा

इस अध्ययन का उद्देश्य युवाओं में खुशी और सामाजिक कौशल के संबंधों का पता लगाने के लिए किया गया है। जहाँ तक खुशी और सामाजिक कौशल चर के बीच संबंधों का प्रश्न है?

तालिका 1 के अनुसार परिणाम में यह पाया गया कि खुशी और सामाजिक कौशल के बीच सहसंबंध .16 से लेकर .46 रेंज तक है। खुशी और भावनात्मक संवेदनशीलता सकारात्मक रूप से संबंधित हैं जिसका मूल्य .16 है जो .05 स्तर पर महत्वपूर्ण है। इससे यह पता चलता है कि उच्च भावनात्मक संवेदनशीलता रखने वाले युवाओं में खुशी भी अधिक होती है।

खुशी और सामाजिक अभिव्यक्ति (एसई) के बीच सकारात्मक संबंध पाया गया। जिसका सहसंबंध गुणांक .46 है जो .01 स्तर महत्वपूर्ण है। इससे यह व्याख्या की जा

तालिका 1. पेयरसोन प्रॉडक्ट मोमंट सहसंबंध विधि।

चर	खुशी	भावनात्मक अभिव्यक्ति	भावनात्मक सवेदनशीलता	भावनात्मक नियंत्रण	सामाजिक अभिव्यक्ति	सामाजिक सवेदनशीलता	सामाजिक नियंत्रण
खुशी	-	.08	.16*	.03	.46**	.03	.37**
भा. अ.		-	.13	-.16*	.23**	-.03	.15*
भा. स.			-	-.14*	.41**	.41**	.11
भा. नि.				-	-.12	-.18**	-.05
सा. अ.					-	.11	.34**
सा. स.						-	-.22**
सा. नि.							-

सकती है कि जो युवा सामाजिक अभिव्यक्ति पर उच्च हैं वो खुशी पर भी उच्च स्तर रखते है। खुशी और सामाजिक नियंत्रण सकारात्मक सहसंबद्ध है जो .01 स्तर पर महत्वपूर्ण है। जिसका सहसंबंध गुणांक .37 है। इसका मतलब यह है कि सामाजिक नियंत्रण पर उच्च युवा खुशी पर उच्च स्तर रखते है। सामाजिक कौशल और खुशी के अन्य चर के बीच सहसंबंध गैर महत्वपूर्ण है। जिसमे भावनात्मक अभिव्यक्ति, सामाजिक संवेदनशीलता और भावनात्मक नियंत्रण सम्मिलित हैं।

तालिका 2 के अनुसार यह पाया गया कि भावनात्मक संवेदनशीलता, सामाजिक अभिव्यक्ति सामाजिक नियंत्रण चरो के औसत मे महत्वपूर्ण समूह अंतर पाया गया। इसका मतलब यह है कि उच्च खुशी समूह कम खुशी समूह की तुलना में उच्च स्तर की भावनात्मक संवेदनशीलता, सामाजिक अभिव्यक्ति और सामाजिक नियंत्रण रखता हैं।

एन. एस. = नॉन सींग्निफिकेत

उच्च खुशी समूह और कम खुशी समूह का निम्नलिखित चरो मे महत्वपूर्ण समूह अंतर नहीं पाया गया जैसे भावनात्मक अभिव्यक्ति, भावनात्मक नियंत्रण, और सामाजिक संवेदनशीलता. इससे यह पता चलता है कि उच्च खुशी समूह कम खुशी के युवाओ मे भावनात्मक अभिव्यक्ति, भावनात्मक नियंत्रण, और सामाजिक संवेदनशीलता का स्तर समान होता है।

सामान्य अर्थ में, वर्तमान अध्ययन के निष्कर्ष पहले के निष्कर्षों के समर्थन में हैं। ये निष्कर्ष पहले अनुसंधान के प्रकाश में चर्चा कर रहे हैं। उच्च और निम्न खुशी समूह के लिए महत्वपूर्ण समूह अंतर भावनात्मक संवेदनशीलता, सामाजिक अभिव्यक्ति और सामाजिक नियंत्रण चर पर पाए गए। परिकल्पना 1 उच्च खुशी समूह सामाजिक कौशल पर उच्च स्तर दिखाते हैं (स्वीकार

तालिका 2 समूह अंतर।

चर	कम खुशी समूह		उच्च खुशी समूह		टी मूल्य	पी
	माध्य	विचलन	माध्य	विचलन		
भा. अ.	42.58	4.93	43.72	4.79	1.41	N.S
भा. स.	44.74	6.81	47.92	5.09	7.27	.001
भा. नि.	44.06	5.24	44.90	8.28	.38	N.S
सा. अ.	39.30	7.09	48.24	8.42	33.76	.001
सा. स.	44.46	6.75	46.49	6.21	2.53	N.S
सा. नि.	45.40	8.09	51.40	8.45	13.50	.001

किया जाता है)। कोई महत्वपूर्ण उच्च और निम्न खुशी समूह अंतर नहीं पाया गया भावनात्मक अभिव्यक्ति, भावनात्मक नियंत्रण और सामाजिक संवेदनशीलता चरो पर।

जहाँ तक चर के बीच संबंधों का प्रश्न हैं? वर्तमान अध्ययन का परिणाम में स्पष्ट रूप से संकेत मिलता है परिकल्पना 2 खुशी और सामाजिक कौशल के बीच सकारात्मक संबंध को स्वीकार किया जाता है। परिणाम बताते हैं कि सामाजिक कौशल यानी भावनात्मक संवेदनशीलता, सामाजिक अभिव्यक्ति, और सामाजिक नियंत्रण उपायों के साथ खुशी के सकारात्मक संबंध है। इसी तरह के निष्कर्ष भी अन्य अध्ययनों (Diener और Seligman 2002, Lyubomirsky व उनके सहयोगी, 2005 Demir व उनके सहयोगी, 2012) में देखा गया है। अन्य चरो का खुशी के साथ महत्वपूर्ण सहसंबंध नहीं पाया गया जैसे भावनात्मक अभिव्यक्ति, भावनात्मक नियंत्रण और सामाजिक संवदनशीलता । इस अध्ययन की उपयोगिता युवाओ मे सामाजिक कौशल के स्तर को उच्च बनाना है जिससे कि उनके जीवन मे खुशी व सामाजिक समायोजन के स्तर को बढावा मिल सके।

संदर्भ

1. Argyle, M., Martin, M., & Crossland, J. (1989). Happiness as a function of personality and social encounters. In J. P. Forgas, & J.M. Innes (Eds.), Recent advances in social psychology: An international perspective. North Holland: Elsvier Science Publishers.
2. Schumaker, J., & Hazel, J. (1984). Social skills assessment and training for the learning disabled: Who's on first and what's on second? Part1. Journal of Learning Disabilities, **17,** 422-430.
3. Riggio, R. E., & Carney, D. R. (2003). Social skills inventory manual (Second ed.): Mind Garden.
4. Demir, M.J., Bilyk, J.N., & Ariff, MR. (2012) Social skills, friendship and happiness: a cross-cultural investigation. Journal of Social Psychology**152** (3):379-85.
5. Diener, E., & Seligman, M.P.G. (2002). Very happy people. Psychological science, **13** (1), 18-24.
6. Lyubomirsky, S., King, L., & Diener, E. (2005). The benefit of frequent positive affect: does happinessvlead to success? Psychological Bulletin, **131**, 803-805.

रसायनिक रूप से परिवर्तित स्टार्च की खाद्य पदार्थों की गुणवत्ता बढ़ाने में भूमिका एवं उपयोगिता

देव कुमार यादव एवं प्रकाश ई पत्की
रक्षा खाद्य अनुसंधान प्रयोगशाला, मैसूर, कर्नाटक

प्रस्तावना

प्रकृति में पाये जाने वाले खाद्य पदार्थों का एक मुख्य घटक स्टार्च होता है जो अधिकतर पौधों में प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। इसके दो मुख्य घटक होते हैं; एमाइलोस/amylose (20–35 प्रतिशत) और एमाइलोपेक्टिन/amylopectin (65–80 प्रतिशत)। शुद्ध एकल स्टार्च सफेद रंग, स्वाद रहित, गंध रहित तथा शीतल जल में अघुलनशील होता है। स्वाभाविक स्टार्च को खाद्य पदार्थो में मुख्यतः संरचना की स्थिरता (stability) एवं संगठन (texture) को नियंत्रित करने हेतु उपयोग मे लाया जाता है, परंतु कुछ कमियों जैसे–ऊष्मीय विघटन (thermal dissociation), अपरूपण प्रतिबल के विरुद्ध प्रतिरोध (resistance to shear stress), ऊष्मीय प्रसंस्करण (thermal processing) के प्रति अति संवेदनशीलता के कारण खाद्य प्रसंस्करण हेतु अधिक उपयोगी सिद्ध नहीं होते हैं। इन्हीं कमियों को दूर करने के लिए स्टार्च को आशोधित (modify) किया जाता है। स्टार्च रूपान्तरण के द्वारा इसके भौतिक एवं रासायनिक गुणों जैसे– जैली तापमान (Gelatinization temperature), जल तथा तैलीय पदार्थों को शोषित करने की क्षमता, स्फीतिदर (syneresis), निम्न तथा उच्च पी एच पर संगठनात्मक स्थिरता को परिवर्तित किया जाता है। प्रस्तावित अध्ययन मे इसी प्रकार से गेंहू के स्टार्च एवं चना दाल के स्टार्च का ऐसीटिलीकरण (एस्ट्रिफिकेसन) द्वारा रसायनिक परिवर्तन पर ध्यान केंद्रित किया गया है।

कार्य का विवरण

गेहूं एवं चना दाल में कार्बोहाइड्रेट के अतिरिक्त काफी मात्रा में प्रोटीन एवं वसीय घटक उपस्थित होते हैं, अतः शुद्ध स्टार्च प्राप्त करने हेतु इन घटकों को पृथक करना एक चुनौतीपूर्ण कार्य था। अतः सर्वप्रथम पिसे हुए गेहूं एवं बेसन को कार्बनिक विलयकों (organic solvents) की सहायता से वसा रहित किया गया। तत्पश्चात प्राप्त पाउडर को पानी में मिश्रित किया गया और क्षारीय दशा मे प्रोटीन अपघटक को अपकेंद्रण (सेंट्रीफ्यूज) करके निथारण विधि (scrap off) द्वारा अलग कर लिया गया। चूंकि बेसन में प्रोटीन एवं रजक पदार्थों की मात्रा अधिक थी, अतः इससे शुद्ध स्टार्च प्राप्त करने की प्रक्रिया अपेक्षाकृत अधिक जटिल सिद्ध हुई। लगातार प्रयोगों के पश्चात शुद्ध स्टार्च प्राप्त करने में सफलता प्राप्त हुई। इसके पश्चात शुष्कीकृत शुद्ध स्टार्च को ऐसीटिक एनहाइड्रेट की सहायता से ऐसीटिलित किया गया। इस रसायनिक अभिक्रिया में क्षारीय रसायन, उत्प्रेरक (catalyst) एवं पी एच दशायें अतिमहत्वपूर्ण भूमिका अदा करती हैं।

महत्त्वपूर्ण पारिणाम एवं उपयोगिता

1. आशोधित स्टार्च में एसीटल ग्रुप (>C=O)के जुड़ाव को एफ टी आई आर (F T I R) मशीन द्वारा प्राप्त ग्राफ से प्रमाणित किया गया।
2. अभिक्रिया का तापमान (50–90 से), रसायनों की सांद्रता (4–10 प्रतिशत) एवं समय (10–30

मिनिट) बढ़ाने से आशोधित स्टार्च में प्रतिशत एसीटल मात्रा एवं प्रतिस्थापन डिग्री (degree of substitution) बढ़ जाती है। परन्तु स्टार्च में प्रतिशत एसीटल मात्रा एवं प्रतिस्थापन डिग्री स्टार्च की प्रकृति (nature of starch) पर भी निर्भर करती है।

3. ऐसीटिलीकरण अभिक्रिया के पश्चात प्राप्त आशोधित स्टार्च का जैलीकरण तापमान (gelatinization temperature) घट जाता है ऐसा इसलिये होता है क्योंकि एसीटल ग्रुप (>C=O) स्टार्च कणों के रवाहीन भाग (amorphous region) पर जुड़कर उसकी बनावट एवम संगठन को कमजोर कर देता है और एमाइलोपेक्टिन के द्विबंध छल्ले (double bonded helices) शीघ्रता से टूट जाते हैं। अतः ऐसीटिलित स्टार्च का उपयोग उन सभी प्रसंस्करण प्रक्रियाओं में कर सकते है, जहां गाढ़ेपन की आवश्यकता कम तापमान पर होती है। किये गये अध्ययन में आशोधित स्टार्च की इसी विशेषता का उपयोग करके सूप बनाया गया जो कम तापमान पर पर्याप्त गाढ़ापन प्राप्त कर लेता है।
4. आशोधित स्टार्च में जल को आशोधित करने की उच्च सामर्थ्य भी विश्लेषित की गयी अतः इसका उपयोग रोटी बनाने वाले आटे के साथ किया गया और पाया गया कि लंबी अवधि के भंडारण के पश्चात भी रोटी अधिक मुलायम रहती है।
5. श्यनता परीक्षण (viscosity profile) में यह पाया गाया कि आशोधित स्टार्च की विभिन्न श्यानतायें एवं पेस्टिंग तापमान मूल स्टार्च से कम थीं क्योंकि आशोधित स्टार्च नर्म प्रकृति का एक पतला जैल बनाता है। आशोधित स्टार्च का जेल साधारण स्टार्च की अपेक्षा कम चिपचिपा होता है। इसका कारण है कि एसीटिल ग्रुप (>C=O) एमाइलोज एवं एमाइलोपेक्टिन के कणों को आपस में सघन रूप से जुड़ने से रोकता है।
6. ऐसीटिलित स्टार्च में उच्च तापमान पर जमाव के बाद पिघलाने की प्रक्रिया (freeze thaw stability) के दौरान स्थिरता पायी गायी।
7. ऐसीटिलित स्टार्च अधिक घुलनशील तथा इसका जैल साधारण स्टार्च की अपेक्षा अधिक पारदर्शी एवम साफ था।
8. चूंकि जैल जल्दी एवं कम तापमान पर बनता है अतः प्रसंस्करण में ऊर्जा एवं समय दोनों की खपत कम होती है, फलस्वरूप खाद्य प्रसंस्करण उद्योग मे अधिक मुनाफा कमाया जा सकता है।

निष्कर्ष

किये गये प्रयोगों, प्राप्त आकडों एवं पूर्व किये गये अनुसंधानों के प्राप्त जानकारी से यह निष्कर्ष निकलता है कि ऐसीटिलीकरण एक प्रतिस्थापन अभिक्रिया है जो स्टार्च कणों की आंतरिक संरचना को परिवर्तित/आशोधित करके उसके मूलभूत गुणों में वांछनीय परिवर्तन करने में सक्षम है। आशोधित स्टार्च का उपयोग खाद्य प्रसंस्करण की उन प्रक्रियाओं में किया जा सकता है, जहॉ कम समय एवं कम तापमान पर जैल बनाने की आवश्यकता है। इनका उपयोग कम तापमान पर भंडारित पदार्थों की गुणवत्ता बढ़ाने हेतु भी किया जा सकता है। खाद्य प्रसंस्करण उद्योग के अतिरिक्त इस अभिक्रिया का उपयोग भेषज, पेंट एवं कपड़ा उद्योग में भी किया जाता है।

वर्षा आधारित चरागाहों के विभिन्न प्रारूपों का बकरी पालन हेतु मूल्यांकन

प्रभात त्रिपाठी, तापस कुमार दत्ता, मनोज कुमार त्रिपाठी, उमेश बाबू चौधरी, तथा रवीन्द्र कुमार
केन्द्रीय बकरी अनुसंधान संस्थान, मखदूम, फरह, मथुरा, उत्तर प्रदेश

सारांश

भारतवर्ष में बकरियां समान्यतः भूमिहीन व सीमान्त जोत वाले कृषकों के द्वारा पाली जाती हैं। ये कृषक बकरियों को परम्परागत चारे जैसे ज्वार, बाजरा, मक्का, बरसीम इत्यादि उपलब्ध नहीं करा पाते हैं। इसके परिणाम स्वरूप बकरियाँ बेकार खाली भूभाग व सडक, नहरों के किनारे चर कर अपना भोजन ग्रहण करती हैं। चराई के उपर्युक्त स्थान सिर्फ वर्षा ऋतु में ही हरे भरे रहते हैं तथा वर्ष के बाकी महीनों में बकरियो के लिए चारे का अभाव रहता है। ऐसी परिस्थिति में बकरियों से आशानुरूप उत्पादन नहीं हो पाता है। अतः बकरियों को उच्च गुणवक्ता युक्त चारा उपलब्ध कराने के लिए चरागाहों के विभिन्न प्रारूप विकसित किये गये तथा उनका मूल्याकंन किया गया। ये चरागाह प्रारूप नामतः बेर आधारित वन चरागाह अंजना घास चरागाह, व प्राकृतिक चरागाह थे। इन चरागाहों के प्रत्येक प्रारूप में बरबरी के छह वयस्क बकरे प्रतिदिन पॉच घण्टे चराये गये तथा सूचक विधि द्वारा इनका अध्ययन किया गया। बेर आधारित वन चरागाह में शुष्क पदार्थ की पाचकता 56.35 प्रतिशत जबकि अंजना घास चरागाह में यह 57.84 प्रतिशत पायी गयी। पशुओं द्वारा शुष्क पदार्थ की ग्राहयता शारीरिक भार के 3.92, 4.59 व 4.44 प्रतिशत क्रमशः वन चरागाह, अंजना घास चरागाह व प्राकृतिक चरागाह में पायी गयी, जबकि कुल पाच्य पोषक तत्व क्रमशः 49.45, 58.82 व 48.31 प्रतिशत थे। तथा पाच्य सरल प्रोटीन क्रमशः 7.29 4.64 व 4.72 प्रतिशत पाये गये। अतः उपयुर्क्त आकडों के आधार पर यह पाया गया कि तीनों ही प्रारूप बकरी पालन हेतु उपयोगी हैं परन्तु बेर अधारित वन चरागाह का पोषक मान बकरी पालन हेतु अधिक है।

परिचय

भारतवर्ष में बकरी पालन मुख्यत सीमान्त व भूमिहीन कृषकों के द्वारा किया जाता है। बकरियां बेकार पड़ी भूमि पर चरकर अपने भोजन की आवश्यकता को पूरा कर लेती है, इसका प्रमुख कारण संसाधन विहीन किसान इन पशुओं को परम्परागत उन्नत चारे प्रदान नहीं कर पाता है। ऐसी दशा में कृषक को बकरी से अपेक्षित उत्पादन नहीं मिल पाता है क्योकि बेकार पड़ी भूमि पर अच्छादित वनस्पतियां पोषण की दृष्टि उतनी सुदृढ नही होती है जो कि बकरियों की जीवन निर्वाह के साथ–2 उत्पादन आवश्यकताओं को पूरा कर सकें। इन बेकार पड़ी भूमियों पर सामान्यतः वर्षा ऋतु में ही वनस्पतियॉ उगती है तथा वर्ष के शेष महीनों में चारे की कमी रहती है। अतः ऐसी भूमियों पर उन्नत चरागाह विकसित करके बकरियों को उच्च गुणवत्ता युक्त चारा उपलब्ध कराया जा सकता है। इसी उददेश्य को ध्यान में रखते हुए चरागाहों के विभिन्न प्रारूपों का यमुना बीहड़ क्षेत्र में मूल्यांकन हेतु एक अध्ययन किया गया।

सामग्री व विधि

यमुना बीहड क्षेत्र में वर्षा आधारित चरागाहों के तीन प्रारूपों का ग्रीष्म ऋतु में अध्ययन किया गया। ये चरागाह क्रमशः बेर आधारित वन चरागाह, अंजना धास चरागाह व प्राकृतिक चरागाह थे, इन चरागाहों के एक–एक हेक्टेअर क्षेत्रफल में बरबरी नस्ल के छह–छह वयस्क नर बकरो को 5 घण्टे प्रतिदिन चराया गया। तथा सूचक विधि द्वारा चरागाहों का मूल्यांकन किया गया। सूचक के रूप में कोमिक आक्साइड को प्रयोग मे लाया गया सूचक की मदद से पशुओ द्वारा चरागाहा से खाए गये चारे की गणना की गयी तथा अन्य सहायक अवयवो का भी रासायनिक विश्लेषण किया गया।

परिणाम

रासायनिक विश्लेषण के उपरान्त चरागाहों के तीनो प्रारूपों में विभिन्न चारा घटकों की पाचकता निम्नलिखित प्रकार पायी गयी।

सारणी 1 के आधार पर यह कहा जा सकता है कि शुष्क पदार्थ की पाचकता प्राकृतिक चरागाह में वन चरागाह व अंजना घास चरागाह की तुलना में क्रमशः 10 व 12 प्रतिशत कम पायी गयी। इसी प्रकार क्रूडप्रोटीन की पाचकता वन चरागाह व अंजना घास चरागाह में क्रमशः 31 व 13 प्रतिशत प्राकृतिक चरागाह की तुलना में अधिक पायी गयी। पशुओं द्वारा वन चरागाह, अंजनाधास चरागाह व प्राकृतिक चरागाह में क्रमशः 3.92, 4.59 व 4.44 शारीरिक भार का प्रतिशत शुष्क पदार्थ ग्राहय किया

सारणी 1.

पाचकता (%)	चरागाहों के प्रारूप		
	वन चरागाह	अंजना घास चरागाह	प्राकृतिक चरागाह
शुष्क पदार्थ	56-35	57-84	51-07
कूड प्रोटीन	60-03	51-79	45-71
ईथर आसव	76-19	73-65	59-22
एन डी एफ	54-08	59-29	53-4
ए डी एफ	52-58	49-9	51-42
कार्बनिक पदार्थ	57-8	61-54	53-61
कुल शर्करा	55-81	62-23	54-52

सारणी 2.

कारक	वन चरागाह	अंजना धास चरागाह	प्राकृतिक चरागाह
कुलपाच्य पोषक तत्व (%)	49-45	58-82	48-31
पचनीय कूड प्रोटीन (%)	7-29	4-64	4-72
शुष्क पदार्थ की ग्राहयता (%) शारीरिक भार	3-92	4-59	4-44

गया (सारणी 2) कुल टेनिन, सघनित टेनिन व कुल फिनॉल का प्रतिशत अन्य चरागाहों की अपेक्षा अंजना घास चरागाह में तुलनात्मक दृष्टि से अधिक पायी गयी (सारणी 3), पशुओं में शारीरिक भार की औसत वृद्धि वन चरागाह प्रारूप में सर्वाधिक पायी गयी जबकि न्यूनतम वृद्वि प्राकृतिक चरागाह में दर्ज

सारणी 3.

कारक	चरागाहों के प्रारूप		
	वन चरागाह	अंजना घास चरागाह	प्राकृतिक चरागाह
कुल टेनिन (%)	1-22	2-59	0-56
कुल संघानित टेनिन (%)	0-077	1-039	0-067
कुल फिनॉल(%)	2-28	3-98	1-37

की गयी, अतः यह कहा जा सकता है कि प्राकृतिक चरागाह की तुलना में वन चरागाह व अंजना घास चरागाह बकरी पालन की दृष्टि से उन्नत है।

संदर्भ

1. ए ओ ए सी 1990, आफीसियल मेथड ऑफ एनालिसिस, पन्द्रहवां संस्करण, एसोसियसन ऑफ आफीसियल एनालिटीकल केमिस्ट वाशिंगटन, डी सी ।
2. गेरिंग एच के और वांन सोयसट पी जे 1970, फॉरेज फाइबर एनालिसिस एपेरेटस, रिएजेन्ट, प्रोसिसर एण्ड सम एप्लीकेशन्स, यूस ए आर एस, एग्रीकल्चर हैण्डबुक न. 379 वाशिंगटन ए डी सी 20402

सूचना और प्रौद्योगिकी क्रांति द्वारा मानव जीवन में लाए गए परिवर्तन

दिव्या मदान, सृष्टि मदान, तथा फूलदीप कुमार*
गंगा प्रौद्योगिकी एवं प्रबंधन संस्थान, झज्जर, हरियाणा
**रक्षा वैज्ञानिक सूचना तथा प्रलेखन केन्द्र, दिल्ली*

सारांश

मनुष्य का विकास तकनीकी ज्ञान पर आधारित है। यह विकास की कहानी आदिमानव से जुड़ी है, जब उसने पत्थर के औज़ार बनाए, पहिये का आविष्कार किया, आग की जानकारी प्राप्त की। प्रौद्योगिकी की शुरूआत वहीं से हुई। मनुष्य और अन्य जीव जंतुओं में यही सबसे बड़ा अन्तर है कि मनुष्य तकनीकी ज्ञान से प्रकृति पर विजय प्राप्त करने लगा है सूचना व प्रौद्योगिकी इस विकास की गति में क्रांति ले आई। जिससे विश्व छोटा हो गया है क्योंकि सूचनाओं का आदान–प्रदान बड़ी तेजी से होने लगा है। इसे सूचना प्रौद्योगिकी की क्रांति कहते हैं।

भूमिका

आज हम सूचना प्रौद्योगिकी के काल में जी रहे हैं। कम्प्यूटर, चल दूरभाष, इंटरनेट व दूरदर्शन ने इस दुनिया को छोटा कर दिया है। हजारों मिलीमीटर दूर दूसरे महाद्वीपों पर रहने वाला आदमी, अंतरिक्ष में काम करने वाले वैज्ञानिक या महासागरों की गहराई में अनुसंधान कर रहे सभी, इन उपकरणों से एक दूसरे के साथ जुड़े हैं। इंटरनेट से जुड़ा मोबाईल फोन आपको दुनिया के किसी भी स्थान की कोई भी सूचना उपलब्ध करा देता है। इसे हम यह भी कह सकते हैं कि दुनिया की कोई भी चीज़ मेरी जेब से बाहर नहीं है। यह सब सूचना प्रौद्योगिकी का जादू है।

मनुष्य के विकास की कहानी सिर्फ 250 वर्ष ही पुरानी है, जब औद्योगिक क्रांति का जन्म हुआ। आदि मानव जंगलों में पशु–पक्षियों के साथ प्राकृतिक वातावरण का एक अंग बनकर रहता था। धीरे–धीरे उसने पत्थर के औज़ार बनाए, जंगली जानवरों का शिकार किया। एक स्थान पर खेती की व पशुओं को अपने भोजन के लिए पालना शुरू किया। पत्थर के औजार, पहिये का आविष्कार, आग की जानकारी प्रौद्योगिकी की शुरूआत थी। प्रौद्योगिकी का जन्म हुआ तो मानव का विकास बड़ी तेजी से शुरू हुआ। औद्योगिक क्रांति, कोयले व पैट्रोलियम का उर्जा के लिए प्रयोग, हरित क्रांति, श्वेत क्रांति, नीली क्रांति ने मनुष्य को प्राकृतिक वातावरण पर विजय प्राप्त करने में सहारा दिया। जंगलों में झोपड़ियों में रहने वाला मनष्य अब बड़े–बड़े शहरों में ऊंची–ऊंची इमारतों में रहता है। अब वह मनुष्य चाँद और मंगल गृह पर छुट्टियां मनाने की योजना बना रहा है। परिवहन व संचार के साधनों ने मनुष्य द्वारा किए जाने वाले विभिन्न क्रिया–कलापों की गति बढ़ा दी है।

संचार के साधन जैसे डिश–टी वी, टैबलेट, आईफोन आदि उपकरणों ने अतिसूक्ष्म (Nano Technology) के सहारे सूचना व विचारों के आदान–प्रदान ने जो गति व गुणवत्ता आई है, इसे हम सूचना प्रौद्योगिकी की क्रांति का नाम देते हैं।

इससे हम सब मनुष्यों को निम्नलिखित फायदे हुए हैं–

(क) अंतर्राष्ट्रीय अर्थ व्यवस्था के साथ आम आदमी का जुड़ना।

(ख) विश्व में घट रही विभिन्न राजनैतिक, आर्थिक व सामाजिक क्रियाकलापों की जानकारी मिलना।

(ग) अन्तर्राष्ट्रीय चिकित्सा के क्षेत्र में जो नए–नए अनुसंधान व प्रयोग हो रहे हैं उनकी जानकारी को विश्व के जन–जन तक पहुंचाना।

(घ) ओलंपिक खेल, विश्व–कप, हॉकी, क्रिकेट, फुटबोल आदि खेलों के सीधे प्रसारण ने खेल प्रेमियों के उत्साह व ज्ञान का नया स्तर उजागर किया है।

(ड़) हॉलीवुड, बॉलीवुड, गंगनम स्टाईल, कोलावैरी डी या फैशन शो आदि मनोरंजक घटनाओं से दूरदराज गाँवों में रहने वाले व्यक्ति भी इंटरनेट द्वारा डाउनलोड करने लगे।

(च) शिक्षा के क्षेत्र में आधुनिकतम शिक्षा सामग्री या प्राचीन साहित्य, एडुसैट (edusat), स्मार्ट कक्षा (Smart classroom) आदि सुविधाएं विश्व के किसी भी कोने से आदान–प्रदान हो सकती है।

(छ) सूचना प्रौद्योगिकी ने विश्व के बाजारों में आपसी स्पर्धा को बढ़ावा दिया है। आज हम छोटी से छोटी व बड़ी से बड़ी वस्तु का दाम व उसकी खरीदारी डेबिट कार्ड, क्रेडिट कार्ड से कर सकते हैं।

(झ) अपनी योग्यता व पसन्द के अनुसार नौकरी, जीवन साथी, शैक्षिक स्थानों में प्रवेश, सूचना प्रौद्योगिकी के बल पर आसान हो गया है।

आज के आधुनिक दौर में जीवनयापन करने के लिए मानव का अपने अधिकारों के प्रति जागरूक होना अति आवश्यक है। लेकिन भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में अधिकतम लोग अशिक्षित है। ऐसे में सूचना प्रौद्योगिकी एक बहुत बड़ा सहारा है। इसमें सबसे बड़ा योगदान टेलीविजन और समाचार पत्रों का है। इन यंत्रों के माध्यम से लोग अपने अधिकारों के प्रति जागरूक होते हैं। आज दूर गाँवों में बैठे लोगों को कन्जूमर कोर्ट और आर टी आई (RTI) जैसी चीज़ों की जानकारी प्राप्त होती है।

लेकिन सूचना प्रौद्योगिकी की क्रांति ने असामाजिक तत्वों, साइबर अपराध (Cyber Crime), पार्नेग्राफी (Pornography), हैकिंग (Hacking), फिरोती, गुंडागर्दी को भी बढ़ाया है। जिससे समाज को जागरूक करना होगा व एक सुन्दर और सुरक्षित विश्व की ओर अग्रसर होना होगा ताकि आगे आने वाली पीढ़ियाँ सुख से रह सके।

हरित विपणनः सतत् विकास का साधन

पूनम हुड्डा एवं सुनील कुमार शर्मा
गंगा प्रौद्योगिकी एवं प्रबंधन संस्थान, झज्जर, हरियाणा

परिचय

हरित विपणन आज हमारी जरूत बन चुका है, परन्तु इसका विकास पर्यावरणवाद के रूप में 1950 में शुरू हो चुका था। समय–समय पर इससे सम्बन्धित आन्दोलन हमारा ध्यान हरित विपणन की ओर खींचते रहे हैं। साधनों के दुरूपयोग तथा पर्यावरण प्रदुषण ने आज हमें अन्तिम अवस्था पर पहुँचा दिया है, जहाँ हम वैश्विक ताप वृद्धि जैसी दिक्कत का सामना कर रहे हैं।

हरित विपणन को बचावात्मक ही नहीं बल्कि अति हरितवाद के रूप में आज प्रयोग किया जा रहा है, क्योंकि यह संस्थानों/संगठनों के लिए लाभकारी भी सिद्ध हो रहा है।

हरित उत्पादों के प्रचार में विपणन का योगदान तथा सतत् विकास

उपभोक्ता हरित उत्पादों के प्रति विविध प्रकार का नजरिया रखते हैं। उपभोक्ताओं का यह नजरिया हरित उत्पादों की सफलता में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। जे एम गिन्सबर्ग व पी एन ब्लूम के अनुसार 6 प्रतिशत उपभोक्ता पर्यावरण के बारे में औसत से अधिक जागरूक रहते हैं, परन्तु हरित उत्पादों को उपभोक्ताओं तक पहुंचाने और प्रस्तुति करने की सही विधि बाजार के एक बड़े भाग को भागीदार बना सकती है। भारत की 12वीं पंचवर्षीय योजना में सतत् विकास को एक महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। सतत् विकास का अर्थ है– आने वाली पीढ़ियों को संसाधनों और विकास से वंचित किए बिना विकास करना। इसका अर्थ है कि विकास को लम्बे समय तक बनाए रखना। संसाधनों को संचित करने में हरित विपणन महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। संस्थानों व संगठनों द्वारा हरित विपणन अपनाए जाने के लिए केवल आजकल इस शब्द का बहुत चर्चा में होना या देश व वातावरण की जरूरत होना ही काफी नहीं है। जब तक संस्थानों व संगठनों को इससे लाभ होने की संभावनाएं नहीं होती इसे अपनाया नहीं जा सकता।

हरित विपणन से संगठनों को लाभ

उपभोक्ताओं की जागरूकता

बढ़ती साक्षरता व मीडिया के बढ़ते योगदान से आज का उपभोक्ता दूषित होते वातावरण और संसाधनों के दुरूपयोग के बारे में जागरूक हुए हैं। देश–विदेशों में होने वाले विभिन्न कार्यक्रमों की सूचनाएँ आम लोगों तक पहुँच रही है। उपभोक्ताओं की यह जागरूकता संस्थानों और संगठनों के लिए हरित उत्पादों व सेवाओं को उपयोग के लिए रजामद कर रही है।

उपभोक्ताओं की हरित उत्पादों के बारे में बढ़ती जागरूकता और इसके बारे में अति प्रचार में उपभोक्ताओं का रूझान बढ़ा है। वे गैर हरित उत्पादों की तुलना में हरित उत्पादों को खरीदना अधिक पसंद करते हैं। लेकिन कुछ अनुसंधानों के अनुसार उपभोक्ता परम्परागत उत्पादों की विशेषताओं के साथ समझौता करने को तैयार नहीं होते तथा ऊंची कीमतों को देखते ही पर्यावरण से विमुख हो

जाते हैं। फोर्ड मोटर के द्वारा बाजार में उतारी गयी विद्युत चालित कार जिसे पचास मील चलाने के बाद 6 घंटे के लिए चार्ज करना पड़ता था को उपभोक्ताओं ने नापसंद कर दिया क्योंकि यह उनके परिचालन की आदतों में बदलाव ला रही थी।

संगठनों व संस्थानों की छवि

कुछ संगठन व संस्थाएं अपनी सामाजिक जिम्मेदारी निभाने वाली छवि को बनाने के लिए, हरित उत्पादों या पर्यावरण सुरक्षा के उत्थान के लिए कार्यरत रहती है। उपभोक्ता भी ऐसी संस्था या संगठन के साथ अपने आप को जोड़ना चाहते हैं। उदाहरण के लिए Idea Co. के द्वारा कागज मुक्त कार्यों को प्रोत्साहन देने के बारे में प्रचार करके उपभोक्ताओं के दिमाग में अलग छवि बनाई।

संगठनों का लम्बावधि विकास

आज के युग में संगठन लघु अवधि की बजाय लम्बे समय तक अपने विकास को बनाए रखने के लिए अधिक चिंतित है। उपभोक्ताओं के दिमाग में अच्छी छवि बनाने के साथ–साथे हरित विपणन को वस्तु भेदभाव के रूप में भी उपयोग किया जा सकता है। यह संगठन की बाजार में हिस्सेदारी को भी बढ़ावा देता है। यह संगठनों को प्रतिस्पर्धात्मक लाभ भी प्रदान करता है।

हरित विपणनः विकास का साधन

सतत् विकास संसाधनों के संचयन से सम्बन्ध रखता है। संसाधनों को हम दो भागों में बांट सकते हैं (1) प्राकृतिक (2) मानव निर्मित। सतत् विकास, विकास की दर से नहीं बल्कि विकास की प्रकृति का भी समावेश करता है। एक ऐसा विकास जिसमें साधनों का दुरूपयोग हो रहा है, वह धारणीय नहीं हो सकता। हरित विपणन संसाधनों के सदुपयोग में महत्वपूर्ण भूमिका निभा कर सतत् विकास का अहम् स्तम्भ बन सकता है।

हरित विपणन हानिकारक पदार्थों के उपयोग को कम करके उत्पादन की सामाजिक लागत को कम करता है। उत्पाद का पुनः चक्रीकरण व पुनः प्रयोग करके साधनों को बचाया जा सकता है। उपभोक्ता की यह धरणा की उत्पाद में जितना भाग पदार्थ का पुनः चक्रित होता है उतना ही वह मूल्य को कम कर देता है को बदलने के लिए प्रचार आवश्यक है। क्षेत्रीय जरूरतों को पूरा करने के लिए वहीं के साधनों का प्रयोग किया जा सकता है। लागत को कम करने के लिए बड़े स्तर पर उत्पाद किया जाता है। यदि क्षेत्रीय उत्पादों का आकार प्रकार बड़े पैमाने के उत्पादों जैसा रखा जाए तो यह उत्पादों के पुनः प्रयोग की सम्भावनाओं को बढ़ा देता है।[1] यह मरम्मत में भी सहायक होता है। Durable Products भी साधनों के बचाव में सहायक होते हैं, लम्बे समय तक चलने वाले उत्पाद उसे बार–बार उत्पादन करने के लिए जरूरी संसाधनों की बचत करते हैं।[2]

धारणीय उत्पाद रचना

हरित उत्पादों का उपभोक्ताओं द्वारा स्वीकार किया जाना बहुत आवश्यक है। इसके लिए हरित उत्पादों के प्रचार–प्रसार तक ही सीमित नहीं रहा जा सकता बल्कि उत्पादन की तकनीक व उत्पादन के नियोजन में भी हरित कारक को शामिल करना पड़ेगा। उत्पाद के नियोजन से पहले हमें वातावरण की जरूरतों के बारे में आंकड़े एकत्र करने पड़ते हैं। ताकि उत्पादों को आन्तरिक व बाहरी वातावरण की जरूरतों के अनुसार नियोजित किया जा सके। यहाँ आन्तरिक वातावरण से अर्थ है संस्थानों के भागीदारों की जरूरतें, जिनका पूरा होना हरित उत्पादों के अस्तित्व के लिए बहुत आवश्यक है। संस्थानों का उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए हरित तकनीक उपयोग करना, पर्यावरण का ध्यान रखना तथा स्वयं पर्यावरण को ही उद्देश्य बनाना दो अलग बातें हैं तथा दूसरे विकल्प को अपनाने वाले संस्थान कम ही पाऐ जाते हैं। केवल 50 प्रतिशत ISO14001 प्रमाणित संस्थान ही ऐसे उद्देश्यों को परिभाषित करते हैं तथा उनमें से भी केवल 20 प्रतिशत ही उद्देश्यों को उत्पाद के Design में समायोजित कर पाते हैं।

पर्यावरण की जरूरतों के अलावा उत्पाद का पर्यावरण पर प्रभाव देखना बहुत आवश्यक है। इसमें वस्तु का उपयोग (function) तथा उसे निपटाना बहुत आवश्यक पहलू है। कार का function परिवहन है कोई भी नई खोज जो पैट्रोल की खपत को कम करके इसके बुरे प्रभाव को कम कर सकती है। उत्पादन के निपटान में Smart materials का उपयोग तथा Dissembling की विधियों को विकसित करना महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।[2] विभिन्न प्रकार की वस्तुओं की dissembling के बिना किसी झंझट के पुनः चक्रित किया जा सकता है। जैसे कि फर्नीचर तथा विद्युत चालित यंत्र। केवल कुछ हिस्सों को बदलकर व थोड़ी बहुत मरम्मत के बाद इन्हें पुनः प्रयोग के लायक बनाया जा सकता है। इस तरह उत्पादों की रचना से साधनों की बचत की जा सकती है।

वातावरण में प्रदूषण एक वैश्विक मुद्दा है। सभी देशों के प्रयास ही इसमें सहयोगी हो सकते हैं। विपणन को साधनों के बचाव के लिए महत्वपूर्ण हथियार की तरह प्रयोग किया जा सकता है। विपणन का काम है उपभोक्ताओं की जरूरतों के अनुसार वस्तुएं उनके हाथों तक पहुंचाना। विपणन के हरित Ps इसमें सहायक सिद्ध हो सकते हैं। हरित उत्पाद, कीमतें, packaging, प्रचार व placing (स्थानान्तरण) ही हरित विपणन कहलाता है। इसकी महत्वपूर्ण शुरूआत उत्पादन के नियोजन से शुरू होती है। इसी स्तर पर हम उत्पाद के उत्पादकों तथा उपभोक्ताओं के द्वारा इसके स्वीकार्य होने को निश्चित करते हैं। वस्तु के जीवन चक्र को अध्ययन किया जाना बहुत आवश्यक है ताकि वस्तु से होने वाले प्रभाव को पूरी तरह से जाना जा सके।

निष्कर्ष

विपणन एक ऐसी महत्वपूर्ण कड़ी है जिसके द्वारा हम साधनों के दुरूपयोग तथा वस्तुओं के वातावरण पर बुरे–प्रभाव को रोक सकते हैं। गैर हरित उत्पादों को हरित उत्पादों द्वारा replace करने में विपणन के योगदान को हम कम नहीं आंक सकते। प्रस्तुत पेपर उन सभी पहलुओं पर प्रकाश डालता है जो विपणन से संबंधित है तथा सतत् विकास में सहायक सिद्ध हो सकते हैं।

संदर्भ

1. SPRU at the University of Sussex and Ernst & Young Ltd., Integrated Product Policy Commissioned by European Commission: DGXI, March 1998.
2. Article on 'Active Disassembly' (page 30) by Chiodo, Billett and Harrison of Brunel University.
3. Ginsberg, JN, 'Choosing the Right Green Marketing Strategy', Bloom Paul N, MIT SLOAN Mgmt. Review (pages 80-81).
4. Fussler, C and James, P. (1996), Driving Eco Innovations: A break through discipline for Innovation and sustainability. Londor, Pitman Publishing.
5. Walker, Stuart (Oct. 1998),'Experiments in sustaible product design', The Journal of sustainable product design, Pages 46 & 47.

शीतोष्ण फल आनुवांशिक संसाधनों के संरक्षण हेतु जैव प्रौद्योगिक दृष्टिकोण

संध्या गुप्ता
राष्ट्रीय पादप आनुवांशिक संसाधन ब्यूरो, नई दिल्ली

सारांश

शीतोष्ण फल अपने स्वाद व पोषण मूल्यों के लिए लगाए जाते हैं। फसल सुधार कार्य तथा भावी पीढ़ियों के प्रयोग के लिए पादप आनुवांशिक संसाधनों के संरक्षण की अत्यधिक आवश्यकता है। इसके लिए दो विकल्प प्रचलन में हैं– स्व स्थाने (इन सीटू) एवं बहिः स्थाने (एक्स सीटू) संरक्षण। जननद्रव्यों का बहिः स्थाने (एक्स सीटू) संरक्षणए परंपरागत विधि से जीनबैंक में बीजों का भंडारण कम तापमान पर किया जाता है। चूंकि शीतोष्ण फल प्रजातियाँ कायिक प्रवर्धित हैं अतः वे परम्परागत रूप से फील्ड जीनबैंक में जीवित पौधों के रूप में संरक्षित किए जाते हैं। फील्ड जीनबैंक में जर्मप्लाज्म प्रकृतिक आपदाओं व कीट रोगजनक हमले से नष्ट हो सकता है। इसलिए जैव प्रौद्योगिकी को शीतोष्ण फलों की खेतिहर व जंगली प्रजातियों के आनुवांशिक संसाधनों के संरक्षण के लिए एक वैकल्पिक पद्यति के रूप में इस्तेमाल किया जा रहा है। कायिक प्रवर्धित प्रजातियों तथा अपरम्परागत (रैकल्सीट्रेंट) प्रकार के बीजों के संरक्षण हेतु संपूरक तकनीकों जैसे पात्रे (इन विट्रो) संरक्षण तथा हिमपरिरक्षण आवश्यकता होती है। हिम परिरक्षण में जननद्रव्य को तरल नाइट्रोजेन (–150° से. से –190° से. के तापमान पर) में भंडारण करना सर्वितम विकल्प है। इस विधि से बिना आनुवंशिक परिवर्तन के एवं सीमित संसाधनों लंबी अवधि के लिए भंडारण संभव है। कई राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय संगठनों में इन विट्रो तकनीकियाँ पारंपरिक विधि से जर्मप्लाज्म संरक्षण के साथ–साथ पूरक पद्यति के रूप में प्रचीलित हैं। संरक्षण के तरीकों के विकल्प प्रजातियों के व्यवहार, बुनियादी ढांचे, प्रशिक्षित कर्मियों व प्रौद्योगिकी सहित उपलब्ध संसाधनों पर निर्भर करते हैं। राष्ट्रीय पादप आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, नई दिल्ली, भारत, में स्थित इन विट्रो जीनबैंक में पात्रे संरक्षण विधि का उपयोग शीतोष्ण फल जर्मप्लाज्म संरक्षण के लिए बड़ी सफलता से किया जा रहा है। इस लेख में इसकी विस्तृत चर्चा की जाएगी।

प्रस्तावना

जैव विविधता के सम्पूर्ण परिपेक्ष्य में पादप आनुवांशिक संसाधनों का विशिष्ट स्थान है। जलवायु परिवर्तन के कारण स्व देशी एवं स्थानिक पदप आनुवंशिक विविधता का तेजी से ह्रास हो रहा है जो कि गंभीर चिंता का विषय है। आनुवंशिक संसाधनों का संग्रह व संरक्षण के द्वारा जननद्रव्य को फसल सुधार में उपयोग के लिए उपलब्ध कराया जा सकता है। फसल सुधार एवं विकास कार्यक्रम में आनुवंशिक विविधता मूल रूप से महत्वपूर्ण है।

भारत जैवविविधता के उन 12 वृहद केंद्रों में से एक है जहां 166 मुख्यफसल प्रजातियाँ विकसित हुई हैं। अधिक उपज वाली किस्मों के विकास में आनुवंशिक विविधता का उपयोग करके भारत में हरित क्रांति युग का आगमन हुआ था। जैव विविधता संधि लागू होने के बाद विभिन्न देशों के साथ पादप सामग्री के विनिमय में कमी महसूस कि गयी। अब विभिन्न देशों से समझौते ज्ञापनों के अंतर्गत समय समय पर द्विपक्षीय विनिमय हेतु जनन द्रव्य सामाग्री प्राप्त की जाती है।

भारत शीतोष्ण फल जैव विविधता में भी बहुत धनी है। उत्तर में जम्मू कश्मीर से लेकर नॉर्थ ईस्ट हिल रिजन व दक्षिण में नीलगिरी में शीतोष्ण फल आनुवंशिक संसाधनों की बहुल्यता पाई गई है। अतः इसका उचित संरक्षण उचित व आवश्यक है।

आनुवंशिक संसाधनों के संरक्षण की विधियाँ

आनुवंशिक संसाधनों के संरक्षण के लिए दो विधियाँ व्यापक रूप से प्रयोग में लाई जाती हैं। वे है–स्वस्थाने (इन सीटू) व बहिः स्थाने (एक्स सीटू) संरक्षण। स्व स्थाने (इन सीटू) संरक्षण के द्वारा जैव विविधता को प्रकृतिक वातावरण में ही संरक्षित किया जाता हैए जैसे राष्ट्रीय संरक्षित वन, बायोइस्फियर रिजर्व, जीन सेंचुरी इत्यादि। बहिः स्थाने (एक्स सीटू) संरक्षण में जनन द्रव्य को जीन बैंक में संरक्षित करते हैं। जनन द्रव्यों का बहिः स्थाने संरक्षण परंपरागत विधि से जीन बैंक में बीजों का भंडारण कम तापमान पर किया जाता है। यह किफायती होता है तथा कम स्थान में संरक्षित किया जा सकता है। अतः बीजों का भंडारण लंबी अवधि हेतु (25 से 100 वर्षों तक), मध्यम अवधि हेतु (2 से 25 वर्षों तक) अथवा लघु अवधि हेतु (6 से 24 माह तक) किया जाता है। लंबी अवधि भंडारण में तापमान –20° सेल्शियस व मध्यम अवधि भंडारण में तापमान 4° सेल्शियस रखा जाता है। लेकिन कायिक प्रवर्धित प्रजातियों तथा अपरम्परागत (रेकल्सीट्रेंट) प्रकार के बीजों के बहिः स्थाने संरक्षण हेतु संपूरक तकनीकों जैसे पात्रे (इन विट्रो) संरक्षण तथा हिमपरिरक्षण की आवश्यकता होती है।

परम्परागत रूप से कायिक प्रकार से उगाई जाने वाली प्रजातियों का व्यापक संरक्षण फील्ड जीन बैंक में किया जाता है। शीतोष्ण फल भी इसी श्रेणी में आते हैं। चूंकि फील्ड जीन बैक में जननद्रव्य के नष्ट हो जाने का खतरा रहता है इसलिए इनका संरक्षण जैव प्रौद्योगिक विधियाँ जैसे पात्रे (इन विट्रो) संरक्षण तथा हिम परिरक्षण (क्रायो प्रिजर्वेशन) विधियों से भी किया जाता है।

राष्ट्रीय पादप आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो

राष्ट्रीय पादप आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो (पूर्व में राष्ट्रीय पादप प्रवर्तन ब्यूरो के नाम से प्रचिलित) 1976 में स्थापित हुआ जिसका उद्देश्य राष्ट्रीय स्तर पर उन्नत किस्मों को विकसित करने हेतु पादप आनुवंशिक संसाधनों का आयात, संग्रह, संरक्षण, मूल्यांकन एवं सुरक्षित विनिमय करना था। पिछले साढ़े तीन दशक मे एन बी पी जी आर ने संगठन, आधुनिकतम वैज्ञानिक सुविधा एवं क्षमताए निपुणता, सेवा, अनुसंधान एवं मानव संसाधन विकसित करने मे लंबी यात्रा की है। ब्यूरो 11 क्षेत्रीय केन्द्रों के नेटवर्क को संचालित करता है। ये भारत के विभिन्न कृषि–जलवायु क्षेत्रों में स्थित हैं।

राष्ट्रीय पादप आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, नई दिल्ली में स्थित राष्ट्रीय जीन बैंक' विश्व की सर्वाधिक क्षमता वाला जीन बैंक है। तथा संरक्षित जननद्रव्य के आधार पर इस समय इसका स्थान चौथा है। जननद्रव्य प्राप्तियों के करीब 4 लाख नमूने आज तक बीज जीन बैंक में, 9000 क्रायों बैंक में एवं 2000 पादप ऊतक संवर्धन सुविधा में संग्रहीत किए गए हैं। शीतोष्ण फल की 300 से अधिक प्राप्तियाँ पात्रे संरक्षण द्वारा संग्रहीत की जा चुकी हैं।

भविष्य की योजनाएँ

निरंतर बढ़ती खाद्य मांग एवं घटती विविधता तथा विश्वव्यापी परिवर्तित परिदृश्य, जलवायु में बदलाव आदि विकट चुनौतियाँ हैं। जनन द्रव्य के मूल्यांकन, संरक्षण, प्रलेखन एवं उपयोग पर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है। अन्य राष्ट्रीय, अंतर्राष्ट्रीय संगठनों के सहयोग से भू–जातीय विविधता (कृषि–जैवविविधिता) का स्व स्थाने एवं फार्म संरक्षण एवं बहिः स्थाने (एक्स सीटू) प्रणालियों के प्रयोग द्वारा लंबी अवधि के लिए पादप आनुवंशिक संसाधनों के सुरक्षित संरक्षण को बढ़ावा देना चाहिए। भारतीय मूल की पादप प्रजातियों व वाइल्ड रिलेटिव के संरक्षण को अत्यंत आवश्यक व प्राथमिक रूप से ध्यान दिया जाना चाहिए।

सब्जियों में एकीकृत कीट प्रबन्धन

अखिलेश कुमार, मृगेन्द्र सिंह, श्रीमती अल्पना शर्मा, तथा एस सत्पथी

[illegible]

सारांश

भारतवर्ष में कुल कीटनाशी रसायनों की लगभग 13 से 14 प्रतिशत मात्रा कुल कृषि योग्य भूमि के मात्र 3.0 प्रतिशत में उगाई जाने वाली सब्जियों में उपयोग किया जाता है। सब्जी में हरी फलियों एवं फलों की कम अन्तराल पर तुड़ाई की जाती है जिससे सब्जियों में कीटनाशी रसायनों के अवशेष रहने की सम्भावना बढ़ जाती है। अतः एकीकृत प्रबंधन का उपयोग सब्जियों में अति आवश्यक है। सब्जियों में मुख्य रूप से टमाटर का फली छेदक कीट, बैंगन का तना एवं फल बेधक कीट, मिर्च में थ्रिप्स व माइट (अष्टपदी कीट), भिण्डी में तना एवं फली बेधक कीट, गोभी वर्गीय सब्जियों में हीरक पृष्ठ पतंगा कीट एवं कद्दूवर्गीय सब्जियों में फल मक्खी ज्यादा क्षति पहुचाती है। एकीकृत कीट प्रबंधन में विभिन्न नियंत्रण विधियों का समुचित समावेश किया जाता है जो प्रभावी, लाभदायक, वातावरण एवं मित्र कीटों के लिए सुरक्षित हों। एकीकृत कीट प्रबन्धन समन्वित फसल प्रबंधन का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण भाग है और जिसमें ट्राइकोग्रामा परजीवी, क्रायजोपरला एवं काक्सीनेला परभक्षी कीट का प्रयोग लाभकारी पाया गया है। कीटनाशी अवशेष से सुरक्षित एवं टिकाऊ कीट प्रबंधन के साथ साथ लाभदायक कीटों की सक्रियता बढ़ाने के लिए सूक्ष्मजीव कीटनाशी विषाणु (एन पी वी) जीवाणु (बीटी) एवं फफूंदी (बीबी) और वानस्पतिक कीटनाशीयों का प्रयोग करना चाहिए। अवरोधी एवं सहनशील किस्मों का चयन, अन्तः फसलीकरण, कीटों को आकर्षित करने वाली दूसरी फसलें, प्रकाश प्रपंच एवं फेरोमोन ट्रैप एकीकृत कीट प्रबन्धन का एक औजार है जो आजकल अत्यधिक मात्रा में विशैले कीटनाशकों को कम करने में सहायक है। इसके साथ कर्षण, भौतिक, रासायनिक एवं जैव प्रौद्योगिकी उपयाओं को केन्द्रित किया गया है जो मुख्य रूप से आर्थिक रूप से सस्ती, सामाजिक रूप से मान्य एवं पर्यावरण के लिए सुरक्षित है। भारत एक प्रमुख सब्जी उत्पादक देश है। वर्तमान में लगभग 8.495 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्रफल सब्जियों के अंतर्गत है जिसका सकल उत्पादन 146.5 मिलियन टन है। इस प्रकार भारत विश्व में चीन के बाद दूसरा सबसे बड़ा सब्जी उत्पादक देश है और विश्व सब्जी उत्पादन में इसकी भागीदारी 14 प्रतिशत है। हमारे देश में जलवायु में विभिन्नता होने के कारण 60 से अधिक प्रकार की सब्जियाँ देश के विभिन्न भागों में उगायी जाती है (कुमार एवं सिंह, 2012)। अन्य फसलों की अपेक्षा सब्जी फसलें कीट व्याधियों के प्रति काफी संवेदनशील होती है। कीटों के प्रकोप से जहां फसल की उपज प्रभावित होती है, वहीं गुणवत्ता पर भी प्रतिकूल असर पड़ता हैं यही कारण है कि विगत् वर्षों में कीट प्रबंधन की दिशा में रासायनिक कीटनाशी दवाओं का अत्यधिक उपयोग हुआ। रासायनिक कीटनाशी के अधिक प्रयोग से सब्जियों में अवशिष्ट की समस्या उत्पन्न होती है जिसका मानव स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इन विषैले कीटनाशी रसायनों का परि. स्थितिकी तंत्र पर भी कुप्रभाव पड़ता है साथ ही विभिन्न कीटनाशी रसायनों के प्रति कीटों में भी अवरोधिता विकसित होने लगती है। सब्जी उत्पदन में कीट एक प्रमुख समस्या है। इसमें मुख्य रूप से टमाटर का फली छेदक कीट, बैंगन का तना एवं फल बेधक कीट, मिर्च में थ्रिप्स

व माइट (अष्टपदी कीट), भिण्डी में तना एवं फली बेधक कीट, गोभी वर्गीय सब्जियों में हीरक पृष्ठ पतंगा कीट एवं कद्दूवर्गीय सब्जियों में फलमक्खी ज्यादा क्षति पहुचाती है। इन कीटों से सम्पूर्ण भारत में 35–40 प्रतिशत और कभी–कभी 100 प्रतिशत तक नुकसान होता है।

बैंगन में कीट प्रबंधन

बैंगन में तना एवं फल वेधक कीट (ल्यूसिनोड्स आर्बेनैलिस)

इस कीट का प्रकोप आमतौर पर पौध रोपाई के एक सप्ताह बाद शुरू हो जाता है। मादा तितली प्रायः एक–एक करके बैंगन की पत्तियों, मुलायम तनों, कलियों और कभी–कभी फलों पर भी अण्डे देती है। मादा लगभग 150 अण्डे देती है। वयस्क तितली की लम्बाई 10 मि.मी. तथा पंख सफेद होते हैं। जिन पर चौड़े भूरे–भूरे धब्बे पाये जाते हैं। पूर्ण विकसित संड़ियाँ चिकनी गुलाबी और 15–18 मिमी. लम्बी होती है। अण्डे से निकलने के 5–10 मिनट बाद नवजात सूंड़ियाँ निकटतम तना, फल अथवा फूल के अन्दर घुसकर खाते रहते हैं। सूंड़ी पौधों के प्ररोहों में छेदकर खाती है जिसके फलस्वरूप प्ररोह (शीर्ष) मुरझाकर लटक जाते हैं। पौधों में जब फल लगता है तो ये फल कुट (कैलिक्स) के ऊपर सुराख बनाकर फल के अन्दर जाकर खाते हैं और सुराख को अपने मल से बन्द कर देती हैं जो नजर नहीं आता है। सूंड़ी जब पूर्ण विकसित हो जाती है तो फल में सुराख बनाकर बाहर निकल आती हैं। फिर जमीन के अन्दर प्यूपा बनाती है। इसके द्वारा 70 प्रतिशत तक क्षति होती है (शिवलिंगास्वामी एवं साथी, 2006)।

- मध्यम अथवा छोटे आकार के गुच्छों में फलने वाली प्रजातियों का चयन करना चाहिए। इसमें कीटों का प्रकोप अपेक्षाकृत कम होता है।
- पौधशाला को नेट लगाकर वेधक से बचाना चाहिए। मुख्य खेत में लगाने से पहले पौधों को किसी कीटनाशी दवा का छिड़काव करके लगाना चाहिए।
- तना वेधक द्वारा ग्रसित तनों को ऊपर से सूड़ी सहित तोड़कर नष्ट कर देना चाहिए। यह क्रिया हर हफ्ते एक बार करनी चाहिए।
- दस मीटर के अन्तराल पर प्रति हे. में 100 फेरोमोन फन्दा लगाकर वयस्क नर कीटों को सामूहिक ढंग से आकर्षित कर नष्ट करने से खेत में अण्डों की संख्या में काफी कमी हो जाती है (सत्पथी एवं साथी, 2006)।
- शुरूआती अवस्था में ग्रसित फलों को तोड़कर और खेत से सूखी पत्तियाँ हटाकर स्वच्छ खेती करने से तना एवं फल वेधक का प्रकोप कम हो जाता है।
- नीम गिरी का 4 प्रतिशत (40 ग्राम नीम गिरी का चूर्ण एक लीटर पानी में) घोल बनाकर सात दिन के अन्तराल पर फसल में छिड़काव करना चाहिए।
- रायनाक्सीपायर 18.5 एस.सी. 20 ग्राम सक्रिय तत्व यानि 1 मिली. दवा प्रति 5 लीटर पानी में मिलाकर 15 दिन के अन्तराल पर दो बार छिड़काव करना चाहिए (राय एवं साथी, 2012)।

हरा फुदका (एमरेस्का, बिगुटुला बिगुटुला)

यह कीट बैंगन के अलावा भिण्डी, सेम, आलू आदि की फसल आदि की फसल को नुकसान पहुँचाता है। वयस्क हरा फुदका 2 मिमी लम्बा हरे रंग का तथा पाचर के आकार का होता है। इसके अगले दोनों पंखों पर दो काले धब्बे पाए जाते हैं। अवयस्क (निम्फ) और वयस्क दोनों ही हानिकारक होते हैं तथा तिरछी चाल चलते हैं। एक मादा 15 से 30 तक अण्डे देती है। तरूण और वयस्क दोनों ही पत्तियों की निचली सतह से रस चूसते हैं। साथ–साथ अपना जहरीला

लार उसमें छोड़ते हैं। इनसे प्रभावित भाग पीला हो जाता है तथा पत्ती किनारे से अन्दर की ओर मुड़ने लगती है तथा सूखकर गिरने लगती हैं।

प्रबन्धन

- पौध की जड़ को रोपाई से पहले इमिडाक्लोप्रिड 17.8% एस.एल. दवा का 1 मिली रसायन प्रति लीटर पानी में घोलकर उसमें एक घण्टे उपचार के बाद रोपाई करने से फसल को इस कीट से 30 दिन तक प्रभावित होने से बचाया जा सकता है।
- नीम गिरी का 4 प्रतिशत का प्रयोग 10 दिनों के अन्तराल पर लाभकारी देखा गया है।
- इमिडाक्लोप्रिड 17.8% एस.एल. का 0.3 मिली. प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर फसल पर छिड़कने से 30 दिन तक इस कीट का प्रकोप नहीं होता है।

मिर्च में कीट प्रबन्धन

थ्रिप्स (सर्टोथ्रिप्स डारसैलिस)

इस कीट के शिशु एवं वयस्क दोनों कोमल पत्तियों से रस चूसकर नुकसान पहुँचाते हैं जिससे पत्तियाँ सिकुड़ कर ऊपर की ओर मुड़ जाती है। पौधों की बढ़वार रूक जाती हैं। वयस्क कीट का पंख कटा–फटा होता हैं। प्रौढ़ कीट लगभग 1 मि.मी. लम्बा एवं हल्के पीले–भूरे रंग का होता है।

प्रबन्धन

- अवरोधी किस्मों का चुनाव करना चाहिए।
- इमिडाक्लोप्रिड 70 डब्लू.एस. कीटनाशक (2.5 ग्राम/किलो बीज) से बीज शोधित करें।
- मुख्य खेत में पौध लगाने से पूर्व इमिडाक्लोप्रिड 200 एस.एल. के 1 मि.ली. दवा को 1 लीटर पानी में मिलाकर मिर्च के जड़ को 30 मिनट तक डुबाना चाहिए।
- मुख्य खेत में अधिक प्रकोप होने पर डाइमेथोएट 30 ई.सी. 1 मिली दवा 10 दिन के अन्तराल पर या इमिडाक्लोप्रिड 200 एस.एल. 0.3 मि.ली. दवा प्रति लीटर पानी में मिलाकर 35 दिन के अन्तराल पर छिड़काव करना चाहिए (शिवलिंगास्वामी एवं साथी, 2006)।

पीली माइट (पालीफैगोटार्सोनिमस लेटस)

यह एक अष्टपदी कीट है जिसके शिशु एवं प्रौढ़ दोनों मिर्च के पत्ती के निचली सतह से रस चूसकर क्षति पहुँचाते हैं। जिसमें पत्तियाँ नीचे की ओर मुड़कर नाव का आकार बना लेती है। जिससे मिर्च में भारी क्षति होती है, पौधों का विकास रूक जाता है और फलने फूलने की क्षमता प्रायः समाप्त हो जाती है।

प्रबन्धन

- अवरोधी किस्मों का चुनाव करना चाहिए।
- पालीहाउस में परभक्षी माइट (एम्ब्लीसियस ओवैलिस) 10–15 प्रति पौधे की दर से प्रयोग कर इसके प्रकोप से बचा जा सकता हैं।
- डायकोफाल 18.5% ई.सी. 3.00 मिली या सल्फर 80% डब्लू.पी. 2.5 से 3 ग्राम या

प्रोपरगाइट 57% ई.सी. 3.5 मिली या एबामेक्टिन 1.8% ईसी. 1.5 मि.ली. प्रति लीटर पानी में मिलाकर 10 दिन के अन्तराल पर छिड़काव करना चाहिए।

टमाटर में कीट प्रबन्धन

सफेद मक्खी (बेमिसिया टबैकी)

यह सफेद एवं छोटे आकार का एक प्रमुख कीट है। यह पत्तियों की सतह पर 125–150 की संख्या में अण्डे देती है। इस कीट के शिशु एवं प्रौढ़ पौधों की पत्तियों से रस चूसते हैं और विषाणु रोग फैलाते हैं, जिससे पत्तियों में गुड़चापन (पत्ती मोड़) आने लगता है। इसके बाद फूल व फल नहीं लगते हैं।

प्रबन्धन

- पौधशाला में बुवाई के समय इमिडाक्लोप्रिड 70% डब्लू.एस. पाउडर (2.5 ग्राम/किलो बीज) से बीज शोधन करना चाहिए। इस प्रकार 40 दिनों तक फसल को मक्खी के प्रकोप से बचाया जा सकता है (शिवलिंगस्वामी एवं साथ, 2006)।
- पौध नायलान जाली (40 मेस साइज) के अन्दर तैयार करना चाहिए, जिससे सफेद मक्खी उसके अन्दर न जा सके।
- खेत के चारों तरफ मक्का, ज्वार और बाजरा किस्में लगाना चाहिए जिससे सफेद मक्खी का संक्रमण न हो सके।
- इमिडाक्लोप्रिड 17.8% एस.एल. 0.5 मिली. दवा 1 लीटर पानी के घोल में पौधों की जड़ को आधा घण्टा उपचारित कर लगाने से अगले 30–35 दिन तक इस मक्खी के नुकसान से फसल को बचाया जा सकता है।
- इमिडाक्लोप्रिड 17.8% एस.एल. 1 मिली प्रति तीन लीटर पानी में फूल आने के पहले मिलाकर आवश्यकतानुसार छिड़काव करना चाहिए (पाण्डेय एवं साथी, 2002)।

फल वेधक कीट (हेलीकोवर्पा आर्मीजेरा)

यह कीट लगभग 60 प्रतिशत तक क्षति पहुँचाता है। सूण्डी कच्चे टमाटर के फल में छेद करके खाती है, हरे रंग की होती है जिसके शरीर पर तीन धारियाँ पायी जाती है जो इनकी मुख्य पहचान है। मादा कीट 400–600 अण्डे फूलों की कलियों, कोमल पत्तियों एवं फल के ऊपर देती है। अण्डा से निकलने के बाद सूंडी 12–15 दिनों में पूर्ण विकसित होकर मिट्टी में प्यूपा बनाती है और 10–12 दिनों में इससे भूरे रंग के वयस्क कीट निकलते हैं।

प्रबन्धन

- गर्मी में गहरी जुताई करना चाहिए।
- रोपाई के समय टमाटर की 16 लाइन (25 दिनों के पौध से) के बाद एक लाइन गेंद का पौध (45 दिन का) लगाने से दोनों में फूल करीब–करीब एक ही समय में आते हैं। गेंदे का फूल मादा वयस्क को अण्डा देने के लिये अत्यधिक आकर्षित करता है। गेंदे में रासायनिक कीटनाशी जैसे डाईक्लोरोवॉस 76% ई सी की 1 मीली दवा 1 लीटर पानी में मिलाकर साप्ताहिक अन्तराल पर छिड़काव से मुख्य फसल का बचाव किया जा सकता हैं। इस प्रकार 16 गुना कीटनाशी रसायन की मात्रा को कम किया जा सकता है।
- सेक्स फेरोमोन ट्रैप 5 प्रति हेक्टेयर की दर से पौध से 6 इंच की ऊँचाई पर लौह के

राड के सहारे लगाकर नर प्रौढ़ कीट की निगरानी के आधार पर ट्राइकोग्रामा अण्डा परजीवी का 50,000 अण्डा (ट्राइकोग्रामा ब्रर्जिलेयेन्सिस) प्रति हेक्टेयर साप्ताहिक अन्तराल पर फूल आने की चरम अवस्था पर दो से तीन बार प्रयोग करने से कीट का प्रकोप काफी कम हो जाता है।

- फूल लगते समय एच.एन.पी.वी. 300 एल.ई. + एक किग्रा गुड़ + 0.01 प्रतिशत इण्डोट्रान (चिपकने वाला पदार्थ) को 500–600 लीटर पानी में मिलाकर एक हेक्टेयर के लिए शाम के समय दस दिन के अन्तराल पर छिड़काव लाभकारी पाया गया है (सत्पथी एवं साथी, 2003)।
- कीटनाशी दवा इण्डाक्साकार्ब 14.5% एस.सी. 1 मिली दवा 1 लीटर पानी में मिलाकर 15 दिन के अन्तराल पर छिड़काव करना चाहिए।

तम्बाकू की सूण्डी (स्पोडोप्टेरा लिट्यूरा)

इस कीट का आक्रमण रात के समय या शाम को होता है। पौध के रोपाई के बाद इनका आक्रमण होता है जिसमें टमाटर के तनों और पत्तियों का खाकर क्षति पहुँचाते हैं। सुण्डी का रंग पीलापन लिए गाढ़े हरे रंग का होता है, इसके सिर पर दो काले धब्बे होते हैं जो अंग्रेजी के 'बी' का आकार बनाते हैं। 15–20 दिनों में सूण्डी पूर्ण विकसित होकर जमीन के अन्दर या सूखी पत्तियाँ के नीचे प्यूपा बनाती है।

प्रबन्धन

- गर्मी में गहरी जुताई करना चाहिए।
- सेक्स फेरोमोन ट्रैप पौध की सतह से 6 इंच की ऊँचाई पर लोहे के राड या लकड़ी के सहारे लगाकर नर प्रौढ़ कीट को एकत्र करके मार देना चाहिए और सेप्टा 25 दिन के बाद बदल देना चाहिए। 25–30 फेरोमोन ट्रैप एक हेक्टेयर के लिए पर्याप्त होता है।
- एस.एन.पी.वी. 250 एल.ई. + एक किग्रा. गुड़ + 0.01 प्रतिशत टीपोल को 500–600 लीटर पानी में घोल बनाकर 10 दिन के अन्तराल पर शाम के समय तीन बार छिड़काव से इस कीट का नियंत्रण हो जाता है।
- इण्डाक्साकार्ब 15 एस.सी. 1 मिली दवा एक लीटर पानी में मिलाकर 15 दिन के अन्तराल पर छिड़काव कीट नियंत्रण में लाभकारी पाया गया है।

गोभी वर्गीय सब्जियाँ में कीट प्रबन्धन

हीरक पृष्ठ कीट (प्लूटेला जायलोस्टेला)

इस कीट के वयस्क का रंग धूसर होता है। जब यह बैठता है, तो इसकी पीठ पर तीन हीरे की तरह चमकीले चिन्ह दिखाई देते हैं, इसलिए इसको हीरक पृष्ठ कीट के नाम से जाना जाता है। कीट के पिछले पंखों पर लम्बे–लम्बे बालों की धारियाँ पायी जाती है। सूंड़ी का रंग पीलापन लिए हुए होता है। पूर्ण रूप से विकसित सूंड़ी की लम्बाई 8 मिमी होती है। इस कीट का प्रकोप पत्तागोभी की फसल पर सबसे ज्यादा होता हैं। सूंड़ी पत्तियों की निचली सतह पर खाते हैं और छोटे–छोटे छिद्र बना देते हैं। जब इनका प्रकोप अधिक होता है तो छोटे पौधों की पत्तियाँ बिल्कुल समाप्त हो जाती है जिससे पौधे मर जाते हैं। शुरूआती अवस्था में जब गोभी इस कीट से ग्रसित होती है तो बढ़वार पूरी तरह रूक जाती है।

प्रबन्धन

- हर 25 लाइन गोभी के दोनों तरफ दो लाइन सरसों की बुवाई (पहली लाइन मुख्य फसल की रोपाई के 15 दिन पहले एवं दूसरी लाइन रोपाई के 15 दिन बाद) करना चाहिए जिससे इस कीट का प्रौढ़ आकर्षित होकर सरसों पर अण्डा देते हैं। सरसों में डाइक्लोरोवास 76% ई.सी. की 1 मिली. दवा प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करने से कीट मर जाते हैं।
- कोटेशिया प्लूटेली परभक्षी का 15000 वयस्क प्रति हेक्टेयर की दर से सूंडी द्वारा नुकसान की शुरूआत से लेकर साप्ताहिक अन्तराल पर दो–तीन बार प्रयोग से कीट का प्रकोप काफी कम किया जा सकता हैं, इस दौरान रासायनिक कीटनाशी का प्रयोग नहीं करना चाहिये।
- जैवनाशी दवा बी.टी. (बैसिलस थुरिंजियेन्सिस) फार्मुलेशन 500 ग्राम प्रति हेक्टेयर 10 दिन के अन्तराल पर दो बार छिड़काव करने से इस कीट का नियंत्रण किया जा सकता है (पाण्डेय एवं साथी, 2003)।
- नीम की गिरी का निचोड़ (5%) फसल पर छिड़कने से इस कीट का प्रकोप कम हो जाता है।
- इस कीट के नियंत्रण के लिए कारटाप हाईड्रोक्लोराइड 50% एस.पी. 1 ग्राम प्रति लीटर या इण्डाक्साकार्ब 14.5 एस.सी. की 0.75 मिली दवा प्रति लीटर पानी में मिलाकर 15 दिनों के अन्तराल पर तीन बार छिड़काव करना चाहिए (कुमार एवं सिंह, 2012)।

भिण्डी में कीट प्रबन्धन

तना एवं फल छेदक कीट (इरियास विटेला)

इस कीट से 35 प्रतिशत से अधिक नुकसान होता हैं। वर्षा वाली फसल इस कीट से ज्यादा प्रभावित होती है। वयस्क सूड़ी फल में सुराख बनाकर बाहर निकलती है। सूड़ियाँ तना के अग्र भाग एवं फलों में छेद करती है। प्रभावित फल जो पौधों पर रह जाते हैं सब्जी के लायक नहीं रहते। तने मुरझा जाते हैं जबकि ग्रसित फल सही आकार नहीं ले पाता है और टेढ़ा हो जाता है। सूंड़ी का रंग भूरा सफेद होता है जिनके ऊपर काले और भूरे धब्बे पाए जाते हैं, इसलिए इसे चित्तिदार सूँड़ी कहते हैं। जमीन या पौधों के ऊपर प्यूपा बनते हैं जो मटमैले सफेद ककून से ढ़ँके रहते हैं। अकसर गोधूली के समय तितलियाँ प्यूपा से बाहर निकलती हैं और 1–5 दिन के अन्दर अण्डा देना शुरू कर देती है।

प्रबन्धन

- नीम की गिरी का सत् (4 प्रतिशत) का घोल फूल लगने के बाद 10 दिनों के अन्तराल पर छिड़काव करने से समुचित नियंत्रण हो जाता है।
- फूल लगते समय साप्ताहिक अन्तराल पर ट्राइकोग्रामा परजीवी 50,000 अण्डा/हे. खेत में 3–4 बार छोड़ने से फल वेधक कीट का प्रकोप कम पाया जाता है।
- रायनाक्सीपायर 18.5% एस.सी. 20 ग्राम सक्रिय तत्व यानि 1 मिली दवा प्रति 5 लीटर पानी में मिलाकर 15 दिन के अन्तराल पर दो बार छिड़काव करना चाहिए (राय एवं साथी, 2012)।

लाल माइट (टेट्रानिकस अर्टसी)

प्रायः गर्मी वाली भिण्डी में फसल यह कीट काफी नुकसान पहुँचाता है। इसके अण्डे सफेद, गोलाकार, 0.1 मिमी व्यास के होते हैं। मादा अपने जीवनकाल में 200 तक अण्डे देती है। प्रौढ़ मादा 3 सप्ताह तक जीवित रहती है। शिशु तथा प्रौढ़ पत्तियों के निचली सतह पर रस चूसते हैं और वहीं अपने द्वारा बनाये गये सिल्कनुमा जाल से ढ़ँके रहते हैं। इनके रस चूसने से पत्तियों की ऊपरी सतह पर पीली चित्तियाँ उभर आती हैं और धीरे–धीरे पत्तियाँ लाल होकर सूख जाती हैं।

प्रबंधन

- समय–समय पर पानी की फुहार करने से माइट द्वारा उत्पन्न सिल्कनुमा जाल नष्ट हो जाता है एवं पत्तियों पर इकट्ठी धूल साफ हो जाती है, इससे इनकी संख्या वृद्धि में कमी आती है एवं नुकसान काफी हद तक कम हो जाता है।
- प्रायः पाली हाउस में इस माइट (अष्टपदी कीट) के प्रकोप से बचने के लिये परभक्षी माइट (एम्ब्लीसियस टेट्रानिकीवोरस) / 10–15 प्रति पौधे की दर से प्रयोग किया जाता है।
- प्रोपरगाइट 57% ई.सी. की 3 मिली या एबामेक्टिन 1.8% ई.सी. की 1.5 मिली. मात्रा प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें।
- घुलनशील सल्फर 80 डब्ल्यू.पी. की 2.5–3.0 ग्राम मात्रा प्रति लीटर पानी में मिलाकर शाम के समय पत्तियों पर छिड़काव इसके नियंत्रण के लिए प्रभावकारी देखा गया है।

कद्दू वर्गीय सब्जियों में कीट प्रबन्धन

फल मक्खी (बैक्ट्रोसेरा कुकरबिटी)

इस कीट की सूण्डी हानिकारक होती है। प्रौढ़ मक्खी का रंग लाल–भूरा होता है। इसके सिर पर काले तथा सफेद धब्बे पाये जाते हैं। मादा मक्खी फल के छिलके में बारीक छेदकर अण्डे देती हैं और अण्डे से ग्रब्स (सूंड़ी) निकलकर फलों के अन्दर का भाग खाकर नश्ट कर देते हैं। कीट फल के जिस भाग पर अण्डा देती है वह भाग वहाँ से टेढ़ा होकर सड़ जाता है। करेला, टिंडा, तोरई, लौकी, खरबूजा, तरबूजा, आदि सब्जियों को यह मक्खी क्षति पहुँचाती है।

प्रबन्धन

- गर्मी में खेत की गहरी जुताई करना चाहिए।
- खेत में क्षतिग्रस्त फलों को तोड़कर नष्ट कर देना चाहिए।
- 20 मिली मैलाथियान 50 ई.सी. या 40 ग्रा. कार्बेरिल 50 डब्ल्यू पी. + 200 ग्राम गुड़ को 20 लीटर पानी में मिलाकर कुछ चुने हुए पौधों (250 पौधे/हेक्टेयर) पर छिड़काव 4–5 दिन के अन्तराल पर करना चाहिए जिससे इनके वयस्क आकर्षित होकर आते हैं और मर जाते हैं।
- इथेनाल, क्युल्योर एवं कार्बेरिल (8:1:2) से संश्लेशित लकड़ी के गुटके को बोतल (प्लास्टिक) में चौकोर छेद बनाकर प्रति हेक्टेयर 25 की दर से पौधे में फूल आने के समय से लगाकर फल मक्खी को सामूहिक रूप से नष्ट किया जा सकता है (सत्पथी एवं साथी, 2006)।

- कारबेरिल 50 डब्लू.पी. 2 ग्राम/लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करना चाहिए, लेकिन रासायनिक दवा का छिड़काव फल तोड़कर ही करना चाहिए।

दलहनी सब्जियों के प्रमुख कीट

पर्ण सुरंगक (क्रोमैटोमिया हार्टीकोला)

शुरू की अवस्था में यह कीट ज्यादा हानिकारक होता है। मादा कीट पत्तियों के तन्तुओं में रंगहीन अण्डा देती हैं जिससे 2–3 दिनों बाद मैगट निकलकर पत्तियों में टेड़े–मेढ़े सुरंग बनाकर पत्तियों के हरे भागों को खाकर खत्म कर देता है। एक मादा 250–300 अण्डे देती है। सुरंगों के अन्दर ही मैगट प्यूपा में परिवर्तित होता है। प्यूपा भूरे या पीले रंग के होते हैं तथा इसका जीवन 15–20 दिनों में पूरा होता है। इनके प्रकोप से पत्तियाँ मुरझाकर सूख जाती हैं और पौधा सुचारू रूप से फूल और फल नहीं दे पाता है। ज्यादा प्रकोप होने पर पूरी–की पूरी फसल सूखकर खत्म हो जाती है। कतार में बीज की बुआई करने से हवा का प्रवाह होने से सुरंगक का प्रकोप कम होता है।

प्रबन्धन

- प्रतिरोधी किस्मों का चुनाव करना चाहिए।
- पौध के निचले भाग पर कीड़ों से प्रभावित पुरानी पत्तियों को निकालकर नष्ट कर देना चाहिए।
- इसके नियंत्रण के लिए 4 प्रतिशत नीम गिरी चूर्ण का छिड़काव (40 ग्राम नीम गिरी का सत् प्रति लीटर पानी में) लाभकारी पाया गया है।
- इसके अलावा इमिडाक्लोप्रिड 17.8% एस.एल. 0.3 मिली. या डायमेथोएट 30% ई. सी. 1 मि.ली. दवा का प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करने से इसका समुचित नियंत्रण किया जा सकता है।

लोबिया का फली बेधक (मारूका विट्राटा)

यह दलहन वाली सब्जियों को सबसे ज्यादा क्षति पहुँचाने वाला कीट है जिससे लगभग 45–50 प्रतिशत क्षति होती है। इस कीट की मादा एक–एक या समूह में अपने अण्डे को फूल या कालिकाओं पर देती है जो 2–4 दिनों बाद सूंड़ी बनकर बाहर आता है जो शुरू की अवस्था में फूल पर समूह के रूप में होते हैं जो आगे चलकर अलग–अलग फूलों पर फैल जाते हैं और बाद की अवस्था में फलियों पर जाकर उनके अन्दर छेदकर खाते हैं और विष्ठा भर देते हैं। प्रौढ़ मध्यम आकार के भूरे–काले रंग का होता है। अगले पंख पर तिरछे सफेद रंग की धारी होती है।

प्रबन्धन

- क्षतिग्रस्त, पत्तियों और फलियों को पौधों से निकालकर नष्ट कर देना चाहिए।
- इण्डाक्साकार्ब 14.5 एस.सी. की 0.75 मिली दवा प्रतिलीटर पानी में मिलाकर 15 दिनों के अन्तराल पर तीन बार छिड़काव करना चाहिए।

संदर्भ

1. कुमार, अखिलेश एवं राय, ए.बी. (2011).Integrated pest management of vegetable crops. 13th Indian Agricultural Scientist and Farmers Congress on "Sustainable Developmental Strategies for Food Security, Bio-diversity and Livelihood Security" held on February 19-20, 2011, at BRIAT, Allahabad, pp.7-8.

2. कुमार, अखिलेश एवं सिंह, मृगेन्द्र (2012). Varshakalin Sabijyon mein ekkikrit keet prabandhan, Tech. Bulletin No.1, KVK, Shahdol, M.P., pp.1-8.

3. पाण्डेय, पी.के., पाण्डेय, के.के., राजू, एस.वी.एस. एवं सिंह, नीरज (2002). Tamatar avam gobhi mein ekkikrit nashijeev prabandhan. Tech. Bulletion-10, IIVR, Varanasi, pp.1-20.

3. पाण्डेय, के.के., पाण्डेय, पी.के. एवं सुभाष चन्द्र (2003). Sabjeeyon mein ekkikrit nashijeev prabandhan. Tech. Bulletion-11, IIVR, Varanasi, pp.1-29.

4. राय, ए.बी., कोडंनड्राम, एम.एच. एवं हल्दर, जे. (2012). Refinement, Validation and promotion of IPM technologies for management of important pests of majaor vegetables. Annual Report, 2011-12, IIVR, Varanasi, pp.72-73.

5. सत्पथी, एस., शिवलिंगास्वामी, टी.एम. एवं राय, एस, (2003). Sabijyon mein ekkikrit keet prabandhan (Sabijyon kee kheti, I.I.V.R. Varanasi, pp.226).

6. सत्पथी, एस., शिवलिंगास्वामी, टी.एम. एवं राय, ए.बी. (2006). Managing brinjal shoot- and fruit - borer and fruit fly on cucurbits the IPM way. Indian Hort. 51(3):14-15.

7. शिवलिंगास्वामी, टी.एम., सत्पथी, एस., राय, ए.बी. एवं राय, मथुरा (2006). Inscet pests of vegetable crops: Field idenfication and management. Tech. Bulletin. No. 30, IIVR, Varanasi, pp.1-73.

खेती के सुनहरे भविष्य हेतू औषधीय पौधों का संरक्षण करता राष्ट्रीय जीन बैंक

वीना गुप्ता
राष्ट्रीय पादप आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, दिल्ली

भारतीय सभ्यता के समान ही पुरानी है हमारी आयुर्वेदिक औषधि चिकित्सा प्रणाली। आज भी विश्व में लगभग 80 प्रतिशत लोग धरेलू अपचार या आयुर्वेद पर निर्भर हैं। प्रतिवर्ष हमारे देश से करोड़ो की औषधीय जड़ी–बूटियॉ विदेशों में भेजी जा रही हैं तथा इनकी मॉग दिन–प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही है। अभी तक औषधीय पौधे की सारी खपत प्राकृतिक रूप से ही की जा रही है। पिछले कुछ सालों से जगलों में भी इनकी मात्रा कम होती जा रही है तथा कुछ पौधों के तो दर्शन भी दुर्लभ हो गये हैं। इन सभी कारणों से आज इनके संरक्षण तथा खेती पर ज्यादा घ्यान दिया जा रहा है। राष्ट्रीय पादप आनुवशिंक संसाधन ब्यूरो को इन प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण का सम्पूर्ण दायित्व भारत सरकार द्वारा दिया गया है। यह कार्य पादप आनुवशिंक संसाधनों के संरक्षण हेतू राष्ट्रीय जीन बैंक के रुप में राष्ट्र को समर्पित हैं। जिस प्रकार आप अपना घन अर्थात रुपया, पैसा सोना चॉदी आदि बहूमुल्य पदार्थो को अपने बच्चों के सुरक्षित भविष्य के लिए बैंक में जमा करते है उसी प्रकार हम आपके द्वारा उगाई जाने वाली औषधीय पौधों की प्रजातियों के बीज के खेती के उज्जवल भविष्य के लिए जमा करते हैं।

निरोगी काया सबसे बड़ी माया

कहते हैं कि स्वस्थ शरीर हो तो मनुष्य हर कार्य करने में समर्थ होता हैं। तभी तो इस हर पल क्षीण होती शारीरिक क्षमता को स्वस्थ रखने के लिए मनुष्य अनेक उपाय करता है। जरा सी सर्दी जुकाम खॉसी या बुखार होते ही हम अपने नन्हें–मुन्ने को ऐलोपैथिक दवाईयॉ दे देते हैं। परन्तु ऐलोपैथिक दवाईयॉ भी तो शरीर को नुकसान पहुँचाती हैं। ये बिमारियों के कीटाणुओं या विषाणुओं को मारती हैं। एन्टीबायोटिक का मतलब हैं जीवन विरोधी चाहे वो विशाणुओं का हो या फिर मानुष का।

इसके विपरीत आयुर्वेद यानि आयु बढाने वाली। ये दवाईयॉ शरीर की प्रतिरोधिता बढाती हैं और धीरे–धीरे बिमारी के कीटाणु शरीर द्वारा मार दिये जाते हैं। शायद यही कारण है कि आज के इस प्रौद्योगिक क्रान्ति के युग में भी हम प्राकृतिक पौधों अर्थात हर्बल ड्रग्स पर ज्यादा विश्वास करते हैं। औषधीय पौधों के प्रति हमारा लगाव दिन प्रतिदिन बढ़ता ही जा रहा हैं। न सिर्फ विकासशील देश अपितु अमेरिका यूरोप जैसे विकासित देश भी आयुर्वेदिक या होम्योपैथिक दवाईयों का उपयोंग करते हैं। अनेक असाध्य रोंगो के निदान हेतू आज उन पर करोडों रूपये खर्च कर अनुसंधान में लगे हुए हैं। उदाहरण के लिए कैंसर, एड्स जैसी ऐलोपैथिक पद्धति में लाईलाज मानी जानी वाली बिमारियों के विकल्प टैक्सस, जिन्सेंग, अंश्वगन्धा या गिलोय जैसे पौधों का विश्लेषण कर ढूँढे जा रहे हैं। कैंसर का अभी तक सफल ईलाज विनकस्टिन तथा विनब्लास्टिन से ही सम्भव हैं जो कि सदाबहार नामक औषधीय पौधे से मिलती हैं। आसानी व कम खर्च में उपलब्ध ये हर्बल दवाईयॉ पूरे विश्व में गरीब जनता के लिए अमृत हैं। विश्वस्तर पर यदि हम इन पौधे का उपयोंग देखें तो अफ्रीका में 70–80 प्रतिशत , अमेरिका में 45 % कनाडा, भारत, पाकिस्तान, जापान, मलेशिया में 70%, तथा फ्रांस, जर्मनी में 50%,

लोग हर्बल दवाईयॉं इस्तेंमाल करते हैं। ये दवाईयॉं पाउडर, चूर्ण, तैलीय, गोली या अल्कोहल बेस में द्रव्य की तरह मार्किट में खरीदी या बेची जाती हैं। व्यावसयिक करण को देखें तो आज सबसे ज्यादा मॉंग हैं न्यूट्रास्यूटिकल की। अर्थात खाद्य पदार्थो में कुछ औषधीय तत्व मिला दिये जाते हैं जिससे वो स्वास्थ्य वर्द्धक होने के साथ–साथ औषध की तरह भी काम करते हैं। जैसे कि हर्बल चाय जिसमे अंसगध तुलसी अदरक काली मिर्च का चूर्ण मिला देते हैं। अनेक फलों के जूस में गवारापांठा या नोनी का जूस मिला कर एक नई ड्रिंक बन जाती हैं। औषधीय पौधों का सौन्दर्य प्रसाधनों में इस्तेमाल भी व्यवसायीकरण का तरीका हैं। शायद ही आज बाजार कोई क्रीम या तेल या शैम्पू होगा, जिसमे ऐलो जैल न मिली हो। इस प्रकार औषधीय पौधे न केवल बिमारियों के ईलाज़ के लिए, अपितु एक अच्छी आय का साधन भी बन सकते हैं। विश्व में भारत और चीन ही दो ऐसे देश हैं जो औषधीय पौधों के सबसे बड़े उत्पादक हैं। तथा विश्व की 40 % जैवविविधता के मालिक हैं। विश्व बाजार में चीन इन उत्पादको का सबसे ज्यादा निर्यात करता हैं। करीबन 5 बिलीयन अमेरिकी डालर सालाना। जबकि भारत का निर्यात 240 मिलीयन डालर का हैं। भारतीय आयुर्वेद प्रणाली चीन की चिकित्सा प्रणाली से कही ज्यादा पुरानी हैं। चरक, सुश्रुत धनवन्तिरी को विश्व में कौन नहीं जानता। रामायण में उल्लेखित संजीवनी बूटी भारत भूमि की ही देन हैं। विश्व बाजार में हम आज भी अपना अधिपत्य बना सकते हैं बशर्ते कि हम अपने सभी प्रयासों को समन्वित कर इन पौधों के विकास व निर्यात हेतू नीति निर्धारण करे तथा ईमानदारी से उनका पालन करें।

सरकार ने औषधीय पौधों के जंगलों से दोहन पर रोक लगा दी हैं परन्तु आज भी अनेक फार्मास्यूटिकल कम्पनियॉं जंगलों से गैर कानूनी तरीकों से इनको उखाड़ रही हैं। जिसके फलस्वरूप आज अनेक औषधीय पौधें लुप्तता के कगार पर हैं। रिद्धी, सिद्धी, क्षीर काकली जैसे पौधें सिर्फ नाम बन कर ही रह गये हैं। अतीश कुथ ब्रह्मकमल जैसे गिने चुने स्थानों पर ही पाये जाते हैं। आज आवश्यकता हैं इनके संरक्षण की ताकि हम अपनी आने वाली पीढ़ी को मनु की ये धरोहर सौंप सके।

संरक्षण हेतु विकल्प

इनके संरक्षण हेतु अनेक विकल्प हैं जिन्हें मुख्यतय दो प्रकारों में बॉटा जा सकता हैं। पहला स्वः स्थाने संरक्षण दुर्लभ पौधे, वृक्ष प्रजातियॉं तथा विषम परिस्थिति में पैदा होने वाली जड़ी बूटियों की उन्ही के उद्गम या पाये जाने वाले क्षेत्रों में सुरक्षित किया जाता हैं। इन क्षेत्रों को सरकार प्रतिबंधित क्षेत्र या Biosphere reserves के रूप में रेखांकित कर देती हैं। भारत में आज 14 Biosphere Reserves,144 राष्ट्रीय उद्यान या पार्क तथा एक thuSanctuary उद्द्योषित हैं, जहॉं इन पौधों के साथ अन्य वनजीवन भी संरक्षित हैं।

दूसरा विकल्प हैं Ex-situconservation अर्थात बाह्य स्थाने संरक्षण जिसके अंर्तगत इन पौधों को इनके उतपत्ति वाले स्थान से अलग एक नये क्षेत्र में उगाकर या संजो कर संरक्षित किया जाता हैं। जैसे की हर्बल गार्डन, Botanical या वनस्पति उद्यान, जीन बैकं, टिश्यूकल्चर या उत्तक संर्बधन बैंक या फिर बतलव इंदा वत हिमपरिक्षण बैंक, किस पौधें को कौन सी विधि द्वारा संरक्षित करना हैं यह उसकी प्रजनन क्रिया पर निर्भर करता हैं। जिन औषधीय पौधों में बीज.द्वारा प्रजनन होता हैं उन्हे सामान्यतयां बीज। बैंको में कम आर्दता तथा शून्य से 18 °C नीचे तापमान पर हवा बन्द लिफाफों में दीर्घावधि के लिए भंडारित किया जाता हैं।

जिन पौधों में बीज नही बनता या उन्हें कलम द्वारा लगाया जाता हैं, उन्हें टिश्यूकल्चर बैंक या हिमपरिरक्षण बैंक में रखा जाता हैं। हिमपरिरक्षण में जननद्रव्य को तरल नाईट्रोजन –150° से –190° सेल्सियस मापमान पर), में भंडारण करना सर्वोत्तम विकल्प हैं। इस विधि से बिना आनुंवषिक परिवर्तन के एवम् सीमित संसाधनों में लम्बी अवधि के लिए भडांरण सम्भव हैं।

द्विवर्षीय या बहुवर्षीय औषधीय पौधे या वृक्षों को हर्बल गार्डन या Botanical gardens में भी संरक्षित किया जाता हैं। हर स्कूल और महाविद्यालयों में अब इन हर्बल उद्यानों का बनाना आवश्यक हैं क्योंकि यह संरक्षण के साथ स्कूली छात्रों व आम जनता को इनके बारे में जानकारी दे इनके संरक्षण की महत्ता को बताते हैं। लालबाग उद्यान बैंगलोर, उटी का वनस्पतिक उद्यान, कोलकत्ता का रोयल गार्डन आदि इसी तर्ज पर बने हैं।

राष्ट्रीय बीज जीन बैंक

बीज जीन बैंको मैं जननद्रव्यों का बहिःस्थाने संरक्षण किफायती होता है तथा कम स्थान में संरक्षित किया जा सकता हैं। यह सब बीज के छोटे आकार तथा अच्छे परम्परागत भंडारण गुणों द्वारा ही सम्भव हैं। बीज बैंक में उन सब बीजो को संरक्षित किया जाता हैं जो सुखने पर (कम आर्दता) भी अपनी जीवन क्षमता या अंकुरण क्षमता को नही खोते हैं। अधिकांश औषधीय पौधों के बीजों को संस्तुत स्तरों से नीचे सुखाकर भंडारण करना अत्यधिक लाभप्रद हैं। ब्यूरो स्थित राष्ट्रीय जीन बैंक विश्व के प्रख्यात बैंको में है जिसमें 10 लाख से भी अधिक पादपप्राप्तियों के भडांरण की क्षमता हैं। इस जीनबैंक में जननद्रव्यों क प्रभावी तथा सुरक्षित संरक्षण की सहायता हेतू जननद्रव्य संरक्षण बीज शरीरक्रिया विज्ञान, जैवविज्ञान तथा डी एन ए प्रोफाईलिंग हेतू सभी आधारीय अनुसंधान के लिए आधुनिकतम प्रयोगशालाए अपलब्ध हैं।

राष्ट्रीय जीन बैंक में उपयोगिता के आधार पर बीजों को तीन अलग अलग विधियों द्वारा संरक्षित किया जाता हैं–

आधार संग्रह या दीर्घावधि संरक्षण – इस प्रक्रिया द्वारा बीजों का लम्बी अवधि (25 या अधिक साल) के लिए भंडारित किया जाता हैं। इसके लिए बीजों को 5–7 प्रतिशत आर्दता पर –18°C तापमान पर एक विषेश प्रकार के अल्यूमिनिय थैलियों में वैक्यूम सीलिंग के द्वारा रखा जाता है। इस लिए बीज अंकुरण क्षमता का मापदड. 85 प्रतिशत या उससे उपर हैं इसमें स्वपरागित फसलों के 2000 तथा परम्परागित फसलों के कम से कम 4000 बीजों को रखा जाता हैं।

मध्यम अवधि संरक्षण – इस प्रणली से बीजों कों 2 से 25 वर्षों तक के लिए भंडारित किया जाता हैं। मध्यम अवधि भंडारण में तापमान 40ब सेल्शियस एवम् 35 से 45 प्रतिषत तक आपेक्षित आर्दता तक रखा जात हैं। इसमें, बीजों को किसी भी हवादार थैलियों या डब्बों में रख सकते हैं।

सक्रिय अवधि संरक्षण – सक्रिय संग्रहो को बहुगुणन, अनुसंधान एवम् फसल सुधार प्रयोग तथा वितरण के लिए षीघ्र उपलब्ध कराये जाने चाहिए। यह संग्रह एक या दो सीजन के लिए होता हैं अतः बीज को किसी भी प्रकार के थैली या डब्बे में रख सकते हैं। सक्रिय संग्रह को 10–150 सेल्शियस तापमान पर रखा जाता हैं।

राष्ट्रीय जीन बैक में अभी तक कुल 6733 नमूने संग्रहित किये गये हैं जिनमें कृष्ट फसलों तथा स्वापक फसलों के 4403, स्वजात/स्थानीय/जंगली प्रजातियों के 2265, अनुमोदित/नामित/संभावित अधिसुचित किस्मों के 26 तथा पंजीकृत जननद्रव्यों के 39 नमूने संग्रहित किये गये हैं। अधिकांश औषधीय तथा संगधीय पौधों में बीज प्रसुप्ति तथा बीज अंकुरण पर बहुत ही कम सूचना अथवा कुछ भी सूचना उपलब्ध नहीं हैं। अतः अब तक अधिकांश संख्या में बिना जॉच की गई प्रजातियों के बीजो पर शरीर क्रियात्मक तथा उनकी प्रसुप्ति अवस्था पर अध्ययन किए गये हैं। इन अध्ययनों के द्वारा अभी तक 55 विभिन्न औशधीय प्रजातियों में सुप्त अवस्था तोंडने तथा बीज अंकुरण क्षमता बढाने की प्रविधियों का विकास किया जा चुका हैं। जीन बैंक में संरक्षित सभी जनन द्रव्यों को पादप प्रजनकों, अनुसंधानकर्ताओं और उन्नतिशील किसानों को फसल सुधार कार्यक्रमों के लिए उपलब्ध कराया जाता हैं। यह सभी नमूने पादप सामग्री हस्तांतरण समझौते के अन्तर्गत दिये जाते हैं।

राष्ट्रीय बीज जीन बैंक वास्तव में बाहय स्थाने संरक्षण विधियॉ एक तरह से सुनियोजित बीमा योजनाऍ हैं जो भविष्य निधि के लिए हैं। यह विधि संरक्षण के साथ–साथ अनुसंधान शिक्षण व दोबारा पैदा करने के लिए जननद्रव्य सामग्री भी देती हैं।

आज बदलते पर्यावरण के गर्म मिजाज़ को देखते हुए सबसे बढ़िया विकल्प हैं खेती द्वारा संरक्षण अर्थात conservation through cultivation* इस विधि द्वारा किसान को कम लागत में अतिरिक्त आय, फार्मास्यूटिक्ल कम्पनियों को श्रेष्ठ खुदरा सामग्री तथा उच्चतम् गुणवत्ता वाली तथा आम आदमी को सस्ती पर विश्वश्नीय औषधी उपलब्ध कराती हैं।' किसानों को उनकी सामान्य फसल जैसे गेहूं चावल दलहन या तिलहन फसलों के साथ इनको खेती करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता हैं। ब्यूरो ने भी अपने विभिन्न केंन्द्रो पर विभिन्न प्रजातियों को खेतो में ही संरक्षण करने की सुविधा उपलब्ध कराई हैं।

औषधीय पौधों का सुनियोजित तरीके से इस्तेमाल तथा उनका सही तरीके से संरक्षण ही हमारी आने वाली पीढ़ी को स्वस्थ शरीर तथा शांत मन प्रदान कर सकता हैं। इसके लिए हमें आज ही चेतना होगा तथा इन औषधीय पौधों के अन्धाधुन्ध दोहन और उचित संरक्षण पर ध्यान केन्द्रित करना होगा।

बीज अंकुरण आर्दता विशेष प्रकार के अल्यूमिनिय थैलियों में वैक्यूम सीलिंग।

उच्च तुंगता स्थलों पर सामान्यतः पाई जाने वाली जठर आंत्र संबंधित समस्याएं एवं उनके निवारण हेतु विभिन्न प्रोद्यौगिकीय विकास में इनमास का योगदान

बृज गौरव शर्मा एवं असीम भटनागर
नाभिकीय औषधि तथा सम्बद्ध विज्ञान संस्थान, दिल्ली

परिचय

उच्च तुंगता (जैसे, लेह, लद्दाख, अल्मोड़ा, हिमालय) पर जनजीवन सामान्य की तुलना में दुर्लभ है। जिसका प्रमुख कारण वहां की वातावरणीय प्रतिकूल परिस्थितियां जैसे वातावरणीय अल्प तापमान, अल्प वायुदाब और कम ऑक्सीजन सान्द्रता। पिछले कई वर्षों के कार्यकाल में वैज्ञानिकों ने प्रतिकूल परिस्थिति के कारणवश होने वाली उदर सम्बन्धित समस्याओं को अनुसंधान के माध्यम से उल्लेखित किया है। आंकड़ों को आधार बनाकर दृष्टिपात किया जाए तो ज्ञात होता है कि उच्च तुंगता स्थलों पर वातावरणीय प्रतिकूल परिस्थितियों के फलस्वरूप निम्न प्रकार की उदर समस्याओं की प्रायिकता अधिकांश है–शारीरिक वजन में कमी, कब्ज, गैस का बनना, आंत्रशोथ, आंत्रशूल, पेट में मरोड़, असहिष्णुता। उपरोक्त समस्याओं के आधारभूत उच्च तुंगता स्थलों पर जीवन अत्यधिक दोषपूर्ण है। यद्यपि संसाधनों के अभाव में इस क्षेत्र में विकास पूर्णतया नहीं हो पाया है। अल्प ऑक्सीजन सांद्रता मूलभूत लेप्टीन एवं कोलियोसाइटोकाइन्स जैसे हार्मोनों के स्रवण में परिवर्तन देखा गया है। उदर घाव इत्यादि के प्रमाण उच्च तुंगता स्थलों पर कार्यरत मनुष्यों में प्राप्त हुए हैं जिसका प्रमुख कारण हेलिकोवेक्टर पायलोरी जीवाणु का प्रवास एवं अधिकांश उदर अम्ल का स्रवण हो सकता है। अतः प्रस्तुत लेख में उदर एवं आंत संबंधित विकारों एवं उनके निवारण हेतु विभिन्न तकनीकियों के विकास को दृष्टिपात किया गया है।

सामान्यतः पाए जाने वाले उदर एवं आंत्र संबंधित विकारों के लक्षण

उच्च तुंगता के अल्पकालिक प्रभाव से अरुचि उत्पन्न होती है जिसके कारण मितली एवं उल्टी आने के प्रभाविक लक्षण दिखाई देते हैं। ये लक्षण 80 प्रतिशत मनुष्यों में देखे जा चुके हैं। 62 प्रतिशत मनुष्यों में पेचिश एवं उदर विकृति असामान्य पाई गयी, क्रमशः 70 प्रतिशत लोगों के पेट में मरोड़ पायी गई, 36 प्रतिशत हैजा पर्वतीय स्थलों पर पाया गया। उल्लिखित स्थानों पर दीर्घकालीन जीवन व्यतीत करने के पश्चात् भूख में कमी, स्वाद ग्रंथियों की क्षमता का ह्रास इत्यादि लक्षण उत्पन्न होने लगते हैं। पर्वतीय स्थलों पर अत्यधिक समय व्यतीत करने के फलतः छोटी आंत्र में घाव व रक्त स्राव जैसे लक्षण देखे गए जो कि लद्दाख निवासियों में मूलभूत थे।

पर्वतीय स्थलों पर उदर एवं आंत्र की कार्यकी

तुंगता स्थलों पर प्रवेश के पश्चात् चक्कर आना, मितली आदि समस्याएं उत्पन्न हो जाती हैं। ये लक्षण तीन हज़ार मीटर से अधिक तुंगता पर दिखाई देते हैं। आंत्र हार्मोना जैसे लेप्टिन इत्यादि के स्रवण में आए परिवर्तन के फलतः भूख में कमी प्रारम्भ होने लगती है। हाल ही के अध्ययनों में पाया गया कि उच्च तुंगता के अल्पकालिक प्रभाव के फलतः उदर गति का ह्रास होता है जिसका सांकेतिक लक्षण है अपाचन। भोजन के अवशोषण के बाद ऊर्जा परिवर्तन हेतु आंत्र में जाना आवश्यक है और

उदर गति में आई कमी के फलतः भोजन पर विपरीत बल का प्रभाव पड़ता है और उल्टी मितली जैसे लक्षण प्रतीत होते हैं।

उदर संबंधित समस्याएं

पूर्व अध्ययन से ज्ञात हुआ है कि चार हजार की मीटर से अधिक जाने पर मुख की आंतरिक त्वचा में परिवर्तन होने लगता है जिसे मुंग रोग भी कहा जाता है। मंदाग्नि ग्रस्त लक्षण उच्च तुंगता स्थलो पर अधिकांशतः दिखाई देते हैं। अधिकांश समय ऊंचाई पर व्यतीत करने से शरीर में इरीथ्रोमाइसिनीया नामक रोग उत्पन्न हो सकता है। उदर घाव इत्यादि ऊतक विकृति भी उल्लिखित स्थलों पर प्रभावी होती है जिसका प्रभाव 44 प्रतिशत लोगों में देखा गया। उदर में अम्ल की स्रवण दर में गिरावट अध्ययन अनुसार देखी गयी। यदि एक सप्ताह से अधिक समय उल्लिखित स्थानों पर व्यतीत किया जाए तो पेप्सिन हार्मोन के स्रवण में कमी आ जाती है। लद्दाख के रक्षा सैनिकों में हुए वैज्ञानिक अध्ययन के फलतः हैलिकोवैक्टरपायलोरी नामक जीवाणु की प्रभावकारिता परे दृष्टिपात किया गया जिसके फलतः ग्रहणी (छोटी आंत्र) में रक्त स्राव देखा गया है।

आंत्र एवं बृहद आंत्र संबंधित रोग

आंत्रशूल एवं हैजा जैसी समस्याएं पर्वतीय स्थलों पर पहुंचते ही उत्पन्न होने लगती हैं जिसका प्रमुख कारण है आंत्र की पारगम्यता में आई वृद्धि। उल्लिखित परिस्थितियों के फलस्वरूप आंत्र में लाभदायक सूक्ष्मजीवी जैसे लेक्टोवैसिलस नामक जीवाणु इत्यादि की कमी हो जाती है एवं हानिकारक अनॉक्सीकारी जीवाणुओं की संख्या में वृद्धि होने लगती है, फलतः भोजन की पाचन क्रिया बाधित होती है। 70 प्रतिशत लोगों में आंत्र एवं बृहद आंत्र की गति में बाधित परिवर्तन देखा गया है और केवल 10 प्रतिशत लोगों में बृहद आंत्र में कर्क रोग पाया गया है। सूक्ष्मजीवाणुओं की संख्या में परिवर्तन के फलतः वायुरोग भी उत्पन्न होते हैं।

उच्च तुंगता स्थलों पर अपाचन

एक से तीन सप्ताह के समय अंतराल में ही शरीर के वजन में कमी आ जाती है जिसके कारकों पर दृष्टि डाली जाए तो अल्पताप, अल्पऑक्सीजन सांद्रता एवं अल्पायुदाब इत्यादि हो सकते हैं। शारीरिक जल, प्रोटीन एवं वसा इत्यादि की कमी पांच हजार मीटर से अधिक ऊंचाई पर जाने से होने लगती है। 4300 मीटर से अधिक ऊंचाई पर विपरितात्मक नाइट्रोजन नियंत्रण के फलतः भी अपाचन की समस्या को वैज्ञानिक अध्ययन में खोजा गया है। कैलोरी ऊर्जा के अधिग्रहण में 43 प्रतिशत की गिरावट देखी गयी। हाल ही में हुए संगणक द्वारा अध्ययन के फलतः पाया गया कि अल्प ऑक्सीजन सांद्रता ही शारीरिक वजन में हुई कमी का कारण है। अमेरिकन आयुर्विज्ञान वैज्ञानिक संस्थान में मूत्र में जाइलूलोज की सांद्रता का मापन कर अपाचन को सिद्ध किया है। प्रयोगात्मक पशुओं में प्रयोग द्वारा पाया गया कि 3700 मीटर की ऊंचाई पर शरीर में वसा का पाचन, 500 मीटर की ऊंचाई पर प्रोटीन का पाचन अवरूद्ध होता है ।

जठरांत्र संबंधित विकारों के निवारण हेतु विकसित विभिन्न तकनीकियां

उच्च तुंगता स्थलों हेतु भोजन निर्माण उपकरण एवं चूल्हे का विकास

अल्पताप के कारण उल्लिखित स्थलों पर ईंधन की खपत सामान्य की तुलना में अधिक होती है और प्रतिकूल परिस्थितियों के फलस्वरूप वहां आदर्श ईंधन का अभाव होता है। 80 फीसदी, कैरोसिन का प्रयोग बुखारी में हमारी रक्षा सेनाओं द्वारा किया जाता है। सर्वविदित् है कि कैरोसिन तेल के दहन/उष्मीकरण के दौरान कार्बनडाइऑक्साइड/कार्बनमोनोआक्साइड इत्यादि विषैली गैसों का उत्सर्जन होता है। प्रज्ज्वलन प्रक्रिया के दौरान मुक्त हुई ये विषैली गैसें वायुमण्डलीय गैसों के साथ

मिश्रित होकर मानव शरीर में विकार उत्पन्न करती हैं और सम्पूर्ण बुखारी को प्रदूषित करती है। उपरोक्त समस्या के निवारण हेतु तकनीकी माध्यम से चूल्हे का विकास किया गया है जिसे HABD कहा गया है। उस उपकरण का प्रयोग कर रक्षा सैनिक एवं सामान्य जनजीवन 35–40 प्रतिशत तक का ईंधन बचा सकते हैं और साथ ही उष्मीकरण/दहन के फलस्वरूप उत्सर्जित हानिकारक गैसों से भी बच सकते हैं। क्योंकि इस अनुसंधानित उपकरण में एक ही समय में उत्सर्जित (कैरोसिन के दहन द्वारा) ताप का प्रयोग भिन्न–भिन्न तीन स्थानों पर भोजन पकाने एवं जल–उष्मीकरण हेतु कर ईंधन की खपत व समय दोनों को बचाया जा सकता है। इसमें समायोजित नली के माध्यम से दहन के दौरान उत्पन्न विषैली गैसों को सुरक्षित स्थानों पर छोड़ा जा सकता है।

दही निर्माणक उपकरण

सर्वविदित है कि भोजन में दही का सेवन अत्यधिक लाभदायक होता है। दही आंत्र जीवाणुओं को सुव्यवस्थित एवं भोजन का अपघटन कर शरीर को ऊर्जा प्रदान करती है। जबकि उल्लिखित स्थानों पर अल्प–ऑक्सीजन सान्द्रता एवं वायुदाब के फलस्वरूप दूध का दही में रुपांतरण अत्यधिक कठिन/दुर्लभ होता है। इस क्षेत्र में प्रतिकूल परिस्थितियों के विपरीत जैव–प्रौद्योगिकी एवं भौतिकी रसायन के पहलुओं पर अनुसंधान कार्य के माध्यम से इस समस्या का सामाधान किया गया। प्रयोगशाला में अनुसंधान के फलतः वायुदाब नियंत्रणकारी उपकरण (दही उत्पादक उपकरण) को विकसित किया गया जिसके अन्दर ऐच्छिक वायुदाब(>30 पी एस आई) नियंत्रित कर सकते हैं। दही उत्पादन के लिए विशेष प्रकार के जीवाणु (प्रोबायोटिक्स) का परीक्षण किया गया एवं जीवाणु की वृद्धि के लिए उत्तरदायी भौतिक (वायुमण्डलीय दाब इत्यादि) एवं रासायनिक कारक (लेक्टोज 2X, कैल्सियम क्लोराइड, 0-02M) को निर्धारित किया गया। फलतः 60% $\pm$5 दही का उत्पादन तुलनात्मक रूप से अधिक पाया गया। दही उत्पादन उपकरण एवं अनुसंधानित जैव प्रौद्योगिक, रासायनिक कारकों का प्रयोग कर भारतीय रक्षासेना/सैनिक ही नहीं वरन् वहां जीवन व्यतीत करने वाले नागरिक प्रतिकूल परिस्थितियों में भी दही का उत्पादन कर सकते हैं।

अधिकतम बीजांकुरण उपकरण

अंकुरित बीजों (स्प्राउट्स) में उपस्थित लाभदायक पोषक तत्व (जैसे एन्जाइम, विटामिन, प्रोटीन इत्यादि) इन स्थानों पर होने वाली उदर समस्याओं के समाधान में लाभप्रद सिद्ध होते हैं। वातावरणीय प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण इन स्थानों पर बीजों का अंकुरण कठिन होता है जिसकी वजह से अंकुरित बीजों का प्रयोग दैनिक दिनचर्या में आहार के रूप में नहीं हो पाता है जबकि अंकुरित बीज महत्वपूर्ण एवं आवश्यक खाद्य सामग्री हैं। अतः इस क्षेत्र में प्रतिकूल परिस्थितियों के विपरीत जब प्रौद्योगिक एवं भौतिक रसायन के पहलुओं पर अनुसंधान के माध्यम से अधिकतम बीजांकुरण की तकनीकी को विकसित किया गया है। प्रयोगशाला में मेथी, मूंग, चना के बीजों का अंकुरण हेतु चुनाव किया गया। अंकुरित बीज के अधिकतम उत्पादन हेतु भौतिक एवं रसायनिक कारक (जैसे एथेनॉल, वायुमंडलीय दाब, आर्द्रता इत्यादि) को अनुसंधान के माध्यम से निर्धारित किया गया। एथेनॉल की विभिन्न सांद्रताओं का प्रयोग बीजों के विसंदूषण हेतु किया गया। प्रयोगशाला में तकनीकी माध्यम से वायुदाब नियंत्रणकारी उपकरण का निर्माण किया गया जिसे हाई एल्टिट्यूड स्प्राउटिंग डिवाइस कहा गया है। अधिकतम बीजांकुरण हेतु इस उपकरण में संतुलित भौतिक एवं रसायनिक कारकों का प्रयोग कर उल्लेखित तीन पादप प्रजातियों के बीजों को प्रयोगशाला (उच्च तुंगता उत्प्रेरित परिस्थितियों) में अंकुरित किया गया और 40 से 50 प्रतिशत तक अधिक बीजांकुरण पाया गया। अंकुरित बीजों में हुई पोषक तत्वों की वृद्धि को जैसे एन्जाइम, कार्बोहाइड्रेट्स, विटामिन, प्रोटीन, एन्टीऑक्सीडेंट इत्यादि को प्रायोगशाला में जैव रसायनिक मानक प्रयोग विधियों द्वारा आंकलित किया गया ।

निष्कर्ष

उच्च तुंगता स्थलों पर जठरांत्र संबंधित समस्याओं पर अनुसंधान कार्य धीमी गति से हो रहा है। इस क्षेत्र में अनुसंधान की गति को तीव्र करने की आवश्यकता है। उपर्युक्त लेख में उदर एवं आंत्र संबंधित समस्याओं के लक्षण जैसे उदर घाव, सूक्ष्मजीवाणु परिवर्तन, आंत्रशूल, जठरांत्र रक्तस्राव इत्यादि को उल्लेखित किया गया है। अनुसंधान के फलस्वरूप यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि स्प्राउटर उपकरण एवं प्रमाणिक भौतिक एवं रसायनिक कारकों का प्रयोग कर उच्च तुंगता स्थलों पर भारतीय रक्षा सैनिक एवं वहां जीवन व्यतीत करने वाले आम जन–जीवन उल्लेखित प्रतिकूल परिस्थितियों में भी बीजांकुरण कर आहार में प्रयोग कर विशिष्टीकृत उदर समस्याओं से बचाव कर सकते हैं। अनुसंधानित प्रौद्योगिक तकनीकियां अधिकतम ऊंचाई स्थलों पर जीवन सरल सुखद बनाने में लाभप्रद सिद्ध होगी।

राकेट के स्थैतिक परीक्षण में मोटर का सतह तापमान मापन

कैलास राऊत, गोरख काची, जयश्री श्रीनाध, रेणु गिल, दत्तात्रेय एरंडे,
प्रकाश क्षीरसागर, प्रवीण देशमुख, हिमांशु शेखर, तथा विनायक रासने
उच्च उर्जा पदार्थ अनुसंधान प्रयोगशाला, पुणे

प्रस्तावना

राकेट का स्थैतिक परीक्षण करने की सुविधा उच्च उर्जा पदार्थ अनुसंधान प्रयोगशाला में उपलब्ध है। राकेट नोदक का अनुसंधान एक बड़ी गतिविधी है। इस परीक्षण में राकेट मोटर का दाब और सतह तापमान मापे जाते हैं। इस मापन की नोदक के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

राकेट मोटर में भरे नोदक का ज्वलन इग्नाइटर में विद्युत धारा प्रवाहित करके किया जाता है। नोदक के ज्वलन से राकेट मोटर में गैस पैदा होती है, जो उच्च तापमान और दाब निर्माण करती है। गैस तीव्र गति से बाहर निकलती है और मोटर को विपरीत दिशा में गति देती है। यह दाब और बल विभिन्न उपकरणों पर रेकार्ड किए जाते हैं और परिमाणों का संगणन किया जाता है।

राकेट मोटर की सतह पर बढ़ने वाले तापमान का मापन भी अत्यंत महत्वपूर्ण परीक्षण है। स्थैतिक परीक्षण के समय राकेट मोटर का सतह तापमान यदि एक सीमा से अधिक बढ़ जाता है तो मोटर के आकार में विकृति आ सकती है और मोटर फट भी सकती है। इसलिए यह परीक्षण राकेट मोटर और तापमान रोधक की जांच में और उनके विकास में सहायक होता है।

सिद्धांत

थर्मोकपल (Thermocouple) सीबेक इफेक्ट (Seebeck Effect) के अनुसार कार्य करते हैं। जब दो विभिन्न प्रकार के धातुओं के तारे जोडकर दो जोड (joint) बनाकर जब उन्हें भिन्न तापमान में रखेंगे तो उनमें विद्युत धारा बहती है जो सीधा तापमान के अनुपातित (proportional) रहती है।

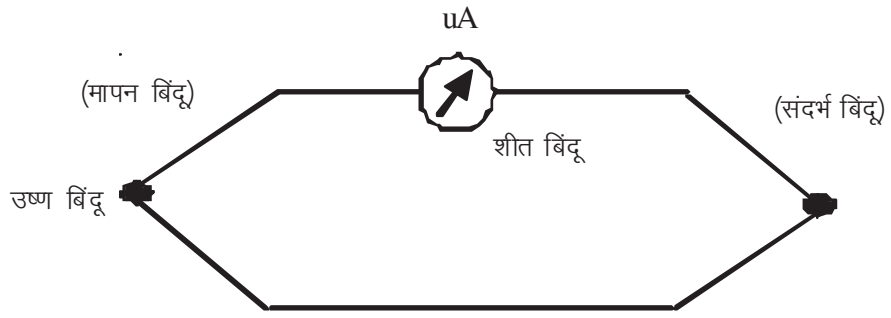

चित्र 1. सीबेक इफेक्ट।

विधि

राकेट के स्थैतिक परीक्षण के समय मोटर पर पूर्व निर्धारित स्थानों पर थर्मोकपल लगाए जाते हैं, जहाँ तापमान बढ़ने की संभावना होती है जैसे कि राकेट मोटर के जोड़। आवयश्कतानुसार लगभग 16 तक थर्मोकपल लगाए जाते हैं। स्थैतिक परीक्षण के दौरान थर्मोकपल मोटर के बढ़ने वाले सतह तापमान के अनुरूप विद्युत संकेत देते हैं जो कि सिग्नल केबल के द्वारा राकेट मोटर से (करीब 150 मीटर दूर) रेकार्डिंग रुम में तापमान मापन की 16 चैनल उपकरण प्रणाली है जिसके ऊपर थर्मोकपल से भेजा हुआ विद्युत संकेत रेकार्ड किया जाता है। इसके उपरांत कम्प्यूटर में सॉफ्टवेयर द्वारा राकेट मोटर के सतह तापमान का मूल्यांकन होता है।

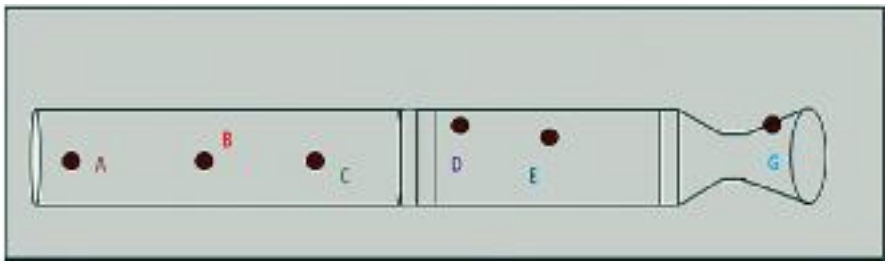

चित्र 2. पिनाका राकेट मोटर पर थर्मोकपल के विभिन्न स्थान।

चित्र 3. 16 चैनल तापमान मापन उपकरण।

परिणाम

तापमान समय आरेख में से यह पता चलता हैं की राकेट के स्थैतिक परीक्षण के समय अपेक्षित सतह तापमान 97 डिग्री सेल्सियस से कम हैं जो की मोटर की सुरक्षा सुनिश्चित करती है।

निष्कर्ष

राकेट नोदक के विकास के समय जब स्थैतिक परीक्षण होता है तो मोटर का सतह तापमान का मूल्यांकन करना अत्यंत आवश्यक है। इससे राकेट मोटर की तापमान सहन करने की क्षमता का पता चलता है और तापमान मापन द्वारा हम भविष्य में होने वाली दुर्घटनाओं को टाल सकते हैं। इसलिए वैज्ञानिकों को यह परीक्षण राकेट नोदक, रोधक और राकेट मोटर विकास में फायदेमन्द साबित होता है।

अवरक्त तापमापी

राजीव कुमार

लेजर विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी केन्द्र, दिल्ली

सूर्य के प्रकाश में दृश्य एवं अदृश्य विकिरण उत्सर्जित होता है। अदृश्य विकिरण में अवरक्त, अल्ट्रासोनिक विकिरण मौजूद रहता है। अवरक्त प्रकाश स्पैक्ट्रम विद्युत के दृश्य और माइक्रोवेब भाग के बीच स्थित है अवरक्त प्रकाश तरंगदैर्घ्य के एक दृश्य प्रकाश की तरह लालरंग रेंज से बैंगनी तरंगदैर्घ्य है। विद्युत चुम्बकीय वर्णक्रम (Electromegnatic Spectrm) के माइक्रोवेब क्षेत्र के करीब है। ''पास'' अवरक्त प्रकाश तरंगदैर्घ्य में दृश्य प्रकाश और 'दूर' अवरक्त के सबसे करीब है।

सुदूर अवरक्त तरंगें थर्मल हैं दूसरे शब्दों में हम गर्मी के रूप मे हर दिन अवरक्त विकिरण को महसूस करते हैं। एक विद्युत चुम्बकीय वर्णक्रम के अनुसार अवरक्त किरणों की निम्न तालिका के अनुसार उनके तरंगदैर्घ्य के समरूप रखा गया है।

तरंगदैर्घ्य

लगभग अवरक्त	NIR	0-75-1-4μ
लघु तरंगदैर्घ्य अवरक्त	SWIR	1-4-3μ
मध्य तरंगदैर्घ्य अवरक्त	MWIR	3-8μ
लंबी तरंगदैर्घ्य अवरक्त	LWIR	8-15μ
सुदूर अवरक्त	प्राथमिकी	15-100μ

अवरक्त विकिरण मुख्यतः 'गर्मी विकिरण' के रूप में जाना जाता है लेकिन किसी भी आवृत्ति का प्रकाश और विद्युत चुम्बकीय तरंगों सतह की उन्हें अवशोषित गर्मी होगी, सूर्य से अवरक्त प्रकाश केवल 49 प्रतिशत ही पृथ्वी की सतह पर पहुंच पाता है। यदि हम किसी वस्तु से कितनी ऊर्जा विकिरण होगी तो उसके लिए किस तरंगदैर्घ्य का प्रयोग होगा हमें कुछ सिद्धांतों को समझना होगा ।

स्टीफन वोल्टज मैन सिद्धांत

किसी पदार्थ से निकलने वाली ऊर्जा ब्लैक बॉडी रेडिएट प्रति सैकंड प्रति इकाई क्षेत्र की चौथी शक्ति के लिए अनुपातित है –

$$\frac{P}{A} = ó\, T^4 \quad J / m^2. S$$

$ó = 5.6703 \times 10^{-8}$ Watt /m^2 k^{-4}

गर्म आदर्श रेडिएटर के अलावा अन्य वस्तुओं के लिए व्यक्त किया गया है।

$P/A = E\, ó\, T^4$

जहां E वस्तु या पदार्थ की emissivity है एक पूर्णतः काले पदार्थ (Black body) के लिए E=1

वायेन का विस्थापन नियम

वायेन का विस्थापन नियम एक सरल समीकरण है कि एक सही काले रंग का उत्सर्जन अधिकतम की गणना है एवं तापमान तरंगदैर्घ्य से अनुरूप रहता है। जब किसी पदार्थ में ऊर्जा अवशोषित होती है तो उसका तापमान बढता है जिस पदार्थ की क्षमता अवशोषित करने की है उतनी ही क्षमता उस पदार्थ की उत्सर्जित करने की होती है परन्तु यदि पदार्थ अधिक ऊर्जा अवशोषित करता है जिससे उसका रंग बदलता है एवं जब किसी के तापमान Black body रेडिएटर बढ़ जाती है सूक्ष्म ऊर्जा बढ़ जाती है विकिरण और विकिरण चक्र के शिखर तरंगदैर्घ्य करने के लिए कदम जब अधिकतम से मूल्यांकन किया जाता है Plank प्लैंक विकिरण का Formula चोटी तरंग दैर्घ्य भरे तापमान के उत्पाद के लिए निरन्तर होना पाया जाता है।

$\ddot{e}$ Peak $T = 2.898 \times 10^{-3}$ mk

$\ddot{e}$ Peak = तरंगदैर्घ्य शिखर

T = absolute तापमान

किसी भी तापमान पर कितना तरंगदैर्घ्य होगा, इससे ज्ञात किया जा सकता है। लगभग सभी वस्तु या पदार्थ अवरक्त विकिरण उत्सर्जित करते हैं अपनी पृष्ठीय सतह के तापमान के अनुसार जो 0^0k से अधिक होता है अवरक्त विकिरण उस तापमान के अनुरूप ही अपना तरंगदैर्घ्य संयोजित करती हैं। उदाहरण–

एक सामान्य तापमान (Room temperature) पर उसका कितना तरंगदैर्घ्य होगा–

T तापमान $= 23^{0C}$ or 300^{0k}

$\ddot{e}$ = ?

Constant value = $\sim 2.898 \times 10^{-3}$ mk

$\ddot{e}$ max ~ 10μ होगा

लगभग सभी पदार्थ या वस्तु 1-20 μm तक तरंगदैर्घ्य में अवरक्त विकिरण उत्सर्जित करते हैं।

अवरक्त विकिरण की तीव्रता उस वस्तु या पदार्थ पर निर्भर करती है, जिसे emissivity कहते हैं, एक पूर्ण काले वस्तु की emissivity लगभग 1 इकाई है।

अवरक्त तापमापी मुख्यतः अदृश्य अवरक्त तरंगदैर्घ्य को मापने के लिए प्रयोग भी किया जाता है, इसके अनुभाग हैं–

.....प्रकाशिक लैंस

.....स्पेक्ट्रल फिल्टर

..... सेंसर

.....इलैक्ट्रॉनिक सिगनल प्रॉसेसिंग इकाई

सभी अवरक्त तापमापी D:S पर कार्य करते हैं अर्थात लक्ष्य आकार और दूरी जिसे हम optical Resolution कहते हैं।

FOV (Field of view) –देखने के क्षेत्र का दृष्टिकोण जो उपकरण पर संचालित है और इकाई की प्रकाशिकी द्वारा निर्धारित किया जाता है।

Emissivity :- Emissivity एक निश्चित तापमान पर एक वस्तु से निकलने वाले तापमान पर एक रेडिएटर या Black body द्वारा उत्सर्जित ऊर्जा के अनुपात के रूप में परिभाषित किया गया है।

उपयोग

अवरक्त तापमापी का उपयोग गैस डायनामिक लेजर के अंतर्गत लक्ष्य का तापमान मापने के लिये प्रयोग में लाया जाता है।

वनस्पतियों के वैदिक तथा ज्योतिष ज्ञान का वैज्ञानिक प्रतिलेखन, महत्त्व और वर्तमान में उपयोगिता

दीपक व्यास, प्रीति व्यास, तथा प्रवीण पाण्डेय

परिचय

वैदिक काल में भारत एक विकसित देश था उस युग में जितना शिक्षित विद्वान समाज था वह पेड पौधो के प्रति कृतघ्न था क्योंकि जानते थे कि इन्ही पौधों की वजह से अन्य जीव जंतुओं का जीवन संभव है वैदिक युग की अनगिनत कथाओं में ये स्पष्ट रूप से वर्णित है। पृथ्वी पर जो भी जीवन है वह पौधों की वजह से ही संभव है और वानस्पतिक जगत हमें भोजन ईधन छत्रछाया रेशे औषधिया इत्यादि प्रदान करता है और यही वजह है कि उस युग में अनेक पेड़ पौधो को ईश्वर का दर्जा दे रखा था।

पौराणिक साहित्य में पृथ्वी को सात द्वीपों में बाँटा गया था ये सात द्वीप सात समुंदर से घिरे हुए बताए गए है जो सात समुंदर थे इन्हे खारे पानी का, गन्ने के रस का, मदिरा का घी का, दूध दही का और शुद्व पानी का बताया गया है। इन समुद्रों से घिरे हुए सातों द्वीपों पेड़ पौधों के नाम से जाने गए।

1 जम्बूद्वीप– जो कि जामुन के पेड के नाम से जाना जाता है जिसका वानस्पतिक नाम सिजियम क्यूमिनि है। जम्बूद्वीप में नौ देश और नौ पहाड सम्मिलित थे।

2 प्लक्षद्वीप– प्लक्ष संस्कृत भाषा का शब्द है पीपल के वृक्ष का नाम है जिसका वानस्पतिक नाम फाइकस रिलिजियोसा है। विष्णु पुराण के आधार पर जम्बूद्वीप प्लक्षद्वीप से घिरा हुआ था। स्कंद पुराण में सरस्वती नदी का उद्गम विष्णुजी के घडे से बताया गया है जो कि प्लक्षद्वीप से होते हुए हिमालय तक पहुँचती है। वमन पुराण में पीपल के वृक्ष को ही सरस्वती का उद्गम बताया गया है ऋग वेद में भी इस बात की पुष्टि की गई है।

3 श्याल्मलीद्वीप– इसका नाम श्याल्मली के पेड़ से लिया गया है जिसका वानस्पतिक नाम बाम्बेक्स सिबा है । सामान्यतः इसको रूई का पेड़ कहा जाता है पुराणों में वर्णन मिलता है श्याल्मली द्वीप पर्वत के स्वरूप लिए हुए एक श्रोधा समुद्र को छूता है।

4 कुशद्वीप– इस द्वीप का नाम कश घास के पर नाम रखा गया है जिसका वानस्पतिक नाम डेस्मस स्टेचिया बाईपिन्नेटा है।

5 कुरंचद्वीप– इस द्वीप का नाम संस्कृत भाषा के शब्द करमच से लिया गया है और इसका जिक्र महाभारत में किया गया है आज कल यह द्वीप क्रौंच पर्वत के नाम से जाना जाता है जो कि हिमाचल प्रदेश में स्थित है।

6 शाकद्वीप–जो कि संस्कृत भाषा के शब्द शाक से लिया गया है जिसका संबंध सागौन वृक्ष से है जिसका वानस्पतिक नाम टेक्टोना ग्रांडिस है विष्णुपुराण के आधार पर शाक द्वीप चिरग समुद्र के अंदर था।

7 पुष्करद्वीप– पुष्कर संस्कृत भाषा का शब्द है जो कि कमल का नाम है कमल का वानस्पतिक नाम निलम्बो न्यूसीफेरा है।

आज के युग में कमल जल में पायी जाने वाली समस्त वनस्पतियों का राजा माना जाता है। और हमारे देश का राष्ट्रीय पुष्प माना जाता है।

वैदिक युग में दो महत्वपूर्ण रचनाएँ रची गई है :

1 रामायण

2 महाभारत

इन दोनों रचनाओं में उस युग के श्रेष्ठ ऋषि मुनि साधु संत और गुरूओं ने उसके तत्कालीन समाज और आने वाली संततियों के लिए जो शिक्षाएँ दी उनमें समस्त वनस्पतियों को मनुष्य के जीवन को सदाचार में रखने के लिए वर्णित किया गया है चाहे शुद्व शाकाहारी भोजन की बात हो, चाहे सुगंधित पुष्पों पौधों के माध्यम से उपवनों की संरचना की बात हो, यज्ञ में उपयोग में आने वाली समिधा हो, समस्त विकारों के उपचार के लिए औषधि हो पर्यावरण की शुद्वता हो, ग्रह ,नक्षत्र, राशियों के प्रभाव की संतुलन की बात हो ज्योतिष विज्ञान और राशियों का अध्ययन हो समस्त संस्कार मनुष्य के जन्म से लेकर उसकी मृत्यु तक समस्त संस्कारो को निभाने में के सूक्ष्म से सूक्ष्मतर पौधों से लेकर विशाल से विशालतम पौधों वृक्षों के उपयोग का वर्णन मिलता है।

सारणी 1. गणेश पूजन में उपयोग आने वाले पौधों का वर्णन।

नाम	वानस्पतिक नाम
कुश	डेस्मोस्टेचिया बाई पिन्नेटा
करौंदा	कैरिस कैरिण्डस
बेल	एजिल मार्मोलस
दूर्वा	सायनोडोन डेक्टीलान
धतूरा	धतूरा स्ट्रैमोनियम
बेर	जिजिफस मारीटियाना
लटजीरा	एचिरेंथस एस्पेरा
तुलसी	ओसिमम सैंक्टम
टाम	मैंजीफेरा इंडिका
क्नेर	केस्काबेला थिवेटिया
शंखपुष्पी	इवाल्वूलस एल्सीवायडिस
टनार	पूनिका ग्रेटेनम
छेवदार	सिड्रस देवदारा
मदवना	टोरिगेनम वल्गेर
निरगुंडी	वाईटेक्स निरगुंडी
जायफल	मिरीस्टीका फ्रेंगेंस
गण्डाली	एकोरस कैलेमस
झंड	प्रोसोपिस सिनेरेरिया
पीपल	फाइकस रिलिजियोसा
अर्जुन	टरमीनेलिया अर्जुना
मदार	कैलोट्रापिस प्रोसेरा

श्रीमद्भागवत् पुराण में कहा गया है:

देखो ये वृक्ष कितने भाग्यवान है। इनका सारा जीवन दूसरों की भलाई के लिए ही है। ये स्वयं दूसरों की भलाई के लिए ही है। ये स्वयं तो हवा के झोंके, वर्षा, धूप, पाला सब कुछ सहते है

परन्तु उनसे हम लोगों की रक्षा करते है। मैं कहता हूँ कि इन्हीं का जीवन सबसे श्रेष्ठ है क्योंकि इनके द्वारा सब प्राणियों को सहारा मिलता है, उनका जीवन निर्वाह होता है। जैसे किसी सज्जन पुरूष के घर से कोई याचक खाली हाथ घर नहीं लौटता है वैसे ही इन वृक्षों से सभी को गोंद, राख, कोयला, अंकुर और कोंपलों से भी लोंगों की कामना पूर्ण करते है।

अर्थवेद में कहा गया है कि खड़े–खड़े वृक्ष कह जाते है।

वाराहपुराण में वृक्षों की महत्ता को प्रतिपादित करते हुए कहा गया है :

जो पीपल, नीम या बरगद का, एक अनार या नारंगी के दो, आम के पाँच व लताओं के दस वृक्ष लगाता है, वह कभी भी नरकीय पीडा को नहीं भोगता है और न ही नरकीय यात्रा करनी पड़ती है।

विष्णुपुराण में तुलसी को समस्त वृक्षों एंव वनस्पतियों में सर्वोतम बताया गया है।

धार्मिक मान्यता यह भी है कि जिस घर में नित्य तुलसी की पूजा होती है वहाँ पर यमदूत नहीं पधारते है।

वृक्षारोपण को धर्म का एक महत्वपूर्ण अंग माना जाता है।

अधर्मी पुत्रों की अपेक्षा सडक के किनारे लगाया गया एक मात्र वृक्ष अधिक श्रेष्ठ है, जिसकी छाया के नीचे थके पथिक विश्राम करते हैं।

वेद पुराण एंव उपनिषदों जैसे ऐतिहासिक ग्रन्थ जो हमें सांस्कतिक विरासत के रूप में मिले हैं, में अनेको वृक्षों एंव वनस्पतियों के विभिन्न उपयोंगों का वर्णन मिलता हैं। पदमपुराण के अनुसार यदि किसी स्थान पर लगातार बारह वर्ष तक तुलसी लगी रहती है तो वह स्थल भगवान विष्णु का साक्षात वास स्थल माना जाता है, वर्तमान में इसकी पत्तियों का उपयोग कफनाशक, पित्तनाशक, ज्वरनाशक इत्यादि के रूप में किया जाता है। शिवपुराण में रूद्राक्ष जिसका वानस्पतिक नाम एलियोंकार्पस गेनीट्रस है। जिसको ज्वर नाशक, ज्ञानवर्धक, ऐश्वर्य, मोक्ष, वैभव तथा प्रतिष्ठा प्रदान करने वाला बताया गया है।

रामायण में अशोक सीता के अत्यन्तम शोक का सहभागी रहा है।

वैदिक शास्त्र में अशोक की छाल का बहुत महत्व है। स्त्रियों के कई रोंगों में इसका उपयोग बताया जाता है।

कदंब पुष्पों का विष्णु पूजा में प्रयोग किया जाता है। इसीलिए श्री कृष्ण व विष्णु मंदिर के प्रागंण में कदबं का वृक्ष लगाया जाता रहा है।

बादल के दिवस के प्रथम कदंब के फूल को दान करके कवि गुरू वाल्मीकिजी श्रावण का गीत प्रस्तुत करने आया हूँ। श्रावण मास में खिले प्रथम पुष्प को देखकर कवि गुरू गीत गा उठे।

कर्णिकार वाल्मीकिजी का रामायण में प्रिय वृक्ष रहा है।

हे कर्णिकार आज फूलों के लदने से तुम्हारी बहुत शोभा हो रही है। मेरी प्रिया साध्वी को तुम्हारे फूल बहुत प्रिय थे। यदि तुमने उसको कहीं देखा हो तो मुझसे कहो।

अपनी आयु के प्रथम वर्ष में मनुष्यों द्वारा दिए गये जल को नारियल वृक्षों ने पीकर, उसके भार को सिर पर धारण कर लिया। उन्होंने उस थोडे से उपकार को याद रखते हुए अपने मधुर जल से मनुष्यों को उपकृत किया। नारियल और साधु पुरूषों का जीवन आदर्श एक है कि वे किए उपकार को भूलते नहीं है।

रामायण के बालकाण्ड में संतो के चरित्र की तुलना कपास से की गई है।

रामायण के बालकाण्ड में ही सुपारी, केला, आम, मौलसिरी, कदम्ब, तमाल के वृक्षारोपण का वर्णन मिलता है।

रामायण के बालकाण्ड में ही हल्दी ,आम के पत्ते, सुपारी, पान, गोरोचन आदि को मांगलिक कार्यों के लिए अनिवार्य बताया गया है।

सारणी 1. रामायण में वनस्पतियों का वर्णन।

क्रं	वैदिक ग्रन्थों में	हिन्दी नाम	अंग्रेजी नाम	वनस्पतिक नाम	काण्ड
1	टाम्र	आम	मैंगो	मैंगीफेराइण्डिका	बालकाण्ड ,अयोध्याकाण्ड, अरण्याकाण्ड, किष्किन्धाकाण्ड, सुन्दरकाण्ड,
2	क्काकुम	अर्जुन	अर्जुन ट्री	टरमीनेलिया अर्जुन	बालकाण्ड,अयोध्याकाण्ड, अरण्याकाण्ड, किष्किन्धाकाण्ड, सुन्दरकाण्ड, युद्धकाण्ड
3	तिन्दुक	तेंदू	एंबोनी	डायोस्पाइरोस एम्ब्रियोप्टेरिस	बालकाण्ड, अयोध्याकाण्ड, अरण्याकाण्ड
4	बॉवरी	बेर	प्लम	जिजिफस जुजुबा	बलकाण्ड, अयोध्याकाण्ड, किष्किन्धाकाण्ड एंव युद्धकाण्ड
5	प्लाक	धान	पैडी	ओराइजा सेटाइवा	बलकाण्ड, अयोध्याकाण्ड, किष्किन्धाकाण्ड एंव युद्धकाण्ड
6	खादिर	खैर	अकेसिया	अकेशिया कैच्यू	बालकाण्ड,
7	देवदारू	देवदार	हिमालयन सिडर	सिड्रस देवदारा	बालकाण्ड, अयोध्याकाण्ड , उत्तरकाण्ड
8	अश्वकन्द	अश्वगन्धा	अश्वगन्धा	विदेनिया सोमनीफेरा	बालकाण्ड,
9	प्लक्ष	पाकर	पाकर	फाइकस इन्फेक्टोरिया	बालकाण्ड उत्तरकाण्ड युद्धकाण्ड
10	कुश	कुशघास	कुशग्रास	एन्ड्रोपोगोन नारडे. डिस	बालकाण्ड ,अयोध्याकाण्ड, अरण्याकाण्ड, किष्किन्धाकाण्ड, सुन्दरकाण्ड,
11	बकुल	मौलश्री	बकुला ट्री	मिमुसोप्स एलेंजी	बालकाण्ड ,अयोध्याकाण्ड, अरण्याकाण्ड, किष्किन्धाकाण्ड, सुन्दरकाण्ड,
12	माध्वी	बसन्ती	क्लिस्टर्ड हिप्टेज	हिप्टेज मडेब्लोटा	किष्किन्धाकाण्ड
13	परिभद्र	मन्दर	मन्दर ट्री	इरिथ्रिना इन्डिका	अरण्यकाण्ड एंव उत्तरकाण्ड
14	पदभ	कमल	लोटस	निलम्बो न्यूसीफेरा	बालकाण्ड उत्तरकाण्ड युद्धकाण्ड किष्किन्धाकाण्ड
15	नक्तमाल	करन्ज	वोन्डक नट	पेंगामिया ग्लेबरा	युद्धकाण्ड
16	न्यग्रोथ	वट वृक्ष	बैनयन ट्री	फाइकस बैल्गाले. न्सिस	युद्धकाण्ड
17	नागेश्वर	नागकेसर	केबराज सेफ्रान	आर्कोकार्पस लोंगीफोलिया	सुन्दरकाण्ड अरण्यकाण्ड युद्धकाण्ड

18	प्नस	कटहल	जैकफ्रूट	आर्टोकार्पस इन्ट्रीगरीफोलिया	अरण्यकाण्ड
19	ढाडिम	अनार	पोमिग्रेंट	पुनिका ग्रेनेटम	उत्तरकाण्ड अयोध्याकाण्ड सुन्दरकाण्ड
20	भूर्ज	भोजपत्र	बर्च	बेटुला यूटिलिस	अयोध्याकाण्ड
21	केसर	केसर	सेफान	क्रोकस सेटाइवस	युद्धकाण्ड किष्किन्धाकाण्ड

वैदिक ग्रन्थों में वर्णित ज्योतिष ज्ञान का वैज्ञानिक प्रतिलेखन

ज्योतिष शास्त्र में द्वादश राशियों, नौ ग्रह और सत्ताइस नक्षत्र होते है। दस प्रकार के प्रत्येक व्यक्तियों का तीन प्रकार के वृक्षों से संबंध हो सकता है। यदि व्यक्ति इन तीन प्रकार के वृक्षों से प्रकृति को हरा–भरा बनाए और इन वृक्षों की सेवा करें तो प्रकृति व प्रकृति का आन्नद लेने वाले व्यक्ति हमेशा सुखी रहेंगें, क्योंकि नक्षत्रों का प्रभाव व्यक्ति के कर्मों पर पडता है।

उत्तर दिशा में शुभ प्लक्ष (पिलखन), पूर्व में न्यूग्रोथ, गूलर दक्षिण (यमदेवता) में और पश्चिम में अश्वस्थ उत्तम होता है।

सारणी 3. नक्षत्र एवं देवताओं से जुडी वनस्पतियों का वर्णन दिया गया।

क्र	नक्षत्र	देवता	वृक्ष
1	अश्विनी	अश्विनी कुमार	कुचिला
2	भरणी	यम	ऑवला
3	त्तिका	अग्रि	गूलर
4	रोहिणी	ब्रह्मा	जामुन
5	मृगशिरा	सोम (चंद्र)	खैर
6	आर्द्रा	रूद्र (शिव)	शीशम, काली पाकड
7	पुनर्वसु	अदिति	बॉस
8	पुष्य	बृहस्पति	पीपल
9	आश्लेषा	सर्प	नागकेसर
10	मघा	पितृ	बरगद
11	पूर्वाफाल्गुनी	भग	पलाश
12	उत्तराफाल्गुनी	अर्यमा	रुद्राक्ष, पाकड
13	हस्त	सविता (सूर्य)	रीठा
14	चित्रा	विश्वकर्मा	बेल
15	स्वाति	वायु	अर्जुन
16	विशाखा	इन्द्र और अग्रि	अपराजिता
17	अनुराधा	मित्र	मौल श्री
18	ज्येष्ठा	इन्द्र	चीड
19	मूल	राक्षस (निर्ऋति)	शाल
20	पूर्वाषाढा	जल	अशोक, जलवेतरस
21	उत्तरा ाढा	विश्वदेव	कटहल
22	श्रवण	ब्रह्मा	अर्क (आकडा)
23	धनिष्ठा	विष्णु	शमी
24	शतभिषा	वसु	कदम्ब

25	पूभा	वरुण	आम
26	उभा	अजैकपाद	नीम
27	रेवती	अहिर्बुध्न्यु	महुआ

सारणी 4.

राशि	वृक्ष
मेष	ऑवला
वृष	बोरसली, गुलमोहर, सिरस
मिथुन	नीम, पीपल, चम्पा
कर्क	अशोक, नीम, खैर
सिंह	पीपल
कन्या	पीपल
तुला	बोरसली, गुलमोहर
वृश्चिक	गूलर, नागौर
धनु	आम, बरगद
मकर	बरगद
कुंभ	कदंब
मीन	बहेडा

सारणी 5. नवग्रहों के ग्रहों के शांति हवन की समिधाऐं एंव वृक्ष।

ग्रह	समिधा	वृक्ष
सूर्य	आक	बेलपत्र, अपामार्ग
चन्द्र	ढाक	खिरनी, हरसिंगार, चमेली
मंगल	खैर	बेलपत्र
बुध	अपामार्ग	विधारा, ऑवला
बृहस्पति	पीपल	नारंगी, केला, आम, पपीता
शुक्र	गूलर	सरपोंखा, फूलवाडी अरण्डी
शनि	शमी	शमी
श्राहु	दूर्वा घास	पीलीकटहली, बबूल
केतु	कुशा	नारियल

सारणी 6. वैदिकग्रन्थों में वर्णित कुछ वनस्पतियाँ एवं वर्तमान में उपयोग।

क्रं	नाम	वैदिकग्रन्थों में वर्णित कुछ वनस्पतियाँ एवं वर्तमान में उपयोग
1	अशोक	सीता–अशोक एंव रक्त–अशोक नाम से लोक–प्रसिद्व इस वृक्ष का उल्लेख वाल्मीकि ने पंचवटी में स्थित पाँच शुभ वृक्षो में किया गया है। पाँच वृक्ष है–अश्वत्थ न्यग्रोथ बिलव धात्री (ऑवला) एंव अशोक। राम के वनवास में सहकार (आम) कर्णिकार किंशुक और बकुल के वृक्षों के साथ अशोक भी सहभागी रहा है। फूलों के भार से जिनके अग्र भाग झुक गए है अशोक वृक्ष ही सीताजी का शोक कम कर रहे है। इस वृक्ष के फूल व पत्तों को लेकर उमा महेश्चर आदि देवताओं की अर्चना होती है। इसके पेड की छाल से जनोसिया अशोका का मूल आर्क बनता है। स्त्री रोंगों में लोग अशोकारिष्ट अशोकघृत इत्यादि नाम से लोग औषधि का प्रयोग करते आ रहे है।

2	पिप्पल (अश्वत्थ क्षीरद्रुम)	स्कंद पुराण में अश्वत्थ को नारायण और वट को शिव कहा गया है। उत्तर दिशा में शुभ प्लक्ष पिलखन पूर्व में न्यग्रोथ गूलर दक्षिण में और पश्चिम में अश्वत्थम उत्तम होता है। संक्रामक रोंगों के फैलने के समय अश्वत्थ की पूजा का महत्व है। मुँह का स्वाद खराब होने भोजन से अरूचि व पित्त आदि दोषों के निवारण में अश्वत्थ के फलो का उपयोग बताया जाता है। इसका उपयोग नाक से रक्तस्राव को रोकने के लिए रक्तातिसार फेफडो से रक्तस्राव रक्त मिली खाँसी अधिक मासिक मुँह से खून गिरना खून मिला पेशाब बवासीर, आदि रोंगों के उपचार में उपयोग किया जाता है।
3	कदम्ब	कदम्ब एक पर्णपाती वृक्ष है जो भारत व चीन में बहुतायत में पाया जाता है। कदंब का पुष्प प्राचीन युग में स्त्रियों के श्रृंगार में खूब प्रयुक्त होता है। कदंब पुष्पों का विष्णु पूजा में प्रयोग किया जाता है। इसीलिए श्रीकृष्ण व विष्णु के प्रांगण में कदंब का वृक्ष लगाया जाता है।
4	कर्णिकार	यह भी महर्षि वाल्मीकि का प्रिय वृक्ष रहा है। भरत जब माताओं एंव बंधु–बांध्वों सहित भारद्वाज ऋषि के आश्रम में पहुँचते है तब वे अपनी माता सुमित्रा का परिचय अत्यंत सुंदर व मार्मिक शब्दों में कराते है। इसका वर्णन औषधि के रूप में चरक संहिता व सुश्रुत संहिता आदि वैद्यक संबंधी पुस्तकों में मिलता है। इसकी पत्तियों के गूदे का प्रयोग सनाय की पत्तियों के साथ किया जाता है। बंगाल की तरफ फली के गूदे को तंबाकू में मिलाकर सुगंधित व मीठा बनाते है।
5	कोविदार	वाल्मीकि रामायण में दशरथ पुत्रों की पताका को कोविदार ध्वज कहा गया है। इसकी कच्ची कली नरम होती है इनकी कलियों का प्रयोग सब्जी के रूप में किया जाता है। तंत्र विद्या को मानने वाले इसे तरूराज कहते है श्राद्व के अवसर पर जिन पदार्थो का होना आवश्यक है कचनार उनमें से एक है।
6	नारिकेलम्	वाल्मीकि रामायण इसका वर्णन दो स्थानों पर मिलता है। वाल्मीकि रामायण में हनुमान जब सीता की खोज में लंका पहुँचते है तब वहाँ की समुद्रतटीय पहाडियों पर नारियल एंव केतकी के वनों के बीच जा उतरते है। आश्रम में नारियिल का वृक्ष गृहस्थियों के लिए धन देने वाला होता है। नारियल के फल मांगल्य सौभाग्य व समृद्धि के सूचक माने जाते है उत्तर भारत में वैष्णवों देवी की पूजा हो महाराष्ट्र गोवा या केरल कोई सामाजिक धार्मिक अनुष्ठान विवाह आदि नारियल के साथ ही पूरे होते है। नारियल का पानी मीठा होता है।
7	नीम्ब्	यह औषधीय महत्व का पौधा है। जिसका उपयोग विभिन्न रोंगों के उपचार में किया जाता है। नीम की लकडी अत्यंत मजबूत और आयु अत्यंत दीर्घ होती है। फर्नीचर व खेतों के औजार बनाने के लिए यह लकड़ी अत्यंत अपयोगी होती है वायु को शुद्व करने से लेकर अनाज व कपडों की कीडों से सुरक्षा से लिए रक्त शोधन व चर्मरोंगों के इलाज के लिए नीम अत्यंत गुणकारी है।
8	किंशुक	वेदों में पलाश के औषधीय महत्व का वर्णन किया गया है। रामायण में किंशुक का वर्णन रक्तरंजित और शरीर की उपमा के रूप में आता है। ब्यूटिया नाम इसे प्रसिद्व वनस्पतिज्ञ अर्ल ऑफ ब्यूट के नाम पर दिया गया है। वेदों में पलाश के औषधीय महत्व का वर्णन किया जाता है। वाल्मीकि रामायण में इसका वर्णन रक्त रंजित उपमा के रूप में आता है। यज्ञ व हवन में इसका प्रयोग होने के कारण इसे याज्ञिक भी कहते है। गोल ओंति वाले चिकने मोटे पत्तों का प्रयोग धार्मिक अनुष्ठानों साथ ही पत्तल व दोंनों के रूप में भी इसका उपयोग होता है। इस वृक्ष की की गोंद का प्रयोग दवाओं के रूप में किया जाता है। इसकी लकड़ी की चम्मच व लकड़ी समिधा का प्रयोग हवन यज्ञ व अन्य धार्मिक अनुष्ठानों में किया जाता है।
9	बकुल	बकुल की पत्तियों फल छाल का प्रयोग औषधि के रूप में किया जाता है। पेट के रोंगों के लिए भी बकुल का प्रयोग लाभकारी होता है। सुगंधित पुष्प पक्षियों के लिए आवास व भोजन एंव औषधि के रूप में इसका उपयोग के साथ घनी ठंडी छाया और मजबूत वृक्ष के रूप में बकुल एक अत्यंत सुंदर वृक्ष है। राष्ट्रपति भवन व इंडिया गेट के घास के लॉन में इसके अत्यंत पुराने विशाल वृक्ष देखे जा सकते है।

10	शेफालिका	इस वृक्ष के पुष्प सूर्योदय होते ही वर्षा की बूँदो का तरह झरने लगते है। वाल्मीकि रामायण में सीताहरण के बाद राम वृक्षों से अपनी प्रिय का पता पूछते है। शेफालिका अर्थात जिसमें शिलीमुख आंनदपूर्वक मैथिली में इसे समसिंहार के नाम से पुकारा गया अर्थात कल्याण करने वाले शिव का श्रृंगार अर्थात हरसिगांर। लैटिन में इसे निकटेन्थिस अर्बोट्रिस्टि कहते है।
11	वेणु (तृणध्वज)	कवि वाल्मीकि ने भी पंचवटी में राम की कुटिया में बाँस के प्रयोग का उल्लेख किया है। बिहार में पत्तों सहित हरे बॉस की टहनी विवाह मंडप में लगाना शुभ माना जाता है।
12	बिल्व	वाल्मीकि रामायण में दशरथ द्वारा पुत्रेष्ठि यज्ञ स्थापित यूपों में बिल्व के भी यूप थे। चीनी व गुड मिलाकर इस गूदे का लोग शर्बत बनाकर पीते है। पेट व गुर्दे की व्याधियों लू लग जाना आदि रोंगों में इसका उपयोग किया जाता है। इसके औषधीय गुणों के कारण इसके फल व पत्ते पवित्र माने गए है और श्रीफल कहकर अधिष्ठात्री देवी लक्ष्मी से जोड दिया गया है।
13	न्यग्रोथ	वाल्मीकि रामायण में इसे श्यामन्यग्रोथ कहा गया है प्रयाग में स्थित यही श्यामन्यग्रोथ अक्षयवट के नाम से प्रसिद्व हुआ है। वट पीपल पाकड कटहल गूलर को पंचक्षीर वृक्षाणि कहते है। इसकी टहनियों व पत्तियों को तोडने से दूध जैसा श्वेत तरल पदार्थ निकलता है। प्राचीन काल में वट वृक्ष की छाया में ही ऋषि मुनि अध्ययन शिक्षा यज्ञ आदि कार्य करते।
14	शाल्मली	साहित्य में शाल्मली के नाम से विख्यात सेमल सेंबल या फिर सिंबल वृक्ष का वर्णन रामायण महाकाव्य से ही मिलता है। इस वृक्ष को रशमी रूई का वृक्ष भी कहते है अपने विशाल आकार व दीर्घायु के कारण वाल्मीकि ने रक्तरंजित घायल शरीर की तुलना शाल्मली वृक्ष से की है। शाल्मली की लकडी हल्की होती है विशेष उद्देश्य से इसका उपयोग किया जाता है।
15	आम्र	सस्त साहित्य में आम मंजरी को जिसे सहकार आम्रचूत व नवचूतप्रसव भी कहते है सुगंध व सौंदर्य से भरा पडा है हिंदी में इस मंजरी को बौर भी कहते है आम अत्यंत गुणकारी फल है भारतीय रसोई की रानी है हरा आम लू आदि उपचारों सर्वोत्तम उपचार है।
16	कश	यह पंचतृणमूल के अंतर्गत आता है अर्थात कुष काश शर दर्भ तथा इक्षु कुश की जडे पृथ्वी में बहुत गहराई तक फैली होती है प्रायः समस्त धार्मिक कार्यों में कुश का प्रयोग किया जाता है यज्ञ का संपादन कश से होता है।
17	दुर्वा	इसका स्वभाव बहुवर्षीय होता है। इसके पुष्प हरिताभ या नीलारूण हेते है। दवू पशुओं के लिए उत्तम खाद्य है हरी दूव जब सफेद हो जाती है तो श्वेत दूर्वा कहते है यह कफ पित्तनाशक स्तम्भन व्रणरोपण दाहप्रसमन वर्ण्य छर्दिनिग्रहण रक्तशोधक।
18	तुलसी	हिन्दू धर्म में बहुत आदर व सम्मान के साथ पूजा होती है। शालिग्राम मूर्ति में चढे हुए तुलसी की पत्तियों में मात्रा में पारा होता है। उनमें क्षुधा बढाने की क्षमता होती है। इसका पत्ता सारे रोंगो को ठीक करता है यह सरदर्द की महाऔषधि है।
19	शीशम	शीशम का तेल त्वचा संबंधी रोगों के उपचार के लिए तथा रक्तशुद्वि में प्रयुक्त होता है। फर्नीचर तथा पत्तियों का पेसट घाव के उपचार में उपयोगी होता है।
20	अश्वकन्द	आँखो की शक्ति बढाने में मूलअर्क प्रयोग होता है। वात मानसिक परिश्रमजनित शारीरिक दुर्बलता में क्षम की खॉसी में प्रयुक्त होता है। इसके मूल अर्क का सेवन बल वीर्य और कांति को बढाता है।
21	शिरीष	सीताहरण के पश्चात् राम जब किश्किंधा क्षेत्र में रहते हैं तब जंगल में खिले सुंदर पुष्पित वृक्ष की ओर लक्ष्मण को संकेत करते है। वर्तमान में फर्नीचर बनाने में कृषि उपकरणों अथवा काष्ठ की सजावटी वस्तुए खिलौने बनाने में इसका प्रयोग होता है।

पौधे और मानव इतिहास

इतिहास में ऐसा उल्लेख मिलता है कि भारत में दूध और शहद की नदियॉ बहा करती थी और आम भारतीय आर्थिक रूप से सुदृढ थे। उस समय में विदेशी यात्रियों में से एक मैंगस्थनीज लिखते है कि शायद ही कभी इस देश में अकाल की स्थिती पैदा हुयी हों। पादप सम्पदा से सम्बन्धित विवरण जो मिलता है, उसमें काली मिर्च जिसे पाइपर नाइग्रम, जिसका अन्तर्राष्ट्रीय महत्व माना जाता था। पश्चिम, मिश्र और दक्षिण यूरोपीय में केवल राजा या धनवान व्यक्ति ही

काली मिर्च का इस्तेमाल करते थे और उसकी कीमत सोने के बराबर आकी जाती थी। ईशा के चार सौ साल बाद सिबा की महारानी सोलेमन गयी तो अपने साथ ऊँट और काली मिर्च साथ ले कर गयीं। लगभग इसी समय जब गौंथ ने आक्रमण किया और हजारों लोंगो को और उसने वहाँ के राजा से पाँच हजार पौण्ड सोना, तीन हजार पौण्ड काली मिर्च और तीस हजार पौण्ड चाँदी की माँग की।

तेरहवीं और चौदहवीं शताब्दीं में मकानमालिक मकान का किराया काली मिर्च के रूप में लिया करते थे। राजा–महाराजे स्वागत के रूप समय काली मिर्च ही भेंट किया करते थे। ये भी देखने में आता है कि लोग अपनी वसीहत पुत्र–पौत्रों को काली मिर्च के रूप में दिया करते थे। हरमन ने 1958 अपनी किताब "Great hm of Discoveyr" में लिखते है कि कस्टम डयूटी, किराया, टैक्स, कोर्ट की फीस काली मिर्च के रूप में अदा होती थी। जमीन की खरीददारी, हरजाना, हथियार की खरीदी ये सब काली मिर्च के बदले मिलते थे। शानदार घोडे, कीमती जेवहरात, बेहतरीन कालीन, दुर्लभ फर और सुंदर महिला ये सब काली मिर्च के बदले प्राप्त किए जा सकते थे। इतिहासकार ये भी कहते हैं कि सबसे पहले परसियन काली मिर्च और मसालों को भारत से लेकर गए थे, कई रास्ते होते हुए रोम तक पहुँचे, अरबों ने इस व्यवसाय को अपनाया वियतनामों के बाजारों में बेंचा, इसके बाद दमस्कस, स्तानवुल और बेरूत में बेचा। वैनिस जब मेडिटेरियन का राजा बना तो अरबों ने अपना व्यापार सिलॉन और दूसरे देशों में बढ़ा दिया। ये सभी तथ्य साबित करते हैं कि पेड–पौधे कितने बेशकीमती होते है।

इन वनस्पतियों के अलावा अन्य वनस्पतियों का समुचित ज्ञान लिपिबद्व कर औषधि महत्व एंव धार्मिक मान्यता के आधार पर जैव विविधता के वैदिक कालिक ज्ञान के माध्यम से प्रेषित और संरक्षित किया जा सकता है। जिससे बिगडते प्रकृति संतुलन को बचाया जा सकें।

जीवन में सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् की प्रतिस्थापना करने वाले वृक्षों को हम न भूले।

हिमालय की वनस्पतियाँ वस्तुतः शिव जी की जटायें हैं क्योंकि पेड़ पौधे वर्षा की बूँदे अपने में धारण कर धीरे धीरे जमीन पर लाते है।

फूल की तरह खिले चंदन की तरह सुगंधित बनें तो भगवान भी मस्तक पर धारण करते है।

जो व्यक्ति विधि पूर्वक पीपल वृक्ष का रोपण करता है वह चाहे जहाँ भी हो भगवान विष्णु के लोक को जाता है।

पीपल को जल देने से दरिद्रता कालकर्णी दुख दुश्चिन्ता तथा सम्पूर्ण दुख नष्ट हो जाते है जो बुद्धिमान पीपल के पेड की पूजा करता है। उसने अपने पितरों को तृप्त कर लिया भगवान विष्णु की उपासना कर ली तथा सम्पूर्ण ग्रहों का भी पूजन कर लिया। अष्टाँग योग का साधन स्नान करके पीपल के वृक्ष का चिंतन तथा श्रीगोविन्द का पूजन करने से मनुष्य कभी दुर्गति को प्राप्त नहीं होता है।

जो पलाश वृक्ष का रोपण करता है वह ब्रह्मलोक में जाकर देवताओं का सानिध्य प्राप्त करता है।

जो व्यक्ति शंकर जी के प्रिय वृक्ष वेल का रोपण करता है उसके कुल में कई पीढियों तक लक्ष्मीजी निवास करती है।

संदर्भ

1. वाल्मीकि रामायण

2. महागाथा वृक्षों की–प्रतिभा आर्य
3. रामायण की खेती
4. औषधियों का ग्रहों एंव नक्षत्रों से संबंध– डॉ गिरिजा शंकर शास्त्री
5. हर्बल सुगन्ध उत्पाद – डॉ त्रिभुवन नाथ उपाध्याय
6. बाणभट्ट की कृतियों में वनस्पति
7. भाव प्रकाश
8. अखण्डज्योति

वृक्षों से हमें यह शिक्षा मिलती है कि अपने जीवन को दूसरो के लिए समर्पित कर दो चाहे जीते जी भोजन फल औषधि देना है और मृत्यु पश्चात् अग्नी और ऊर्जा देना हो।

अंगूर निर्यात में विज्ञान तथा तकनीकी हस्तक्षेप

अजय कुमार शर्मा, कौशिक बनर्जी, अजय कुमार उपाध्याय, तथा पा गु अड़सूले
राष्ट्रीय अंगूर अनुसंधान केन्द्र, आई सी ए आर, पुणे, महाराष्ट्र

परिचय

फल फसलों में, अंगूर के निर्यात ने पिछले कुछ वर्षों में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया है। भारत में अंगूर की वाणिज्यिक खेती उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों जैसे महाराष्ट्र, कर्नाटक, तमिलनाडु और आंध्र प्रदेश राज्यों तक ही सीमित है। कुल उत्पादन का लगभग 94 प्रतिशत इसी क्षेत्र से आता है। इन राज्यों के अलावा जम्मू एवं कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, पंजाब, हरियाणा, मध्य प्रदेश और मिजोरम के कुछ भागों भी अंगूर का उत्पादन होता है। 2010–11 के दौरान अंगूर के तहत क्षेत्र 111000 हेक्टेयर और उत्पादन 1,235,000 टन था (Anonymous, 2012)।

इस दौरान अंगूर की उत्पादकता 11.1 टन थी। अंगूर के उत्पादन का 74.5 प्रतिशत ताजे फल के रूप में खाया जाता है, 22.5 प्रतिशत किशमिश उत्पादन के लिए सुखाया जाता है, 1.5 प्रतिशत से द्राक्षरा (वाइन) बनाई जाती है तथा 0.5 प्रतिशत अंगूरों का प्रयोग रस के लिए किया जाता है। भारत से अंगूर का निर्यात 1991 में आर्थिक उदारीकरण के साथ शुरू हुआ।

भारतीय अंगूर के प्रमुख आयातकों में ब्रिटेन, नीदरलैंड, जर्मनी, अमरीका, संयुक्त अरब अमीरात, सऊदी अरब, कतर, ओमान, बहरीन, श्रीलंका, बांग्लादेश, मॉरीशस, सिंगापुर और हांगकांग आदि देश हैं। वर्ष 2010–11 के दौरान यूरोपीय संघ, मध्य पूर्व और अन्य देशों को अंगूर का कुल निर्यात 93,609.3 टन (Anonymous,2012) था।

एक परिचर्चा

सन 2002–2003 में भारत से निर्यातित अंगूर के नमूने वृहद स्तर पर यूरोपीय संघ देशों में मानकों के अनुसार नहीं पाये गए। यह नमूने मुख्य रूप से यूरोपीय संघ देशों द्वारा निर्धारित कृषि रसायनों के अवशेषों की अधिकतम सीमा से अधिक होने के कारण अयोग्य थे। इसी समय यूरोपीय संघ देशों ने चेतावनी जारी की, जिसमें कहा गया कि यदि भारत सरकार कृषि रसायन अवशेषों की निगरानी के लिए समुचित प्रणाली लागू नहीं करती है, तो यह संघ भारत से भविष्य में अंगूर आयात नहीं करेगा।

इस चेतावनी को ध्यान में रखते हुए वर्ष 2003–04 में एपिडा, वाणिज्य मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा राष्ट्रीय सम्प्रेषण प्रयोगशाला (एन आर एल) की स्थापना राष्ट्रीय अंगूर अनुसंधान केंद्र (पुणे) में ताजा अंगूरों के निर्यात में कृषि रसायनों के अवशेषों की निगरानी के लिए की गई। इस कार्यक्रम के तहत एपिडा ने अपनी वेबसाइट पर ग्रेपनेट शुरू किया जिससे कि अनुरेखण–क्षमता को पारदर्शी बनाया जा सके। ग्रेपनेट पद्धति आज पूरे विश्व द्वारा सराही जा रही है। यह पद्धति आज खाद्य सुरक्षा मानकों को लागू कराने में पूर्णरूप सक्षम है।

सारणी 1. विभिन्न वर्षों में अंगूर–निर्यात।

वर्ष	अंगूर–निर्यात (टन)
2003	26470
2004	35525
2005	53908
2006	85563
2007	96723
2008	118133
2009	117247
2010	93609

विज्ञान और तकनीकी की भागीदारी

भारत को अंगूर निर्यात के क्षेत्र में उचित स्थान दिलाने तथा अंगूर के नमूनों के अस्वीकरण को यूरोपीय संघ के देशों में निम्नतम स्तर पर लाने के लिए विभिन्न राज्य सरकारों के सहयोग से अवशेषों की निगरानी योजना प्रमुख अंगूर उत्पादक/निर्यातक राज्यों (महाराष्ट्र, कर्नाटक तथा आंध्र प्रदेश) में लागू की गयी। इस योजना को लागू करने का मुख्य उद्देश्य आयातकों में अपनी विश्वसनीयता को बहाल करना था और यह बिना वैज्ञानिक हस्तक्षेप के संभव नहीं था। अंगूर निर्यात को सुनिश्चित करने के लिए अवशेषों की निगरानी योजना में निम्न स्तरों पर विज्ञान और तकनीकी की भागीदारी सुनिश्चित की गयी।

गुणवत्ता निर्धारण: किसी फल की गुणवत्ता ही बाजार में उसकी कीमत का निर्धारण करती है। गुणवत्ता मुख्यरूप से बाह्य तथा आंतरिक रूप से जानी जाती है। निर्यात के क्षेत्र में अंगूर की गुणवत्ता के मानक आयात करने वाले देश द्वारा परिभाषित किए जाते हैं और निर्यातक अंगूर की गुणवत्ता के हिसाब से निर्णय लेते हैं कि अंगूर के अमुक समूह को किस ग्रेड में किस देश को भेजा जाय। हालांकि, एगमार्क द्वारा स्थापित अंगूर के गुणवत्ता मानकों को यूरोप ने स्वीकार किया है और अंगूर के मणि–गुच्छों की ग्रेडिंग प्रयोगशालाओं द्वारा एगमार्क मानकों के आधार पर की जाती है। फिर भी सुपर बाजार तथा निजी ग्रेडिंग पद्धति को भी ध्यान में रखकर ग्रेडिंग की जा रही है।

नमूना संकलन: नमूना संकलन किसी भी विश्लेषण के आंकड़ों को प्रभावित करता है। उचित द्योतक नमूना ही सही जानकारी उपलब्ध कराता है अथवा त्रुटिपूर्ण नमूना परिणामों को गलत ढंग से प्रदर्शित करता है। सही द्योतक नमूना संकलन के लिए एक विशेष तकनीक विकसित की गई है जोकि अद्वितीय है। इस तकनीक में एक हेक्टेअर से 5 किलोग्राम अंगूर का नमूना लिया जाता है जिसमें यादृच्छिक ढंग से संकलित छोटे छोटे मणि–गुच्छ होते हैं जिन्हें पूरे प्लॉट से लिया जाता है। नमूना लेने की यह तकनीक त्रुटियों को निम्नतम करने में सक्षम साबित हुई है (Banerjee and Adsule 2011)।

तुड़ाई पूर्व अंतराल के मानकीकरण का निर्धारण: हमारे देश में अंगूर का उत्पादन विपरीत परिस्थितियों में किया जाता है जिसके कारण विभिन्न प्रकार के रोग तथा कीटों के प्रकोप की सम्भावना भी अधिक रहती है। इन रोगों अथवा कीटों को नियंत्रित करने के लिए अंगूर उत्पादक कीट एवम कवक नाशियों का प्रयोग करते हैं जिससे फसल हानि को कम से कम किया जा सके। कीट एवम कवक नाशियों की उत्पादक कंपनियाँ दिन प्रति दिन नए नए उत्पाद बाजार में ला रही हैं। इन उत्पादों के लिये तुड़ाई पूर्व अंतराल के मानकीकरण का निर्धारण बहुत ही महत्वपूर्ण है। प्रत्येक कीट एवम कवक

नाशी की पादप के अंदर अपव्यय दर भिन्न होती है। साथ ही साथ प्रत्येक कृषि रसायन के लिये अवशेषों की अधिकतम सीमा का निर्धारण विश्व की जानी पहचानी एजेंसियों द्वारा वैज्ञानिक विश्लेषण के आधार पर किया जाता है। समय–समय इन अवशेषों की अधिकतम सीमा में सुधार भी किया जाता है। अंगूर की मणियों में इन कृषि रसायनों के अवशेषों को नियंत्रित करने हेतु पौधे के अंदर इनकी अपव्यय क्षमता के आधार पर तुड़ाई पूर्व अंतराल का निर्धारण किया जा रहा है। समय समय पर तुड़ाई पूर्व अंतराल का विश्लेषण भी किया जाता है।

अंगूर उत्पादकों का सहयोगः अंगूर उत्पादकों के सहयोग के बिना अवशेष निगरानी योजना का लागू होना तथा इस योजना में विभिन्न स्तरों पर वैज्ञानिक एवं तकनीकी हस्तक्षेप असंभव है। अंगूर उत्पादकों से अपेक्षित है कि वह समय समय पर जारी सलाहों को मानें तथा अंगूर के बाग में की जाने वाले विभिन्न गतिविधियों का सही ब्यौरा संबन्धित अधिकारी को आवश्यकता होने पर उपलब्ध कराए। अंगूर उत्पादकों को सलाह दी गई है कि वे केवल अनुमोदित कृषि रसायनों का ही प्रयोग करें। छिड़काव के समय अमुक कीट अथवा कवक नाशी के तुड़ाई पूर्व अंतराल का ध्यान भी रखा जाय। ऐसे किसी पदार्थ का छिड़काव न किया जाय जो प्रतिबंधित हो अथवा अनुमोदित न हो। साथ ही साथ सुरक्षित रसायनों का ही प्रयोग की सलाह हमेशा दी जाती है। चित्र 1 सिफारिश किए गए तथा निगरानी में रखे गए रसायनों का वर्षवार ब्योरा।

विश्लेषणात्मक विधियों का विकासः अंगूर के उत्पादन में प्रयुक्त होने वाले विभिन्न कृषि रसायनों जैसेकि कीटनाशी, कवकनाशी, उर्वरक, वृद्धि नियंत्रक के साथ साथ दूषकों की निगरानी भी निर्यात को सुनिश्चित बनाने के लिए आवश्यक है। पूर्व में केवल 77 कृषि रसायनों के लिए ही "अवशेष निगरानी योजना" लागू की गई थी। प्रतिवर्ष इन रसायनों की संख्या में वृद्धि होती गई है और आज 174 कृषि रसायनों के लिए यह योजना लागू है। आज कोई भी रसायन अछूता नहीं है जो भारतीय कृषि उत्पादन में किसी भी स्तर पर प्रयोग में लाया जा रहा है और इस निगरानी योजना में शामिल नहीं है। अंगूर की मणियों में रसायनों की इस वृहत् संख्या का एक एक करके विश्लेषण संभव नहीं है। यदि एक–एक करके इन कृषि रसायनों, वृद्धि नियामकों अथवा कवक/कीट नाशियों का विश्लेषण किया जाय तो बहुत समय लगेगा साथ ही साथ बहुत से विश्लेषणात्मक उपकरणों की आवश्यकता होगी। इस समस्या से बचने के लिए बहु अवशेषों के विश्लेषण के लिए विश्लेषण विधियों का विकास तथा मानकीकरण किया गया है। आज बहुत ही आधुनिक स्तरीय उपकरणों जैसेकि जीसी एमएस/एमएस, एलसी एमएस/एमएस इत्यादि के प्रयोग से 8 विश्लेषण विधियों को अपनाकर 171 कृषि रसायनों का विश्लेषण किया जा रहा है। यह सभी विकसित विधियाँ विभिन्न प्रयोगशालाओं को स्थानांतरित की जाती हैं, जिससे कि विश्लेषण सुगम हो सके। इस क्षेत्र में संलग्नित निजी प्रयोगशालायें एक जैसी विश्लेषणात्मक विधियों का प्रयोग कर रही हैं जिससे एक जैसे परिणाम प्राप्त होते हैं।

प्रयोगशालाओं के आंकड़ों का मूल्यांकनः एपिडा ने इस कार्यक्रम में विश्लेषण कार्य करने के लिए विभिन्न निजी प्रयोगशालाओं को मान्यता दे रखी है। इन प्रयोशालाओं का विश्लेषण प्रतिवेदन यूरोपीय संघ के देशों द्वारा स्वीकार किया जाता है। राष्ट्रीय सम्प्रेषण प्रयोगशाला (एन आर एल) जो कि राष्ट्रीय अंगूर अनुसंधान केंद्र (पुणे) में स्थित है, इन प्रयोगशालाओं को वैज्ञानिक तथा तकनीकी सहायता देता है। साथ ही साथ इन प्रयोगशालाओं के आंकड़ों का मूल्यांकन भी समय समय पर करता है। इस जांच में प्रयोगशालाओं को अज्ञात नमूने दिये जाते हैं और उनकी जांच कराई जाती है। इन परीक्षणों में कुछ विदेशी प्रयोगशालाओं को भी सम्मिलित किया जाता है। इन परीक्षणों के परिणामों के आधार पर भी इन प्रयोगशालाओं का मूल्यांकन होता है। इन मूल्याकनों के द्वारा विश्लेषणों के परिणामों में विश्वसनीयता का प्रदर्शन होता है।

मानव संसाधन विकासः मानव संसाधन विकास आज समय की आवश्यकता है। दिन रोज नए नए रसायन आ रहे हैं साथ ही साथ उनके विश्लेषण के लिए विभिन्न उपकरणों या विश्लेषण विधियों का विकास भी किया जा रहा है। नए नए उपकरणों तथा नई विकसित विधियों को समझने तथा प्रयोगशाला में अपनाने के लिए प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है। भली भांति प्रशिक्षित व्यक्ति ही इन विधियों का प्रयोग करके विश्वसनीय आंकड़े दे सकता है। मानव संसाधन विकास के लिए राष्ट्रीय सम्प्रेषण प्रयोगशाला (एन आर एल) आवश्यकतानुसार समय समय पर प्रशिक्षणों का आयोजन करती है। इन प्रशिक्षण कार्यक्रमों में नमूना संकलन से लेकर विश्लेषण विधियों, उपकरणों के प्रयोग, आंकड़ा प्रबंधन इत्यादि को सम्मिलित किया जाता है। इन प्रशिक्षण कार्यक्रमों में विश्व के जाने पहचाने प्रशिक्षक सम्मिलित होते हैं।

अंतर्राष्ट्रीय समन्वय

अंगूर निर्यात को बढ़ावा देने के लिये अंतर्राष्ट्रीय समन्वय नितांत आवश्यक है। इसके लिये राष्ट्रीय सम्प्रेषण प्रयोगशाला (एन आर एल) ने विश्व की जानी पहचानी प्रयोगशालाओं के साथ समन्वय बनाया हुआ है। इन प्रयोगशालाओं के साथ समय समय पर वृत्त परीक्षणों में भाग लिया जाता है। जिससे एन आर एल अपनी विश्वस्तर पर पहचान बनाने में सफल हो सका है। एन आर एल द्वारा विकसित विभिन्न विश्लेषण विधियों को अंतर्राष्ट्रीय अनुसंधान पत्रिकाओं में प्रकाशित किए जाने के कारण यह विधियाँ विभिन्न विदेशी प्रयोगशालाओं द्वारा स्वीकार की जा चुकी हैं। आज यूरोपीय देशों को भारतीय प्रयोगशालाओं द्वारा विकसित विश्लेषण के परिणामों पर पूरा विश्वास है। और यह सब अंतर्राष्ट्रीय समन्वय के बिना सम्भव नहीं है।

निष्कर्ष

गुणवत्ता समय की मांग है। यदि हम बाजार में अच्छी गुणवत्ता के अंगूर उपलब्ध नहीं करा पा रहे हैं तो शीघ्र ही हमें अंतर्राष्ट्रीय बाजार से बाहर होना पड़ेगा। उसमें भी हमें ऐसे बाजार में बने रहना है जहां स्पर्धा अधिक है तो उस स्थिति में हमें उपभोक्ता की गुनवत्ता आधारित आवश्यकता के अनुसार आपूर्ति सुनिश्चित करनी होगी। उपभोक्ता की सजगता इस स्पर्धा को रोचक एवं कड़ा बना रही है। हमारे देश ने समय रहते अंगूर निर्यात के क्षेत्र में अनुरेखण–क्षमता को लागू करके साहसिक कार्य किया है। इस अवशेष निगरानी योजना को अब घरेलू बाजार में भी लागू करने में कोई परेशानी नहीं होगी। इस अद्वितीय योजना को अब एपिडा ने भारत से निर्यात होने वाले अन्य फल एवं सब्जियों के लिए भी लागू करने का संकल्प लिया है। ठीक इसी पद्धति पर एक और योजना द्राक्षरा (वाइन) के लिए वाइननेट नाम से लागू करने की तैयारी हो चुकी है। जिस दिन यह सभी योजनाएँ घरेलू आपूर्ति पर भी लागू हो जाएंगी उस दिन भारत चुनिन्दा देशों की पंक्ति में खड़ा होगा जो अपने नागरिकों को सुरक्षित–खाद्य उत्पाद उपलब्ध कराने में सक्षम हैं, लेकिन यह सब विज्ञान एवं तकनीकी हस्तक्षेप के बिना असम्भव है।

संदर्भ

1. Anonymous.2012- Grapes- In: Indian Horticulture Database 2011- Eds-: Kumar, B. Mistry, N.C. Singh, B-and Gandhi, C.P., National Horticulture Board, Gurgaon, India- pp 68-75.
2. Banerjee, K. and Adsule, P.G.2011. Food Safety in Indian Table Grapes Through Management of Agrochemical Residues, AgriBusiness and Food Industry, Feb 2011:30-33.

भारत चीन संबंध तथा राष्ट्रीय सुरक्षा की चुनौतियां

सत्यव्रत
एन आर एस राजकीय महाविद्यालय, रोहतक, हरियाणा

भारत चारों और से ऐसे राष्ट्रों से घिरा है जो राजनैतिक स्थिरता व सैनिक से दृष्टि से विश्व राजनीति में आकर्षण के केन्द्र बने हुए हैं। उत्तर में भारत को सिंक्याग व तिब्बत पृथक करता है। उत्तर पूर्वी क्षेत्र के प्राकृतिक अवरोध भारत को चीन व बर्मा से पृथक करते हैं। पूर्व में बंग्लादेश, पश्चिम में पाकिस्तान राष्ट्र स्थित हैं। एशिया के भू–राजनैतिक एंव भू–युद्धनीतिक परिवेश में भारत की केन्द्रीय स्थिति बनती है जो कि भविष्य में निर्णायक भूमिका अदा कर सकती है। सम्भवतः इसका कारण मैकाइन्डर के हृदय क्षेत्र का सिद्धान्त हो सकता है जिसे मैकाइन्डर ने पृथ्वी के दुर्ग की संज्ञा दी है।यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि किन्हीं राजनैतिक परिस्थितियों में भारत अपनी स्थिति के कारण विश्व की सांग्रामिक कला पर नियंत्रण कर सकता है।

जहां एक ओर 19वीं शताब्दी को 'ब्रिटिश–शताब्दी' एवं 20वीं शताब्दी को 'अमेरिकी–शताब्दी' के रूप में इतिहास में उल्लिखित किया जाता है वहीं बहुत से विचारक 21वीं शताब्दी को एशियाई शताब्दी की संज्ञा दे रहे हैं। चीन का निरन्तर बढ़ रहा आर्थिक–सामरिक सामर्थ्य एवं एशिया के भू–राजनैतिक परिदृश्य पर चीन के प्रभावशाली व विस्तारवादी रणनीतिक गतिविधियों की पड़ रही छाया भारत के सामरिक, आर्थिक व राजनैतिक हितों की पूर्ति में प्रमुख अवरोधक तत्व बनती जा रही है। भारत की सामरिक घेराबन्दी, सीमांतिक्रमण, सीमा–विवाद तथा पड़ोसियों के माध्यम से भारतीय सुरक्षा व अखण्डता के समक्ष चुनौती प्रस्तुत करने के चीनी सामरिक प्रयत्न भारत के लिए 21वीं सदी की सबसे बड़ी चुनौतियां हैं। एशियाई क्षेत्रों में अपने हितों की पूर्ति हेतु भारत व चीन के मध्य चल रही प्रतिस्पर्धा से भारतीय सुरक्षा का प्रभावित होना स्वाभाविक है।

दुनिया में भारत ,पश्चिम एशिया के बाद सार्वधिक अस्थिर क्षेत्र है। इसमें नेपाल में बढ़ते माओवादी विद्रोह के असर, तिब्बत में बढ़ती बेचैनी, बंग्लादेश में प्रतिक्रियावादी चरमपंथ के खतरनाक उभार इस क्षेत्र की अस्थिरता को और बढ़ावा दे रहे हैं, और इससे भारत की प्रगति एंव सामाजिक आर्थिक विकास पर अप्रत्यक्ष रूप से गहरा असर पड़ रहा है। भारत और चीन के मध्य प्राचीन काल से ही सास्कृतिक सम्बन्ध चले आ रहे हैं किन्तु भारत के स्वंतत्र होने के पश्चात् और चीन में भी कोमितांग सरकार के अंत के बाद जब भारत में लोकतंत्र व चीन में साम्यवाद का प्रादुर्भाव हुआ तभी दोनो देशों के भाइचारे में छुपी हुई कटुता प्रकट हुई। क्योंकि भारत की राजनैतिक, आर्थिक व सामाजिक व्यवस्थाएं, चीन से भिन्न थीं। भारत जहाँ शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व के मार्ग पर चलना चाहता है, वहीं चीन की नीति आक्रामक व विस्तारवादी हैं। इसके साथ ही भारत सम्पूर्ण एशिया में चीन के समान ही जनसंख्या, शक्ति और प्राकृतिक संपदा के संदर्भ में उसका प्रतिद्वन्दी बनने की क्षमता रखता है किन्तु चीन नहीं चाहता कि भारत बहुत अधिक शक्तिशाली बने या उसके समकक्ष पहुँचे। बौद्ध आत्मदाह इसलिए कर रहे हैं कि संसार का उनकी तरफ ध्यान आकर्षित हो। वे स्वतंत्रता, मानवाधिकार व लोकतंत्र में विश्वास करते हैं।

चीन भारत का सबसे बड़ा पड़ोसी देश है। क्षेत्रफल एवं जनसंख्या की दृष्टि से भारत और चीन एशिया के दो महाशक्ति देश हैं। वैसे तो चीन दक्षिण एशिया के दायरे में नहीं आता, परन्तु भारत, पाकिस्तान, नेपाल, भूटान और म्यांमार का पड़ोसी देश होने के कारण चीन की कूटनीति और राजनैतिक भूमिका से उसके पड़ोसी राष्ट्र की शान्ति एवं सुरक्षा प्रभावित होती है। भारत और चीन के सम्बन्धों का महत्व और अधिक बढ़ जाता है, जब उनके मध्य पारस्परिक सम्बन्धों का इतिहास सौहार्दपूर्ण न हो। चीन हमारे लिए सदैव सामरिक चिन्ता का कारण तो बना ही रहता है, तथा जहां तक भारत और चीन के बीच सहयोग एवं टकराव का प्रश्न है, शुरू से ही भारत और चीन के रिश्ते बनते–बिगड़ते रहे हैं, तथा इनके सम्बन्धों में तनाव का दौर इतना लम्बा रहा है कि बहुत जल्दी चीन से अनुकूल नतीजों की उम्मीद करना उचित नहीं होगा।

बीजिंग के अनुसार, नेपाल चीन के आंतरिक सुरक्षा के घेरे का महत्वपूर्ण हिस्सा है। वह नहीं चाहता कि कोई भी वैश्विक या क्षेत्रीय शक्ति इस सुरक्षा घेरे को तोड़े। 1950 में चीन द्वारा तिब्बत के अधिग्रहण के पश्चात् चीन के लिए नेपाल का रणनीतिक महत्त्व बढ़ गया है। नेपाल चीनी विद्रोही गतिविधियों के केन्द्र के रूप में उभरा। बीजिंग के लिए नेपाल को तिब्बत मुद्दे पर उदासीन बनाना तथा चीनी विद्रोही तिब्बती गतिविधियों का केन्द्र बनने से रोकना एवं शीत युद्ध के बाद नेपाल में पश्चिमी देशों विशेषकर अमेरिका की आर्थिक राजनैतिक सहायता के रूप में उपस्थिति को रोकना भी एक महत्वपूर्ण उद्देश्य बन गया है। अमेरिका के प्रभाव को कम करना तथा अपनी सुरक्षा को सुदृढ़ करना भी चीन के लिए महत्वपूर्ण हो गया है।

1 अक्टूबर 1948 को चीन में कामरेड माओ की कयादत में कम्यूनिस्ट हुकूमत का आगाज हुआ था। भारत चीन भारतीय हितों को नुकसान पहुंचाने के लिए पहले ही पाकिस्तान का प्रयोग करता रहा है और वह भारत को घेरने की नीति अपनाते हुए म्यांमार, बंग्लादेश, श्रीलंका मॉरीशस, मालद्वीव आदि पड़ोसी देशों में अपना प्रभाव बढाने में जुटा है। इनमें से कुछ देशों की सेनाओं को तो लगभग मुफ्त में हथियार और सामग्री दे रहा है। मेजर जनरल शेरू थेपलियन का मानना है, कि यूं जो भारत भी अपनी सेना के आधुनिकीकरण में लगा हुआ है, लेकिन जो तत्व आज के संदर्भ में विकास और सुरक्षा के लिए महत्वपूर्ण हैं जैसे मिसाइल, अंतरिक्ष और परमाणु क्षेत्र, उनमें चीन भारत से कहीं आगे है। हमें अपनी क्षमताओं का शीघ्र विकास करना होगा। अभी तक हमारे पास ऐसी कोई मिसाइल नहीं है, जो चीन की राजधानी बीजिगं तक मार कर सके जबकि चीन के पास अंतरमहाद्वीपीय बैलेस्टिक मिसाइलों का ज़खीरा है, जो अमेरीका सहित दुनिया के किसी भी हिस्से पर परमाणु बम गिरा सकती है। तीन साल पहले चीन ने अपने ही एक उपग्रह को मिसाइल से गिराकर दुनिया को यह संदेश दिया कि वह दुश्मन के किसी भी सैनिक या असैनिक उपग्रह को नष्ट करने की क्षमता रखता है।

इस सब के बावजूद जानकारों का कहना है कि चीन के लिए अब भारत से उलझना आसान नहीं है। वह जानता है कि जंग हुई तो उसकी माली हालत भी खराब होगी और सुपर पावर बनने का उसका सपना पूरा नहीं होगा। चीन की और से परमाणु हमले के खतरे की आशंका को नकारते हुए जानकार कहते हैं कि परमाणु हथियार सिर्फ डराने के लिए होते हैं, इसका इस्तेमाल करना खुद तबाही को बुलाना होता है। बेशक आप दुश्मन को तबाह कर दें लेकिन अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय का क्रोध फिर आपको नहीं छोड़ेगा। कुछ विशेषज्ञों का कहना है कि हथियारों की गुणवता में भारत चीन से आगे है लेकिन सख्या के मामले में चीन कहीं आगे है। दूसरी तरफ विश्वसनीय सूत्र ये भी मानते हैं कि नौसेना और वायु सेना में वह भारत से कमजोर है।

यह जानते हुए भी कि अब भारत इस तरह कमजोर नहीं है जैसा सन् 1962 में था तब भी चीन सीमा पर विवाद क्यों रखना चाहता है? चीन समझता है कि एशिया में आर्थिक और सैनिक मामलों

में भारत ही उसे टक्कर दे सकता है। दुनिया के देश तेजी से आर्थिक विकास कर रहे हैं। फिर भी चीन और भारत को ही विश्व की उभरती हुई ताकत माना जाता है। इसके साथ ब्राजील और दक्षिण अफ्रीका भी उभर रहे हैं। लेकिन मुख्य रूप से चीन ही सबसे मजबूत है।

चीन ने हिन्द महासागर के सेशेल्स द्वीप पर अपना पहला सैन्य ठिकाना स्थापित कर रहा है ताकि उसकी नौसेना के लिए आवश्यक आपूर्ति और अन्य सुविधाएं मिल सकें। यह चीन का विदेश में पहला सैन्य अड्डा होगा और उसके इस कदम से भारत की चिन्ता निश्चित तौर से बढ़ सकती है।चीन के रक्षा मंत्रालय ने एलान किया कि इस सैन्य अड्डे के जरिए वह आसपास के क्षेत्रों में आपूर्ति और सहायता अभियान में मदद कर सकता है। सयुक्त राष्ट्र समर्थित "इंटरनेशनल सीबेड अथॉरिटी" के साथ अनुबंध पर हस्ताक्षर करके चीन ने पॉलिमेटालिक सल्फाइड अयस्क के उत्खनन का अधिकार हासिल कर लिया है तथा इससे चीन को दस हजार वर्ग किलोमीटर तक उत्खनन का अधिकार मिल गया है, इसके साथ ही चीन अपना पहला विमान वाहक पोत सामने लाने वाला है।

अभी हाल ही में चीन को अपना अन्तरिक्ष स्टेशन स्थापित करने की दिशा में विशेष सफलता हासिल हुई है। चीन की योजना है कि वह सन 2020 तक अपना मानव युक्त अन्तरिक्ष स्टेशन बना ले। वह अपनी इस योजना पर सफलता पूर्वक आगे बढ़ रहा है। 3 नवम्बर को उसके द्वारा प्रक्षेपित किए गए मानव रहित अन्तरिक्ष यान शेनझेउ–8 को पहले से मौजूद अन्तरिक्ष यान तियानगोंग–1 से जोड़ दिया गया था। शेनझेउ को 1 नवम्बर तथा तियानगोंग को 28 सितम्बर को प्रक्षेपित किया गया था। दोनों अन्तरिक्ष यानों को जोड़ने की प्रक्रिया डॉकिंग धरती की सतह से 343 किलोमीटर से अधिक ऊंचाई पर सम्पन्न हुई। इसी तरह चीन के मानव युक्त कार्यक्रम के मुख्य नक्शानवीस सोउ जियानवीस ने कहा है कि चीन अब अन्तरिक्ष स्टेशन बनाने के लिए बुनियादी प्रौद्योगिकी की क्षमता से लैस हो चुका है। अब चीन के लिए वृहद स्तर पर इस कार्य को करना संभव हो जाएगा।

रक्षा विशेषज्ञ जी पार्थसारथी के अनुसार चीन से लगी सीमा पर ढांचागत सुविधाओं का विकास तेजी से किया जाना चाहिए। र्वतमान वैश्विक राजनीतिक क्षितिज पर संतुलित नीति ही श्रेयस्कर रहेगी क्योंकि अमेरीका और रूस के अतिरिक्त चीन ने भी भारत को अपना एक बाजार बनाना प्रारम्भ कर दिया है। भारत की आर्थिक शक्ति, सैन्य शक्ति, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में ज्यों–ज्यों विकास होगा, राष्ट्रीय हित पूरा होगा, अैार विश्व शक्तियाँ भारत को सम्मान की दृष्टि से देखेंगी।

सामान्य दृष्टि से विचार करें तो वैश्विक बौद्ध सम्मेलन और भारत चीन सीमा वार्ता के बीच कोई सम्बन्ध नहीं होना चाहिए। न बौद्ध सम्मेलन में भारत चीन चर्चा शामिल है और सीमा विवाद में तो इसके समाहित होने का कोई कारण ही नहीं था। बावजूद इसके लम्बे समय की तैयारी धरी रह गई और 15वें दौर की बातचीत को चीन ने स्थगित कर दिया। ऐसा लगता है कि यह भारत चीन सम्बन्धों में बढ़ती कटुता का ही सार्वजनिक प्रकटीकरण है। चीन के इस रवैये से भारत को आश्चर्यचकित होने की जरूरत नहीं है।

भारत चीन युद्ध को अगले साल पचास वर्ष पूरे हो जाऐंगे। इस दौरान दोनों के व्यापारिक व राजनयिक रिश्ते कितने ही मजबूत हुए हों किन्तु कड़वी हकीकत यह है कि दोनों देशों में शीत युद्ध निरन्तर जारी है। इस बीच चीन दुनिया की सबसे बड़ी महाशक्ति बनने की दिशा में बढ़ रहा है और उसकी दादागिरी भी बढ़ती जा रही है तथा उसका सबसे बड़ा शिकार हो रहा है भारत क्योंकि भारत के साथ उसका सीमा विवाद है। फिर वह भारत को अपना प्रतिद्वंद्वी मानता है, इसलिए सीमा विवाद का इस्तेमाल हमेशा भारत पर दबाव बनाए रखने के लिए करता है। कोई न कोई बहाना बनाकर भारत को धमकाना चीन की फितरत का हिस्सा बन गया है। एक वजह यह भी है कि भारत उसका मुँह तोड़ जवाब देने की बजाय उनके सामने झुक जाता है। चीन ने 28–29 नवम्बर को होने वाली भारत–चीन

वार्ता के पन्द्रहवें दौर को अचानक रद्द कर दिया। कारण मात्र इतना था कि दलाईलामा को दिल्ली में हो रहे बौद्ध सम्मेलन को संबोधित न करने देने की चीन की अपील को भारत ने नहीं माना। अंतर्राष्ट्रीय मामलों के जानकार इसे भरत चीन रिश्तों के लिए अच्छा संकेत नहीं मानते। लेकिन कुछ रक्षा विशेषज्ञों का कहना है कि इससे कुछ नुकसान भी नहीं है क्योंकि कछुआ चाल से चल रही भारत–चीन सीमा वार्ता एक रस्म अदायगी है जिससे सीमा विवाद हल होने की सम्भावना नहीं है।

चीन की क्षमता

चीन ने नई पीढ़ी की अन्तरमहाद्वीपीय मिसाइल का विकास कर लिया है। इसे पनडुब्बी से लान्च किया जा सकता है और यह मिसाइल कम से कम दस परमाणु हथियार ले जाने में सक्ष्म है। डोंगफोंग–41 के नाम से जानी जाने वाली यह अन्तरमहाद्वीपीय ('इन्टर कान्टिनेन्टल) बैलस्टिक मिसाइल आई सी बी एम को सचल प्रक्षेपण प्रणाली से दागा जा सकेगा। एशिया–प्रशान्त क्षेत्र नेतृत्व के लिए अमरीका'–चीन में प्रतिस्पर्धा होना लाजमी है। चीन किसी भी कीमत पर एशिया–प्रशान्त क्षेत्र में अमेरीका का दखल नहीं चाहता। भारत के प्रति चीन की बढ़ रही आक्रामक मनोवृत्ति पर अंकुश लगाने हेतु भारत को जापान व दक्षिण कोरिया के साथ आर्थिक व सामरिक सहयोग सुदृढ़ करने को प्राथमिकता देनी चाहिए। भारत–जापान–दक्षिण कोरिया की धुरी चीन पर नियंत्रण लगा सकती है। चीन व जापान के मध्य इस क्षेत्र में चल रही स्पर्धा का भारत को कूटनीतिक लाभ उठाना चाहिए।

अमेरिका के साथ सुदृढ़ हो रहे रणनीतिक व आर्थिक सम्बन्धों के व्यामोह में उलझे भारत को यह निरन्तर चिन्तन–मनन करना होगा कि भारत कहीं चीन के विरूद्ध अमेरिकी प्यादा न बन जाये। इतना ही नहीं, पाकिस्तान द्वारा भारत के विरूद्ध प्रायोजित आतंकवाद के प्रभावी प्रतिकार हेतु जहां एक ओर उसे आतंकवाद विरोधी गतिविधियों में तीव्रता लानी होगी वहीं अफगानिस्तान से नाटो सेनाओं के हटने से उत्पन्न सम्भावित रिक्तता की पूर्ति हेतु सतर्क चीन के इरादों पर भी नजर रखनी चाहिए। अतएव, एशिया में संकेन्द्रित होती जा रही शक्तियों की सामरिक–आर्थिक–राजनैतिक गतिविधियों से अपने सुरक्षा व विकास हेतु भारत को परिपक्व राजनयिक कौशल के समानान्तर वैश्विक शक्ति–संतुलन के भावी आयामों पर नजर रखना होगा।

वर्तमान वैश्विक राजनीतिक क्षितिज पर संतुलित नीति ही श्रेयस्कर रहेगी क्योंकि अमेरिकी और रूस के अतिरिक्त चीन ने भी भारत को अपना बाजार बनाना प्रारम्भ कर दिया है। अमेरिकी घेराबन्दी से भयभीत चीन, भारत से अधिक छेड़छाड़ करने का साहस नहीं करेगा। भारत का चीन एवं अमेरिका से सम्बन्धों में ज्यों–ज्यों वृद्धि होगी, ये दोनों शक्तियां सन्तुलित रहेंगी और भारत से मित्रता एवं सहयोग बढ़ाने का प्रयास करेंगी। भारत आर्थिक सैन्य शक्ति और ज्ञान–विज्ञान एवं उच्च प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में ज्यों–ज्यों विकसित होगा, विश्व शक्तियां भी इसे भय एवं सम्मान की दृष्टि से देखेंगी। यही कूटनीतिक विजय है। इसलिए गुटबन्दी के स्थान पर हमें एक शक्तिशाली राष्ट्र बनना होगा और राष्ट्रीय हितों के अनुरूप विदेश नीति निर्धारित करनी होगी।

सन्दर्भ

1. मेजर आर सी कुलश्रेष्ठ, युद्ध के साधन और साध्य, पृ 53।
2. डॉ नन्द किशोर त्रिखा, चीन, तिब्बत और भारत की सुरक्षा।
3. इंदुबाला, कम्पलसंस ऑफ लैंड लास्ट स्टेट, ए स्ट्डी ऑफ नेपाल इंडियन रिलेशन।
4. The Indian Express, Dec 17, 2010.

शतरंज का प्रबंधन में प्रयोग

मनमोहन गोयल
नौसेना भंडार, करंजा, मुम्बई

शतरंज का खेल आज पूरी दुनिया में मशहुर है। परन्तु ही कम लोग यह जानते है कि यह खेल काफी समय पहले भारत से ही पूरी दुनिया में फैला है। छठी शताब्दी में यह खेल "चतुरंगा" के नाम से जाना जाता था तथा गुप्त साम्राज्य से यह खेल काफी खेला जाता था। समय से साथ शतरंज का खेल और दंशों में पहुँच गया तथा साथ ही नियमों में एवं नाम में परिवर्तन आ गया और आज शतरंज, चैस के नाम से सम्पुर्ण विश्व में खेला जाता है। भारत में भी जब विश्वनाथन आनन्द, विश्व चैम्पियन बन कर आये, तब से यह खेल एक बार फिर से बुलँदियो पर पहुँच गया है।

शतरंज का खेल योजनाबद्ध तरीके से खेला जाता है तथा पुराने समय में राजाओं के मध्य जब युद्ध होना एक आम बात थी, तब राजा अपने सेनापतियो तथा मित्रो के साथ यह खेल खेलकर, युद्ध की योजना बनाते थे तथा बार बार शतरंज खेज खेल कर अपनी योजना क्षमता का विकास करते थे। यही कारण है कि शतरंज के खेल में पुराने समय में लडाई में जाने वाले राजा, वजीर, हाथी, घोड़ा, ऊँट तथा पैदल होते है, जो की आज के चैस में किंग, क्वीन, रुक, नाईट, बिशप तथा पौन के नाम से जाने जाते है। आज के समय में शतरंज केवल एक खेज के रूप में खेला जाता है, परंतु समय के साथ हम शतरंज के खेल की उपयोगिता को भूल गये है। शतरंज को हम अपने जीवन में काफी कुछ सिखने के काम में ले सकते है। अभी कुछ ही समय पूर्व, कुछ राज्यों में राज्य सरकारों ने शतरंज की उपयोगिता को समझते हुए, शतरंज को स्कूल के पाठयक्रम में शामिल किया है।

शतरंज के खेल के काफी फायदे है। यह खेल कहीं भी कभी भी खेला जा सकता है, तथा इस खेल के लिये कोई उम्र की सीमा भी नहीं है। मुख्य रुप से यह खेल हमको, योजना बनाना सिखाता है तथा यदि इस खेल के माध्यम से हम अपने जीवन में योजना बद्ध काम करने की आदत डाल ले, तो यह एक बड़ी उपलब्धि होगी। शतरंज के खेल से बुद्धि का विकास, एकाग्रता, तर्क सम्मत चिन्तन, कल्पना शक्ति का विकास, सजनात्मकता, स्वतंत्र सोच, आगे की सोचने की क्षमता, परिणाम आकँलन की क्षमता, वैज्ञानिक सोच आदि मे सहायता मिलती है। इन गुणो के कारण शतरंज का खेल, प्रबंधन क्षमता, वैज्ञानिक सोच आदि में सहायक साबित हो सकता है।

जैसा कि हम जानते है की दोनों पक्षों के पास बराबर की शक्ति होती है, फिर भी खेल में कोई एक खिलाड़ी ही खेल में जीत पाता है, यह दर्शाता है कि समान परिस्थितियों होते हुए भी अच्छी योजना बना कर चलने वाला व्यक्ति आगे बढ़ सकता है। इस खेल से ऐसी ही और भी सीख मिल सकती है, जिनको अपने जीवन में ढाला जा सकता है। नीचे ऐसे ही कुछ और उदाहरण नीचे दिये गये है:–

अच्छी शुरूआत, अच्छी बात

प्रबंधन के क्षेत्र यह माना जाता है की किसी भी काम की शुरूआत अच्छी होनी चाहिए। अंग्रजी मे भी कहा जाता है "First imoression is last impression" तथा "Good begging means half done". शतरंज शायद एक मात्र ऐसा खेल होगा जिसके लिए इतनी सारी "Openings" (खेल शुरू करने के

तरीके) लिखे गये है। शतरंज के खेल में, खेल शुरू करने का काफी महत्त्व है, तथा कोई बार तो खेल की शुरूआत ही खेल का अंत तय कर देती है।

जिन्दगी में हर चरण महत्त्वपूर्ण

प्रबंधन मे यह सिखाया जाता है कि किसी भी काम मे हर चरण महत्त्वपूर्ण है। शतरंज के खेल में इस बात को प्रयोगात्मक रूप में देखा जा सकता है। शतरंज के खेल को मुख्यतया तीन भागो में विभजित किया जाता है : "ओपनिंग" , "मिडल गेम", तथा "एन्ड गेम"। खेल को जीतने के लिये खिलाड़ी, खेल के तीनों भागो मे पारंगत होना चाहिए। इसी तरह से, जिन्दगी में किसी भी क्षेत्र मे आदमी को सफलता पाने के लिये उस क्षेत्र के बारे मे हर चीज को समझना जरूरी है।

मौका बार बार नहीं मिलता

कई बार लोगो यह सोचते रहते है कि मौका फिर आयेगा, देखेंगे, सोचेंगे। शतरंज के खेल में एक बार गया मौका, फिर से नहीं आता है। इसलिए, हर चाल सोच समझकर चलनी पड़ती है। जिन्दगी मे भी जब भी मौका आये मौके का फायदा उठाना चाहिए।

कमान से छूटा तीर वापस नहीं आता

शतरंज के खेल में एक गलत चाल भी पुरे खेल को हरा सकती है। हमारी जिन्दगी के किसी भी क्षेत्र मे हमे हर कदम सोच समझकर उठाना चहिए तथा कोई भी कार्य करने से पहले उसके फयदे नुकसान का अच्छे से आँकलन करना चाहिए।

एक तीर, दो शिकार

कहा जाता है कि योजना इस तरह से बनानी चाहिए की एक साथ दो काम हो जाये। शतरंज मे "फोर्क" इसी का उदाहरण है। फोर्क मे सामने वाले खिलाड़ी के दो या अधिक मोहरे एक साथ खतरे मे होते है, तथा इस तरह से उसके सामने कठिन परिस्थिति पैदा की जा सकती है।

इधर कुँआ, उधर खाई

कई बार जिन्दगी मे ऐसी परिस्थिति होती है कि जो भी निर्णय हम ले, मुश्किल का सामना करना पड़ेगा। शतरंज मे भी एक ऐसी ही स्थिति "जुंगज्वांग" होती है। इस परिस्थिति मे जिस खिलाड़ी की भी चाल हो, उसे या तो हारना पड़ता है, या फिर अपने कुछ मोहरो से हाथ धोना पड़ता है। शतरंज का खेल ऐसी परिस्थिति से बचने का तरीका भी बताता है।

खोटा सिक्का भी काम आता है

शतरंज के खेल मे पैदल को कम वैल्यू का माना जाता है, परन्तु खेल में कई बार इसी स्थिति पैदा हो जाती है कि पैदल की उपयोगिता, वजीर से भी ज्यादा हो जाती है। ऐसे ही जिन्दगी मे कभी–कभी ऐसे लोग भी हमारे काम आ सकते है, जिनको सामान्यतया हम ज्यादा महत्त्व नहीं देते। अतः हमें, सभी से दोस्ती बनाए रखनी चाहिए।

बलिदान कभी व्यर्थ नहीं जाता

बलिदान के महत्त्व बारे में भारत का इतिहास हजारों कथाओं से भरा पडा है, जो यह दर्शाता है कि आज दिया बलिदान हमारे कल के लिए कितना महत्त्वपूर्ण है, परंतु प्रयोगात्मक रूप मे ऐसे उदाहरण अपने व्यवहारिक जीवन मे मिलना कठिन है। शतरंज के खेल से हम बलिदान के महत्त्व के महत्त्व को समझ सकते है। इस खेल मे भविष्य के मिलने वाले लाभ का आँकलन करके अपने कुछ मोहरो को मरने के लिए छोड़ दिया जाता है, यहाँ तक कि कई बार तो वजीर को भी बलिदान करना

पड़ता है, परंतु यह बलिदान व्यर्थ नहीं जाता है, तथा खेल से आगे के चरणों में खिलाड़ी दिये गये बलिदान से भी अधिक सफलता प्राप्त करता है।

अन्त भला तो सब भला

कई बार जिन्दगी के खेल मे देख जाता है कि लोगों, छोटी–छोटी परेशानियों के कारण या फिर छोटे–मोटे नुकसान के कारण हार मान लेते है। शतरंज का खेल ऐसे लोगों के लिए यह संदेश देता है कि खेल को अन्तिम समय तक खेलो। हो सकता है कि आपक विरोधी कोई गलती कर बैठे तथा आप हारा हुआ खेल जीत सकते है। शतरंज के खेल मे "एन्ड गेम" काफी महत्त्वपूर्ण माना जाता है तथा इसके ऊपर भी काफा सारी किताबे लिखी गई है। शतरंज के खेल में केवल यह महत्त्वपूर्ण है कि खेल हारा या जीता, बाकी सारी चीजे गौण हो जाती है।

गया हुआ समय वापस नहीं आता

शतरंज के खेल मे हम समय प्रबंधन को अच्छी तरह से समझ सकते है। शतरंज के खेल मे दोनों खिलाडियों को अपनी चाल खेलने के लिए बराबर का समय मिलता है। जो खिलाड़ी, समय को अच्छे से प्रयोग मे लेता है, वो सफलता पाता है, तथा जो खिलाडी अच्छे से समय का प्रबंधन नहीं कर पाता है, वह खेल के अन्त मे उल्टी – सीधी चाल चल कर हार का सामना करता है।

उपरोक्त तो कुछ उदाहरण मात्र है। शतरंज के खेल का असली उपयोग तो तभी समझ मे आ सकेगा, जब हम इस खेल की शुरूआत करेंगे। खेल को तो खेल कर ही समझ सकते है, केवल एक लेख से नही। फिर जितना खेलेंगे, उतना समझेंगे तथा उतना ही अपने जीवन मे ढाल पायेंगे।

आज विज्ञान के विकास के कारण हमे अब शतरंज के माध्यम से प्रबंधन सिखने के लिए किसी और खिलाड़ी की जरूरत भी नही है, क्योंकि कम्प्युटर के माध्यम से हम खुद ही कम्प्यूटर के साथ यह खेल खेल कर अपने आप को इस खेल मे परांगत कर सकते है, तथा इस खेल को अपनी योग्यता के अनुसार कम्प्यूटर पर उचित लेवल पर खेल सकते है। कम्प्यूटर पर खेल कर हमको खेल सिखने का मौका तो मिलेगा ही, साथ ही साथ कम्प्यूटर से खेल खेलने के अच्छे तरीके भी सिख सखते है। और यदि कम्प्युटर से बारे हो गये हो तो इन्टनेट चालू करो तथा विदेश मे बैठे अपने दोस्त के साथ दोस्त के साथ शतरंज खेल अपनी प्रबंधन क्षमता का विकास करो।

सिट्रस के मूलवृन्तों के बीच डी एन ए चिन्हकों द्वारा अन्तर करने हेतु तकनीक

अम्बिका बी गायकवाड, सुनील अर्चक, तथा दीक्षांत गौतम
राष्ट्रीय डी एन ए छायाचित्रण अनुसंधान केन्द्र, नई दिल्ली

सारांश

सिट्रस (नीबूं वर्गीय) फलों के अच्छे उत्पादन हेतु बागों में बढ़िया मूलवृन्तों का उपयोग करना अनिवार्य है। ये मूलवृन्त (Root stock) जैसे कि रंगपुर लाईम तथा जम्भीरी विभिन्न रोगों को खास तौर पर फायटोफथोरा जड़ गलन को प्रतिरोधक प्रदान करते हैं। ग्राफ्टिंग तथा बड्डिगं के दौरान अनुचित मूलवृन्त, जैसे कि गलगल के उपयोग से उपयुक्त पैदावार न होने की वजह से किसानों को आर्थिक क्षति का सामना करना पड़ता है। चूंकि रंगपुर लाईम, जम्भीरी तथा गलगल के अंकुर तथा पौधे के बीच रूपात्मक चिन्हकों द्वारा अन्तर कर पाना कठिन है, इस कार्य हेतु डी एन ए, चिन्हकों पर निर्धारित तकनीक विकसित की गई है। लेख मे इसी तकनीक का विवरण किया गया है।

प्रस्तावना

सिट्रस (नीबूं वर्गीय फल) विश्व का एक महत्वपूर्ण फल प्रदान करने वाला जीनस है। सामान्य भाषा में भी ये फल सिट्रस फलों के नाम से प्रसिद्ध हैं, जिनमें संतरा, मौसमी, नीम्बू, लाईम, पमेलो, ग्रेपफूट आदि शामिल हैं। इनके प्रमुख उत्पादक देश ब्राजील, अमरीका तथा चीन है। भारत में सिट्रस फलों का महत्व आम तथा केले के पश्चात् तृतीय स्तर पर है। भारत में इन फलों का उत्पादन 0.53 मिलियन हैक्टेयर क्षेत्र पर किया जाता है जिससे लगभग 4.8 मिलियन टन की उपज प्राप्त होती है। भारत में खट्टे फलो वाले वृक्षो में मेंडरिन, मीठे संतरे तथा लाइम कुल क्षेत्रफल के क्रमशः 50, 20, तथा 10 प्रतिशत में लगाये गए हैं। ये भारत के सभी राज्यों में उगाए जाते हैं लेकिन प्रमुख उत्पादक आंध्र प्रदेश, महाराष्ट्र, असम तथा कर्नाटक हैं। सिट्रस की अधिकांश प्रजातियों का मूल केन्द्र दक्षिणी और दक्षिण पूर्व एशिया है जहां पर इनके जननद्रव्यों की भरमार है। खट्टे फल वाले वृक्षों में संतरे विश्व के कुल एक तिहाई भू–भाग क्षेत्र में लगें हैं। इसके प्रमुख उत्पादक देश अमरीका, ब्राजील, मध्य तथा दक्षिणी अमरीका, दक्षिण अफ्रीका, जापान तथा भारत हैं। नींबू के उत्पादन में इटली पहले स्थान पर है। भारत तथा मैक्सिको लाईम के प्रमुख उत्पादक देश हैं, जबकि जापान केवल मेंडरिन का ही उत्पादन करता है। सिट्रस फल विटामिन सी का प्रमुख स्त्रोत है तथा स्कर्वी की बीमारी के ईलाज में सत्रहवीं शताब्दी से उपयोग में लाए जा रहे हैं। अन्य स्वास्थ वर्धक विटामिन और मिनरल भी इसमें पाए जाते हैं।

सिट्रस वृक्षों को बीजों तथा वनस्पतिक तरीकों से उगाया जाता है। बहुत सारे सिट्रस वृक्ष बीजों से ही उगाये गये हैं। सिट्रस वृक्षो को वानस्पतिक तरीकों से उगाने में पैंबदं लगाना (Budding) तथा उत्तक प्रतिरोपण (Grafting) मुख्य हैं। Budding में वृक्ष की छाल से एक बड को अलग किया जाता है तथा दूसरे वृक्ष की छाल में लगाकर घुसा दिया जाता है। यह बहुत ही आसान तरीका है। प्रतिरोपण (Grafting) एक खास तरीके की तकनीक हैं, जिसमें एक पौधे (scion) को दूसरे पौधे (Root stock) में इस तरह लगाया जाता है कि दोनों पौधे इकट्ठे होकर एक पौधे के रूप में विकसित होते हैं। एक

अच्छे मलवृन्त (Rootstock) को विभिन्न जलवायु क्षेत्रों के अनुकूल होना चाहिए तथा लगाने वाले क्षेत्र में उसे बीमारियों तथा कीड़ो के प्रति प्रतिरोधक होना चाहिए। यह पाया गया है कि सिट्रस वृक्षों में जम्भीरी तथा रंगपुर लाईम उत्तम किस्म के मूलवृन्त प्रदान करते हैं। गलगल बहुत सी बीमारियों जैसे जड़ गलन, कॉलर गलन आदि के प्रति संवेदी होता है अतः यह मूलवृन्त के रूप उपयुक्त नहीं है। वैसे भी सिट्रस पौधों की नर्सरी में गलगल को पहचान पाना अत्यंत ही कठिन हैं। यह अवरोध सिट्रस पौधों के उद्यान में बहुत बड़े नुकसान का कारण है। इस समस्या के निवारण के लिए (नर्सरी में गलगल को पहचानने के लिए) डी एन ए छायाचित्रण की सहायता ली जा सकती है[1]।

डी एन ए चिन्हकों के आगमन से पूर्व, पौधों में आनुवांशिक विविधता रूपविज्ञानी गुणों, रासायनिक संरचना तथा कोशिका विज्ञानी गुणों से की जाती रही हैं। वातावरणिक तथा विकासशील कारकों से प्रभावित होने के कारण यह तकनीके लोकप्रिय नहीं हैं। डी एन ए चिन्हकों पर आधारित तकनीकों के प्रयोग से फसलों की विविधता को कम समय में आंका जा सकता है तथा ये वातावरण, विकास और स्त्रोत जैसे कि पत्तिया, फल, जड़ आदि से प्रभावित नहीं हैं[2]।

डी एन ए चिन्हकों को उत्पन्न करने हेतु विभिन्न आणविक मार्कर तकनीकों जैसे कि रेनडमए एंमपलिफाइड पोलिमोर्फिक डी एन ए (RAPD), डी एन ए एमपलिफिकेशन फिंगरप्रिटिंग (DAF), रैसट्रिकशन फ्रैगमेंट लैंथ पोलीमोर्फिजम (RFLP), सिफ्ल सीकुएंस रिपीट (SSR) इत्यादि का प्रयोग किया जाता है। ये तकनीकें किसी भी मूलभूत आणविक सुविधाओं से सुसज्जित प्रयोगशाला में सरलता से उपयोग की जा सकती हैं।

कार्य का विवरण

पोलिमरेज़ चैन रिएकशन (PCR) पर आधारित सिक्युन्स टैगड माइक्रोसैटेलाइट मार्कर (एस टी एम एस) तकनीक का प्रयोग कर चिन्हक उत्पन्न किए गए हैं जो सिट्रस के मूलवृन्त–रंगपुर लाईम और जम्भीरी को गलगल से अलग करते हैं। इस प्रकिया में प्रत्येक मूलवृन्त का डी एन ए सघाई मारूफ[3] के द्वारा दिए प्रोटोकॉल में थोड़ा परिर्वतन ला कर की गई। डी एन ए निकालने, शुद्धिकरण तथा परिमाणित करने के पश्चात् डी एन ए को उपयुक्त प्राइमरो द्वारा ऐम्लिफाई किया गया । ऐम्लिफाई करने की विधि इस प्रकार थी डी एन ए (20 नैनोग्राम), डी एन टी पी (200 माइक्रोमोलार), प्राईमर (1.0 माइक्रोमोलार) टैक डी एन ए पोलिमरेज (1 युनिट), मैगनिशियम क्लोराईड (1.5 मिलिमोलार)। इनको थरमल साईक्लर पे मैल्टिंग तापमान के आधार पर निर्धारित 20 साईकिल (जिसमें कि 940C, 1 मिनट के लिए, अनीलिंग तापमान, 30 सैकिंड और डिनैचुरेशन 720 C, 30 सैकिंड शामिल थे) में ऐम्पलिफाई किया गया। ऐम्पलिकॉन्स को 1.4 प्रतिशत ऐगररोज़ जैल पर 5 / cm^2 पर चलाया गया और चित्र लिया गया।

परिणाम व निष्कर्ष

सिट्रस के लाभन्वित मूलवृन्तों को गलगल से अलग करने हेतु पच्चीस से अधिक एस टी एम एस प्रायमरों का परिक्षण किया गया। इनमें से केवल एक प्राईमर ऐसा मिला जो कि इन मूलवृत्तों को गलगल से अलग कर सका। यह प्राइमर इन तीनों यानि कि रंगपुर लाईम, जम्भीरी तथा गलगल में विभिन्न लम्बाई के फ्रैगमेंट ऐम्पलिफाई करता है जिससे कि इनकी पहचान की जा सकती हैं। (चित्र 1), गलगल में केवल एक बैंड (band) और रंगपुर लाईम तथा जम्भीरी में इसके अतिरिक्त एक और बैंड, जो कि इन दोनों में भी अलग लम्बाई के हैं, उपस्थित हैं। डी एन ए छायाचित्रण में इसी प्रकार से विभिन्न लम्बाई के (जो कि बैसपेयर (bp) में नापी जाती हैं) उत्पन्न बैंडो की उपस्थिति अथवा अनुपस्थिति आंकी जाती हैं। इन विभिन्न डी एन ए फ्रैगमेंट या बैंड की उत्पत्ति जीनोम (जैसे कि जननद्रव्य, किस्में) के sequence में फर्क के कारण होता है जिस वजह से पी सी आर के दौरान प्राईमर template डी एन ए

पर omplementary site नहीं खोज पाता और ऐम्पलिकॉन, जो हमें जैल पे बैंड के रूप में दिखता हैं, नहीं बन पाता। अतः ये विभिन्न लम्बाई के बैंड जीनोम में विभिन्नता के प्रतीक हैं।

सिट्रस के मूलवृत्तों के बीच अन्तर करने की इस विधि को एक प्रौद्योगिकी के रूप में विकसित किया गया है, रा पा अनु सं ब्यू द्वारा विकसित यह प्रौद्योगिको पी सी आर तथा इलैक्ट्रोफोरेसिस पर आधारित रंगपुर लाईम, जम्भीरी और गलगल के बीच अंतर करने की अत्यंत ही प्रभावी तकनीक है। बड़े पैमाने पर इन मूलवृन्तों के बीच अन्तर करने की सक्षमता की पुष्टि करते हुए कृषि विज्ञान केन्द्र, अम्रावति तथा महाराष्ट्र स्टेट सीड कारपोरेशन, नागपुर ने यह प्रोद्योगिकी समझौता ज्ञापन द्वारा रा पा अनु सं ब्यू से प्राप्त की है और महाराष्ट्र के संतरे के बागानों में प्रयोग कर रहे हैं।

संदर्भ

1. Luro F, Laigret F and Ollitrault (1995). DNA amplified fingerprinting, A useful tool for determination of genetic origin and diversity analysis in cirtrus. Hort. Science 30 (5): 1063-1067.
2. Karp A, Isaac P G and Ingram D S. eds. Molecular tools for screening biodiversity. Chapman and Hall, 1998.
3. Saghai-Maroof M A, Soliman K M, Jorgensen R A and Allard RW (1984). Ribosomal DNA spacer-length polymorphism in barley: Mendelian inheritance, chromosomal location and population dynamics, Proc. Natl. Acad. Sci. USA. 81:8014-8018.

रक्षा अनुसंधान तथा विकास संगठनः राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए तत्पर

ललिता दासगुप्ता
लेजर विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी केन्द्र, दिल्ली

आदि काल से मानव अपने जीवन को बेहतर बनाने के लिए प्रयत्नशील रहा है। आदि मानव अपनी क्षमता के अनुसार, औजारों को बनाना, परखना और उपयोग करना सीखा । अपनी क्षमता को जानकर उसे पहचान कर समझना, औजारों और उपकरणों का बनाना ही आजकल की भाषा में प्रौद्योगिकी कहलाता है। जीवन को बेहतर बनाने और और समग्र समाज में आमूल परिवर्तन लाने में प्रौद्योगिकी एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है, जो कि राष्ट्र विकास के लिए अत्यन्त आवश्यक है। जो देश विकसित होना चाहते हैं उहें विज्ञान एवं तकनीकी में अवश्य निवेश करना चाहिए क्योंकि यही उस देश की प्रगति, आर्थिक विकास की नींव है। एक मजबूत, सुरक्षित राष्ट्र बनाने के लिए भारत की विज्ञान एवं तकनीकी प्रणाली को नए और जीवन्त रूप में लाने की आवश्यकता है जिससे भारत एक वैश्विक श्शक्ति के रूपमें उभर कर सामने आ सकता है। एक सक्षम एवं सुरक्षित राष्ट्र के रूप में अपने आप को स्थापित करने की क्षमता भारत में है। भारत दुनिया का तीसरा राष्ट्र है जहां विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में निपुण मानव संसाधन है। 160 से अधिक विश्व विद्यालय, हजारों पी एच डी, स्नातकोत्तर एवं स्नातक विद्यार्थी हैं। शिक्षा की इस पूंजी का प्रयोग तकनीकी एवं विज्ञान के विकास में किया जाए तो भारत को शक्तिशाली राष्ट्र के रूप में अपने आपको स्थापित करने से कोई रोक नहीं सकता।

रक्षा अनुसंधान तथा विकास संगठन (डी आर डी ओ), देश की अग्रणी संस्था है। डी आर डी ओ अति महत्वपूर्ण प्रौद्योगिकियों की पहचान, विकास तथा उपयुक्त सहभागियों के चुनाव के लिए निरन्तर कार्यरत है। समय के साथ साथ डी आर डी ओ ने नयी वैश्विक आवश्यकताओं के अनुसार अपने आपको ढाला है।

राष्ट्रीय सुरक्षा की दृष्टि से देखा जाए तो भारत ने विश्व में अपनी विशिष्ट जगह बना ली है। मिसाइल प्रक्षेपण तथा अंतरिक्ष के कार्यक्रमों में भारत की गणना विश्व के पांच सर्वश्रेष्ठ देशों में की जाती है। परमाणु ऊर्जा कार्यक्रम में भी भारत अत्यन्त सक्रिय है जो कि ऊर्जा के शांति प्रिय प्रयोगों के लिए उपयोग में लायी जा रही है। अति महत्वपूर्ण प्रौद्योगिकी की आवश्यकता भारत को एक सुदृढ़, स्वायत्त एवं आर्थिक रूप से विकसित राष्ट्र बनाने के लिए है। इस दिशा में डी आर डी ओ को अनेक सफलताएं प्राप्त हुई हैं जो विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के विभिन्न क्षेत्रों से संबंधित हैं। देश की तीनों सेनाओं को आधुनिकतम उपकरणों रक्षा प्रणालियों से सुसज्जित करने के लिए डी आर डी ओ ने वैमानिकी, मिसाइल आयुध निर्माण के क्षेत्र में कई ऊंचाईयों को छुआ है। डी आर डी ओ का यह तकनीकी स्पैक्ट्रम विविध रक्षा उपायों एवं उपलब्धियों को दर्शाता है। डी आर डी ओ की उपलब्धियों एवं कार्यप्रणाली का विहंगालोकन करना इसलिए भी आवश्यक है क्योंकि डी आर डी ओ, रक्षा अनुसंधान के क्षेत्र में अग्रणी है। 1958 से डी आर डी ओ की स्थापना के बाद डी आर डी ओ कई तकनीकी प्रणालियों पर कार्यरत है। प्रस्तुत हैं कुछ अति महत्वपूर्ण प्रौद्योगिक प्रणालियां जो डी आर डी ओ को गोरवान्वित करती हैं।

वैमानिकी के क्षेत्र में मानवरहित विमान लक्ष्य एवं निशान्त का निर्माण किया गया है। लक्ष्य ने भारत में निर्मित आयुध प्रणाली में महत्वपूर्ण योगदान दिया है, जिसे जमीन से आकाश, आकाश से आकाश, मिसाइलों के लक्ष्य के रूप में प्रयोग किया जाता है। इसे भारत की तीनों सेनाओं में प्रयोग में लाया जा रहा है। मध्यम ऊंचाई के चालक रहित विमान रूस्तम का भी सफल परीक्षण किया जा चुका है। निशान्त भारत की थल सेना की आवश्यकता के अनुरूप बनाया गया है यह एक स्वचालित प्रणाली है। हल्का लड़ाकू विमान तेजस वैमानिकी का महत्वपूर्ण अंग है। इन विमानों के विकास ने कई अन्य तकनीकों को जन्म दिया है जैसे कि डिजीटल कंट्रोल प्रणाली कम्पोसिट पदार्थों का विमान के ढांचे में प्रयोग इत्यादि। इन प्रौद्योगिकियों ने भारत को विश्व के अग्रणी देशों की सूची भारत में विकसित मिसाइलें भारत एवं डी आर डी ओ के लिए बहुत गौरव एवं गर्व का विषय है। डी आर डी ओ ने संयुक्त निदेशित मिसाइल विकास कार्यक्रम के अंतर्गत कई मिसाइलों का विकास एवं निर्माण किया है जिसमें पृथ्वि अग्नि जैसी स्ट्रेटेजिक मिसाइलों से लेकर टेक्टिकल मिसाइल त्रिशूल मध्यम दूरी की एअर डिफेंन्स मिसाइल आकाश टैंक विरोधी मिसाइल नाग उल्लेखनीय हैं। क्रूस मिसाइल ब्राहमोस ने तो भारत का नाम रोशन कर दिया है। इनके निर्माण के साथ साथ अन्य तकनीकें जैसे रिएन्ट्री वाहन, चलित प्लेटफॉर्म प्रक्षेपण आदि का विकास।

प्रौद्योगिकी विकास में इलैक्ट्रॉनिक प्रणालियों का विकास भी उल्लेखनीय है। इलैक्ट्रॉनिक युद्ध प्रणाली (जमीन या समुद्र से) विविध रडार प्रणालियां (मानव संचालित बैटल फील्ड सर्विलेंस रडार से लेकर फायर कन्ट्रोल रडार तक) इनके निर्माण के साथ अति परिशुद्ध दिशा सूचक प्रणालियां, अवरोधक तकनीकें तथा इलैक्टॉनिक प्रतियुक्ति इत्यादि तकनीकों का विकास हुआ है। इसके अलावा कई प्रयोगशालाओं में नौसैनिक उपकरण जैसे कि अंडर वाटर संवेरक 'शस्त्र एवं सामुद्रिक' शोधों पर भी डी आर डी ओ अनवरत रूप से कार्यरत है जैसे कि सोनार के लिए ट्रांसड्युसर एरे सिगल प्रोसेसिंग तकनीक में निरन्तर विकास कार्य चल रहा है। भारतीय नौसेना (अरिहंत एस 73) भारत के परमाणु शशक्ति चलित पनडुब्बियों की अरिहंत वर्ग के प्रमुख जहाज हैं 5.000-6.000 टन पोत विशाखापत्तनम में शिप बिल्डिंग सेंटर में उन्नत प्रौद्योगिकी पोत (ए टी वी) परियोजना के तहत बनाया गया था। आई एन एस अरिहंत डिजाइन निर्माण और अपने स्वयं के परमाणु पनडुब्बियों को संचालित करने की क्षमता के साथ भारत दुनिया के छह देशों में से एक होगा। प्रमुख लड़ाकू टैंक MBT अर्जुन पिनाका आदि शस्त्र लड़ाकू वाहनों में अग्रणी है जो कि विश्व में बहुत कम देशों के पास हैं।

डी आर डी ओ न सिर्फ अस्त्र उपकरण इत्यादि द्वारा राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए कार्यरत है बल्कि सैनिकों के हित के लिए भी कई परियोजनाओं पर कार्य कर रहा है जो कि सैनिकों की की मानसिक तथा शारीरिक क्षमता हित को ध्यान में रखती है। विशेष रूप से दूर दराज के इलाकों में मानसिक अवसाद एवं उनकी शारीरिक समस्याओं को ध्यान में रखकर सैनिकों के उपयुक्त माहौल एवं भोजन इत्यादि का विकास प्रमुख है। राष्ट्रीय सुरक्षा का अभिन्न अंग है आंतरिक सुरक्षा। डी आर डी ओ में कई परियोजनाएं इस दिशा में कार्यरत हैं जैसे कि परमाणु, जैविक और रासायनिक हथियारों का सुदूर संवेदन एवं निराकरण। विस्फोटक निष्प्रभावन तकनीकों द्वारा बम को निष्प्रभावित करने की क्षमता एक अत्यन्त महत्वपूर्ण तकनीक है जिस पर कार्य चल रहा है।

डी आर डी ओ ने सेना एवं पुलिस के लिए अग्नि अवरोधक वस्त्र, दस्तानों का निर्माण किया है। अन्य उपलब्धियों में प्रमुख हैं अति शीत प्रदेश के लिए वस्त्र, एण्टी g सूट, उच्च तुंगता जैविक डायजैस्टर, छोटे पुल, रायट कंट्रोल वाहन, प्लास्टिक की बुलेट, लेजर डैजलर इत्यादि।

राष्ट्र की सुरक्षा में डी आर डी ओ सदैव तत्पर है और राष्ट्र की तीनों सेवाओं की सुरक्षा किसी भी प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए तत्पर हैं ।

वायुयान इंजन के अवयवों का आघात–रोधी परिक्षण मे नई जांच तकनीक का लाभ तथा उसका परिणाम विश्लेषण

अनुराधा नायक, एस रामचंद्र, डी एम पुरुषोत्तम, आर बंगेर, तथा श्वेता वर्मा
गैस टरबाइन अनुसंधान स्थापन, सी.वी.रामन नगर, बैंगलुरू

सारांश

वायुयान तथा उसके अवयवों के डिजाईन के समय उनके वायुगतिकी निष्पादन एवं तनाव विश्लेषण हेतु फाइनाइट एलिमेन्ट विश्लेषण एवं अनुरुप का उपयोग विगत कुछ वर्षों से वृहद रुप से किया जा रहा है। डिजाईन सुनिश्चित होने के पश्चात, अवयवों पर संरचनात्मक वृढ़ता की जांच के लिये सभी तरह की आवश्यक जांच की जाती है। अवयवों को वायुयान योग्य सिद्ध करने के लिये इन पर सभी तरह का आवश्यक परिक्षण का होना अनिवार्य है। पक्षी अंतर्ग्रहण परिक्षण एक ऐसा ही परीक्षण है जिसमे की वायुयान के अग्रिम भाग मे उपस्थित अवयवो की आघात रोधी क्षमता का मूल्यांकन किया जाता है। वायुयान के अग्रिम भाग मे उपस्थित अवयवों का, वायुयान के प्रक्षेपण अथवा उसके जमीन मे उतरते समय वातावरण मे उड़ते हुये पक्षीयों से टकरा जाना एक आम समस्या है। इस तरह की घटनाएं न केवल वायुयान को क्षति पहुचाती है, बल्कि जन हानि का भय भी समान रुप से रहता है। इस लिये इन अवयवों का पक्षी अंतर्ग्रहण परिक्षण होना अतिआवश्यक हो जाता है। इस तरह की उन्नत परिक्षण सुविधा को स्थापित तथा उसे सुचारु रुप से कार्यरत रखना स्वयं मे एक चुनौती पूर्ण कार्य है; क्योंकि इस सुविधा के उपयोग मे थोड़ी सी भी चुक, गलत परिक्षण परिणाम, उपकरणों की खराबी तथा परिक्षण स्थल मे उपस्थित लोगों की जान–हानि के रुप सामने आ सकती है।

गैस टरबाइन इंजन अनुसंधान स्थापन में यह परिक्षण सुविधा उपलब्ध है। यहां गैस टरबाइन इंजन के अग्रिम भाग जैसे कि फैन रोटर, स्टेटर, इनलेट गाइड वेन का पक्षी अंतर्ग्रहण परिक्षण किया जाता है। इस लेख मे फैन रोटर के पक्षी अंतर्ग्रहण परीक्षण के लिये पूर्व की तैयारियों, उसका परिक्षण तथा उसके परिणाम के विश्लेषण को बताया गया है।

परिचय

आकाश मे उड़ते हुये पक्षीयों का वायुयान से टकराना वायुयान उद्योग मे पक्षी संघट्ट के नाम से जाना जाता है, जो कि आजकल बहुत ही आम घटना हो गई है। सुरक्षा की दृष्टि से यह संघट्ट बहुत खतरनाक है। एक रिपोर्ट के अनुसार वायुयान एवं मिलिट्री उद्योग को हर साल पक्षी संघट्ट की घटना से तकरीबन 1.2 बिलियन डॉलर का नुकसान होता है। इसलिये इसे नज़र अंदाज करना असंभव है। पक्षी संघट्ट अथवा पक्षी आघात से न केवल पक्षीयों का जीवन खतरे मे रहता है बल्कि वायुयान के यात्रियों एवं वायुदल कर्मियों का जीवन भी समान रुप से खतरे मे रहता है। सन 1988 से अब तक पक्षी संघट्ट के कारण 195 जनहानि हो चुकी है।

गत सौ वर्षों मे वायुयान सेवाओं में संख्या एवं उनकी दक्षता मे काफ़ी वृद्धि हुई है। इस वृद्धि से आवागमन की समस्या तो कम हुई ही है साथ ही बेरोजगारी को कम करने में भी काफ़ी मददगार सिद्ध हुई है। इन सभी लाभ के बावजूद वायुयान उद्योगों को बहुत सी चुनौतीयों जैसेकि दिनोंदिन नई तकनीकियों का समावेश, आकाशीय यातायात नियमों का सही रुप से पालन,

प्राकृतिक इंधनों की कमी, एवं पक्षी आघात से जुझना पड़ रहा है। पक्षी आघात इन सभी चुनौतीयों मे अपनी एक विशेष स्थान बना चुका है। उड़ते हुये वायुयान मे पक्षी का प्रवेश, वायुयान के बाह्य अवयवों को तो क्षति पहुंचाता ही है, साथ ही वायुयान अपना नियंत्रण खो देता है जिससे कि जनहानि का भय बना रहता है। पूर्व प्रकाशित आंकड़ों के अनुसार पक्षी आघात की 70% घटनांए वायुयान के उड़ान भरते समय अथवा नीचे उतरते समय हुई हैं। इसलिये विमान अड्डों को साफ़ सुथरा रख पक्षीयों के लिये कम आकर्शित बना कर इस समस्या को कुछ हद तक कम किया जा सकता है। परन्तु किसी भी तरह से इसे पूर्णतः खत्म करना असंभव है। पक्षी संघट्ट द्वारा वायुयान के अवयवों की क्षति, वायुयान उद्योग को करोड़ों डॉलर का नुकसान होता है।

भारत देश के बैंगलुरू स्थित गैस टरबाइन अनुसंधान स्थापना का मुख्य उद्देश्य मिलिट्री वायुयान हेतु गैस टरबाइन इंजन का डिज़ाइन एवं विकास करना है। यहां पक्षी आघात द्वारा वायुयान के बाह्य अवयवों पर क्षति के अध्ययन हेतु एक प्रयोगशाला है। जहां पर कृत्रिम पक्षी द्वारा इंजन एवं कृत्रिम पक्षी के मध्य संघट्ट कराया जाता है। और इस संघट्ट द्वारा प्राप्त आंकड़ों को उन्नत आंकड़ा संग्रहण प्रणाली में सुरक्षित कर लिया जाता है। इसके पश्चात इन आंकड़ों का अध्ययन कर पक्षी आघात द्वारा अवयवों पर हुये प्रभाव को जाना जा सकता है। चुंकि यह प्रयोग पक्षी आघात की वास्तविक घटना का अनुरुपण है, इसलिये इस प्रयोग द्वारा प्राप्त आंकड़ों का अध्ययन एवं परिणाम पक्षी आघात की वास्तविक घटना तथा उसके परिणाम की तरह अनुरुपण करना एक चुनौती है। इस लेख में कृत्रिम जिलेटिन पक्षी द्वारा वायुयान के बाह्य पंखे के प्रथम चरणके मध्य संघट्ट के प्रभाव को उन्नत आंकड़ा संग्रहण प्रणाली द्वारा प्राप्त आंकड़ों से समझाने का प्रयास किया गया है।

प्रायोगिक

जीटीआरई की "गतिशील पक्षी आघात परिक्षण सुविधा" में कृत्रिम पक्षी आघात परिक्षण किया जाता है। गतिशील पक्षी आघात परिक्षण सुविधा (चित्र 1) में एक एयर गन, लीक प्रुफ़ स्पिन चेंबर, डीसी मोटर एवं मोटर नियंत्रक सिस्टम होता है। डीसी मोटर ड्राइव शॉफ़्ट एक एडाप्टर शॉफ़्ट द्वारा रोटर शॉफ़्ट से जुड़ा होता है। एडाप्टर शॉफ़्ट खुद भी गीयर बॉक्स एवं बियरिंग हाउसिंग सिस्टम से जुड़ा रहता है। एयरगन का उपयोग प्रक्षेपण को आवश्यक गति तक उसकी गति को बढ़ाने के लिये किया जाता है। डीसी मोटर जो कि थियरिस्टर कंट्रोलर द्वारा नियंत्रित किया जाता है, रोटर को आवश्यक आरपीएम तक घुमाता है।

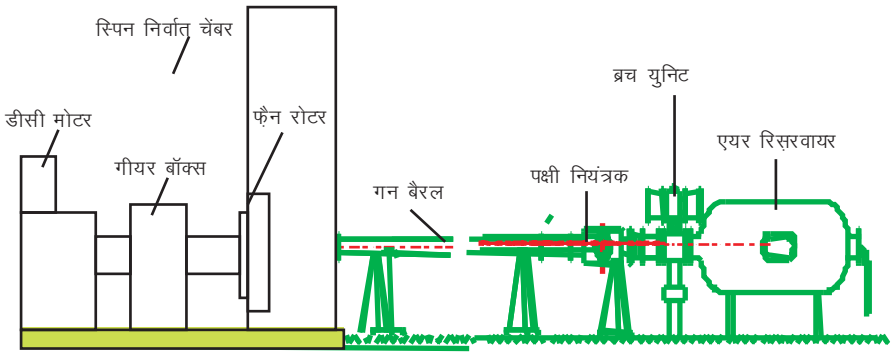

चित्र 1. गतिशील पक्षी आघात परिक्षण सुविधा।

गतिशील चित्र एवं तनावों को तीन उच्च गति वाले कैमरे, स्ट्रेन गेज़ एवं आंकड़ा संग्रहण प्रणाली में एकत्रित कर लिया जाता है। प्रक्षेपक की गति उच्च गति वाले कैमरे में एकत्रित चित्रों के द्वारा ज्ञात कर ली जाती है (चित्र 2)।

चित्र 2. स्पिन चैम्बर के पास उच्च गति कैमरा की स्थिति।

परिक्षण कक्ष को क्वाट्र्ज़ लैम्प से प्रकाशित किया जाता है। उच्च गति विश्लेषक सॉफ़्टवेयर की सहायता से परिक्षण की घटना को रिकार्ड किया जाता है जिससे कि प्रक्षेपक की गति एवं उसका लक्ष्य से संघट्ट को फ्रेम दर फ्रेम देखा जा सकता है (चित्र 3)।

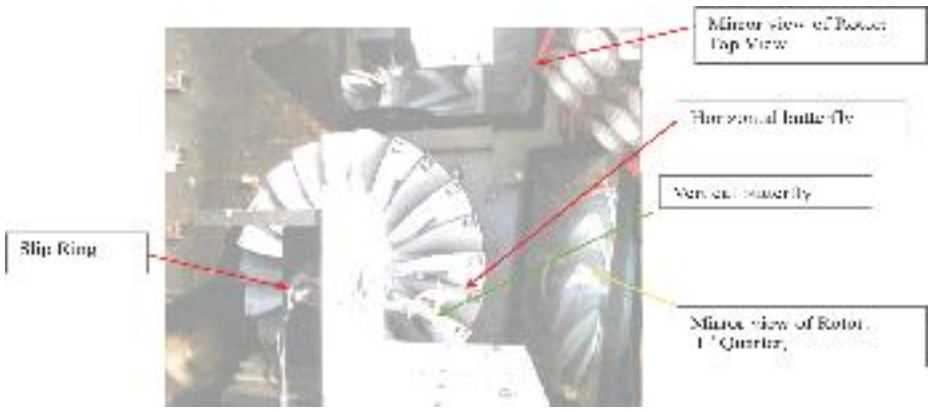

Fig. 3 Test article kept inside the chamber showing other instrumentation.

22 फ़ैन ब्लेड्स में से 11 ब्लेड्स को एक एक अंतराल से स्ट्रेन गेज़ एवं लीड वायर लगाकर स्लिप रिंग प्रणाली से जोड़ा गया जिससे कि संघट्ट के आंकड़ों को एकत्रित किया जा सके। स्पिन कक्ष मे रोटर को 8000 rpm से घुमाने के लिये वहां पर 0.84 बार का आंशिक निर्वात किया गया। तीन उच्च गति वाले कैमरों को तीन विभिन्न कोणों मे रखते हुये रोटर प्रणाली की ओर केंद्रित किया गया जिससे कि पक्षी संघट्ट की घटना एवं पक्षी की गति को रिकार्ड किया जा सके।

परिणाम एवं परिचर्चा

1) जब फ़ैन रोटर प्रणाली 7749 rpm पर घुम रहा था तब पक्षी का फ़ैन रोटर से संघट्ट करवाया गया। 7749 rpm, 129.15 rps के बराबर है। अर्थात एक पूरे चक्कर के लिये रोटर को 7.7429 ms लगते हैं।
2) चित्र क्रं 8– ब्लेड क्रं. 21, t= 0.011 सेकेंड में आघात को महसूस करता है। चुंकि ब्लेड क्रं. 20 पर स्ट्रेन गेज़ नही लगाया गया है, इसलिये ब्लेड क्रं. 21 बाकी अन्य ब्लेड्स की तुलना में सर्वप्रथम पक्षी आघात को महसूस करता है। चित्र क्रं 5 के अनुसार पक्षी आघात की संपूर्ण घटना t= 0.01830 s मे पूरी होती है। इस लिये स्ट्रेन सिग्नल डाटा के आधार पर, एक पक्षी आघात की घटना का अंतराल t=7.3ms होता है।
3) अब यदि ब्लेड क्रं. 21 किसी समय पर किसी स्थान पर है। माना कि 'A' स्थान पर है। तब एक पूर्ण चक्कर के बाद ब्लेड क्रं. 21, 60/7749 ~ 7.7429 उे के बाद पुनः स्थान।' पर आ जाता है। और ब्लेड क्रं. 22, 77429/22~0.35195 ms के बाद स्थान 'A' पर पहुंचता है क्योंकि घुर्णन, घड़ी के घुमने की विपरीत दिशा में हो रहा है। इसी तरह ब्लेड क्रं.1,

चित्र 4. पक्षी प्रतिघात के समय के दृश्य गति चित्र।

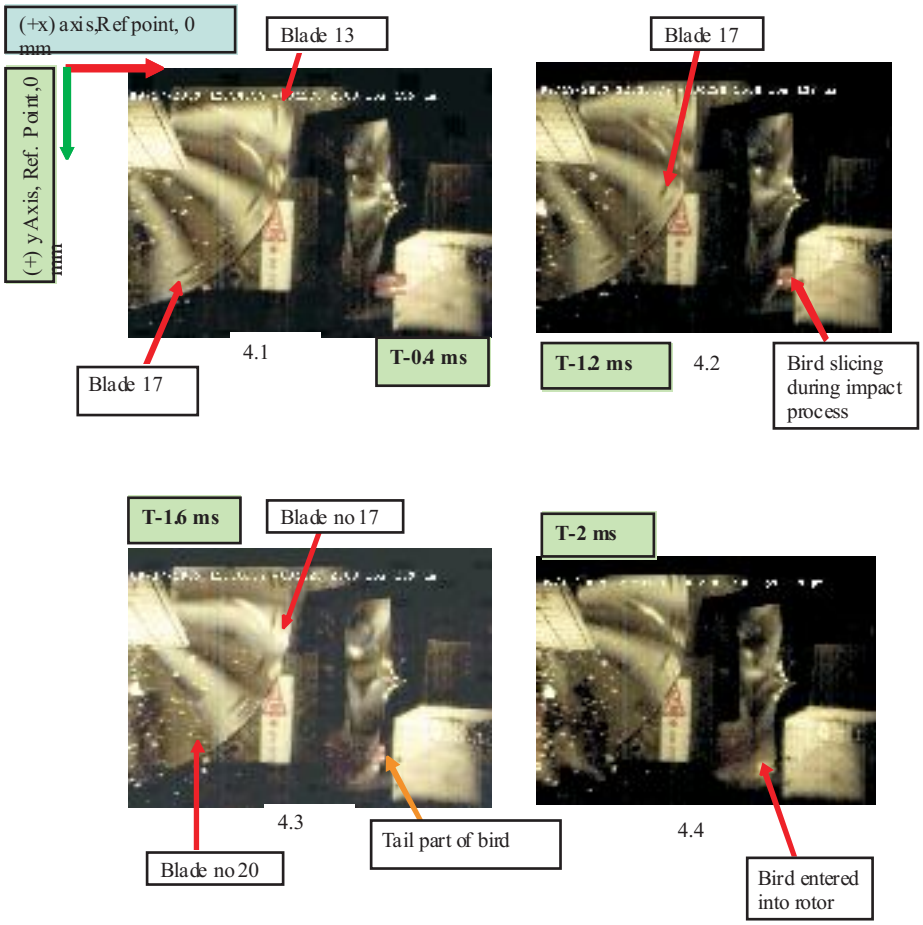

2x0.35195=0.7039 ms के बाद स्थान 'A' पर आ जाता है। यदि ब्लेड को एक द्रुढ वस्तु माना जाए तब यह संघट्ट के दौरान अगतिशील रहेगा।

4) उच्च गति वाले कैमरे में एकत्रित चित्रों के (चित्र 4) आधार पर यह स्पष्ट है कि ब्लेड क्रं. 20 के द्वारा ही आघात की शुरुआत हुई। तत्पश्चात यह अन्य ब्लेड्स जो कि घड़ी के घुमने की विपरीत दिशा में घुम रहे हैं, की ओर फ़ैलती गई। यदि पक्षी ब्लेड क्रं.21 एवं 1 के बीच का अंतराल 0.5752 ms है, तब आघात के बीच का अंतर 0.7032–0.5752=0.1297 है। यह इस तथ्य के कारण हो सकता है कि अनुमानतः ब्लेड क्रं.1, 0.5752 ms के पहले ही पक्षी आघात के संपर्क मे आया एवं स्ट्रेन गेज़ ने सिग्नल प्राप्त किया।

5) स्ट्रेन सिग्नल के आंकड़े (चित्र 5) भी उच्च गति वाले कैमरे में एकत्रित चित्रों से मैच करते हैं। स्ट्रेन गेज़ लगाये हुये ब्लेड क्रं. 21 सर्वप्रथम पक्षी आघात को महसूस करता है। जैसा कि चित्र क्रं.7 में दिखाया गया है। इसके पश्चात यह आघात ब्लेड क्रं. 1, 3 आदि की ओर फ़ैलता जाता है। ब्लेड क्रं. 21 एवं ब्लेड क्रं.1 के द्वारा प्राप्त सिग्नल, प्राकृतिक पक्षी आघात के द्वारा प्राप्त सिग्नल के सदृश्य है।

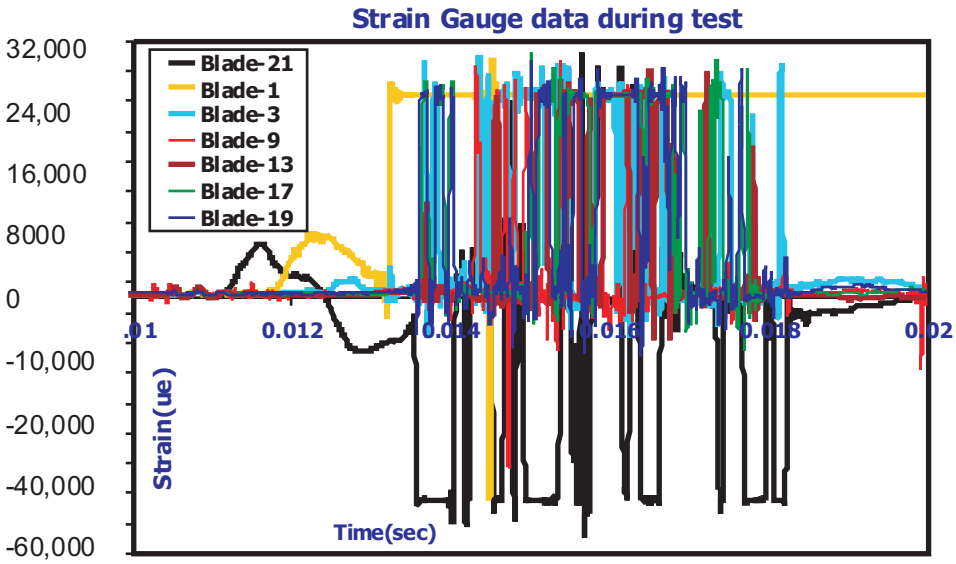

Fig. 5 Dynamic strain experienced by blades during bird

6) ब्लेड क्रं.21, t=0.11682 s में सिग्नल देना प्रारंभ करता है। तथा ब्लेड क्रं. 1, t=0.012s में पक्षी आघात को महसूस करता है। यह सभी स्ट्रेन सिग्नल स्वाभाविक रुप से टेन्साइल प्रवृति के होते हैं।

7) चित्र 5 के अनुसार पक्षी का आघात से बिखराव t=0.13314 s तक चलता रहता है।चित्र क्रं.5 से यह स्पष्ट है कि पक्षी के बिखराव का अंतराल 1.694 ms है। उच्च गति वाले कैमरे के वीडियो द्वारा भी यह पता चलता है कि पक्षी का बिखराव 1.6 ms में हो रहा है।

8) 0.135s के बाद का स्ट्रेन सिग्नल, पक्षी आघात द्वारा रोटर मे हुये असंतुलन से उत्पन्न आवाज की वजह से है। यह असंतुलन की स्थिति 5 ms तक बनी रहती है उसके बाद रोटर अपनी समान्य अवस्था मे आ जाता है। उच्च गति वाले चित्रों से प्राप्त आंकड़ों के विश्लेषण से यह समय तकरीबन 4.5 ms पाया गया।

9) परीक्षण खत्म होने के बाद परीक्षण कक्ष को खोला गया। तथा दर्पण रोटर के उपर पाया गया। दर्पण का अपनी जगह से विस्थापित होने का समय, पक्षी आघात के वास्तविक समय के आधर पर ग्यात किया गया। जैसा कि चित्र 8 जो कि उच्च गति वाले चित्रों से प्राप्त आंकडों को दर्शा रहा है। इस तरह की अनापेक्षित घटनों को पक्षी आघात की वास्तविक घटना से खत्म किया जा सकता है।

निष्कर्ष

वायुयान उद्योग का नागरिकी एवं मिलिट्री सेवाओं मे बढ़ते उपयोग को देखते हुये, पक्षी आघात जैसी घटनाओं की पूर्ण रोकथाम अतिआवश्यक है। जिसके लिये पक्षी आघात से संबंधित वैज्ञानिक तथ्यों की जानकारी अनिवार्य है। यह तभी संभव है जब कि पक्षी आघात की घटना को छोटे रुप मे घटित कर उससे ज्यादा से ज्यादा जानकारी प्राप्त की जाए।

गैस टरबाइन अनुसंधान स्थापन–बैंगलुरु में पक्षी आघात एवं अन्य बाह्य वस्तुओं का वायुयान में प्रवेश के प्रभाव के अध्ययन हेतु "पक्षी अंतर्ग्रहण सुविधा" उपलब्ध है। यहां पर पक्षी आघात को कुछ इस तरह आयोजित किया जाता है कि कम से कम परिक्षण से ज्यादा आंकड़ें एकत्रित कर, उनका विश्लेषण कर अधिक से अधिक जानकारी प्राप्त की जाती है। इसके लिये उन्नत उपकरणों जैसे कि उच्च गति वाले कैमरे,उच्च गति विश्लेषक सॉफ़्टवेयर का उपयोग किया जाता है। इनकी सहायता से पक्षी आघात की घटना का मिली सेकेंड तक जानकारी मिल जाती है।

इस लेख मे रोटर पर हुये पक्षी आघात का उन्नत उपकरणों द्वारा प्राप्त आंकड़ों का विश्लेषण तथा निष्कर्ष के बारे में बताया गया है। साथ ही इन उन्नत उपकरणों द्वारा किस तरह अनदेखी घटनाओं को किस तरह रोका जा सकता है, इसके बारे में भी उल्लेख किया गया है।

संदर्भ

1. जे. पी. बार्बर, एच.पी.टेलर, जे.एस. विलबेक, ए एफ़.एफ़ डी.एल–टी.आर. 77–60 मई–1978।
2. ए. चलिता,ए एफ़ ड्ब्लु ए एल–टी.आर–80–3094 अक्टुबर 1980।
3. एस. ए. मेगिड, आर.एच. माओ, टी.वाय.एन.जी. इन्टरनेशनल जरनल ऑफ़ इम्पेक्ट, **35** (2008),487–498।
4. आर.एच. माओ, एस. ए. मेगिड,टी.वाय.एन.जी.इन्टरनेशनल जरनल ऑफ़ इम्पेक्ट, **4**(2008), 78–96।
5. जी.टी.आर.ई. दस्तावेज सं. 000200020000030017 , Characterization and Optimization of Dummy Gelatin Bird in Terms of Density.

उपग्रह संचार प्रौद्योगिकी का आपातकालीन राहत और आपदा प्रबंधन में योगदान

संजय कुमार
रक्षा उड्डयानिकी अनुसंधान स्थापना, बैंगलोर

सारांश

उपग्रह प्रौद्योगिकी अद्यतन एवं साबित तकनीक है जो दुनिया भर में प्रयोग में लाई जाती है। इस प्रौद्योगिकी के अनुप्रयोग अत्यंत विस्तृत है और यह मानवीय जीवन के लगभग सभी क्षेत्रों में बड़े पैमाने पर इस्तेमाल की जा रहा है। इस प्रौद्योगिकी का सबसे बड़ा लाभ यह है कि यह किसी भी मौसम और जलवायु की दशा में किसी भी समय, किसी भी स्थान पर आसानी से उपलब्ध हो सकती है। यह शोध पत्र, आपातकालीन राहत कार्यों और दुर्लभ मौसम की स्थिति में भी दूरस्थ स्थानों पर आपदा प्रबंधन के दौरान उपग्रह प्रौद्योगिकी द्वारा किए गए सबसे महत्वपूर्ण योगदान को दर्शाता है। इसमें आपदा पीड़ितों के लिए और आपातकालीन प्रतिक्रिया के प्रयासों में शमिल लोगों के बीच पुनः संचार संपर्क स्थापित करने हेतु दोनों विषयों की महत्वपूर्ण भूमिका पर प्रकाश डाला गया। यह शोध पत्र इसके महत्वपूर्ण तकनीकी क्षेत्र, प्रभावशीलता, विश्वसनीयता, पोर्टेबिलिटी और सभी आवाज, डाटा और वीडियो अनुप्रयोगों के लिए कहीं भी, कभी भी, किन्ही भी परिस्थितियों में एक स्थान से दुसरे स्थान तक हवा में उच्च गति कनेक्टिविटी प्रदान करने के लिए कुछ जांच – परख भी प्रस्तुत करता है।

परिचय

आज दुनिया भर में सम्पूर्ण मानवता, भूकंप, ज्वालामुखी विस्फोट, बाढ़, सूखा, चक्रवात, भूस्खलन और महामारी जैसी अनेक प्राकृतिक आपदाओं से ग्रस्त होती रहती है। सैकड़ों और हजारों लोग बेघर हो रहे हैं, गंभीर बीमारियों के शिकार होकर कहीं के नहीं बचते। कोई फर्क नहीं पड़ता कि आज प्रौद्योगिकी कितनी उन्नत और वृहद हो गई है, किंतु प्रकृति आज भी प्रबलतम शक्ति है। इन प्राकृतिक आपदाओं के विनाशकारी प्रभाव की वजह से ही यह आपदा के रूप में जानी जाती है। वैश्विक आधार पर यह देखा गया है कि समग्र ऊष्णता से उत्पन्न गर्मी की दर मे परिवर्तन के कारण, मोटे तौर पर उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में गर्मी और ध्रवीय क्षेत्रों में ठंडी में वृद्धि हुई है। कम होते वन, विस्तारित होते रेगिस्तान, उपजाऊ भूमि में जल भराव, अतिचारण, बढ़ती क्षारियता आदि में वृद्धि इसके परिणाम हैं जो सबको प्रभावित करते हैं आपदाओं से निपटना वैज्ञानिकों, इंजीनियरों, डॉक्टरों, प्रौद्योगिकीविदों, नौकरशाहों और नेताओं के लिए सबसे चुनौतीपूर्ण कार्य है। लेकिन उपग्रह प्रौद्योगिकी के आगमन से, आवाज, वीडियो और डाटा चैनल पर अंतिम लक्ष्य तक कनेक्टिविटी का कार्य और अधिक विश्वसनीय और पहले की तुलना में आसान हो गया है।

आपदा के लक्षण

आपदाएं किसी भी समय और कहीं भी आ सकती है। आपदा चाहे आपातकालीन प्रकृति की हो या आदमी द्वारा रची गई हो, किसी भी स्थिति में संचार बनाए रखने की क्षमता सफल आपदा राहत कार्यों के लिए महत्वपूर्ण है। आपदा राहत टीम को, चाहे वह एक घनी आबादी वाले क्षेत्र में काम कर

रही हो, जहां स्थलीय बुनियादी ढांचे का नुकसान हुआ हो या एक एकांत स्थान में काम कर रही हो, जहाँ कम से कम मौजूदा कनेक्टिविटी हो, पूर्ण संचार क्षमताओं की आवश्यकता होती है। उपग्रह, स्थलीय मुद्दों, जहां जमीनी उपकरणों को व्यापक नुकसान हुआ हो से अप्रभावित रहता है। उपग्रह प्रौद्योगिकी की अतिरोक प्रदान करने और आसानी से कम समय की सूचना के तहत तैनात किया जा सकता है।

आपदा प्रबंधन की चुनौतियां

जब प्रभावी आपदा प्रबंधन के लिए संचार की आवश्यकताओं की जांच करने की आवश्यकता हो तो यह चुनौतियों और प्रत्येक चरण की आवश्यकताओं को परिभाषित करने के लिए महत्वपूर्ण है। आपदा राहत प्रयास जिस चरण में चल रहे होते हैं, संचार आवश्यकताओं को बदलना उस पर निर्भर करता है। यहां एक लचीले और स्केलेबल समाधान प्रदान करने के लिए सभी आवश्यक अनुप्रयोगों का समर्थन करने की आवश्यकता है। आपदा प्रबंधन में संचार समाधान के लिए लागू चरणों में निम्नलिखित चरण शामिल हैं–

- तैयारी
- प्रतिक्रिया
- पुनर्प्राप्ति
- पुनर्निर्माण

तैयारियां एवं तत्परता

जब आपदा आ जाती है तो तत्काल कार्रवाई तभी संभव हो पाएगी जब यदि राहत एजेंसियों और सहायता संगठनों द्वारा आंतरिक और बहु–एजेंसी समन्वय के लिए संचार की योजनाओं को पहले से ही अच्छी तरह से चिन्हित कर लिया गया हो। यह अत्यंत महत्वपूर्ण है कि सहायता एजेंसियों द्वारा स्थानीय सरकार के अधिकारियों से पहले से ही अनुमोदन का अनुरोध किया गया हो तथा यह भी सुनिश्रिवत किया गया हो कि उपग्रह लाइसेंस और सीमा शुल्क परिवहन और राहत संचार उपकरणों की स्थापना में देरी नहीं लगेगी।

प्रतिक्रिया

आमतौर पर, पहली प्रयास प्रतिक्रिया, आपदा आने के बाद कई सप्ताह के लिए चलती है और छोटी–छोटी खोजी टीमों द्वारा उस क्षेत्र में बचे हुए लोगों एवं बची हुई बुनियादी सुविधाओं की जांच करने में ही लगा दी जाती है। इस चरण में ज्यादा से ज्यादा जांच करना और बचाव के लिए आपातकालीन सेवाओं और बुनियादी मानवीस जरूरतों को पूरा करना महत्वपूर्ण होता है। इस चरण के दौरान प्रयासकों द्वारा कई बाधाओं का सामना करना पड़ता है और प्रतिक्रिया टीमों और उनके आदेश केन्द्रों के बीच संचार बनाए रखना अधिक कठिन होता है। संपूर्ण क्षेत्र में भारी क्षतिग्रस्त या नष्ट स्थलीय नेटवर्क अक्सर एक पूरी संचार व्यवस्था को ठप कर देता है। यहां तक कि अगर मौजूदा बुनियादी ढांचे का कुछ हिस्सा चालू रहता भी है, तो उपलब्ध लाइनें जल्दी ही अत्यधिक संपर्क दबाव के भार से दब जाती है। दोनों ही मामलों में, संचार बनाए रखने या प्रतिबद्ध द्वि–दिशात्मक संचार समन्वय की आवश्यकता होती है, और विस्तृत भौगोलिक क्षेत्रों में राहत प्रयासों में समन्वयन बनाना महत्वपूर्ण होता है जहां त्वरित प्रतिक्रिया समयय सफलता की कुंजी साबित होगी।

वसूली या पुनर्प्राप्ति

तत्त्काल खतरा और बुनियादी जरूरतों को संबोधित करने के बाद अर्द्ध स्थायी आवास, अस्थायी कार्यालयों और चिकित्सा केन्दों के निर्माण आदि की पुनर्प्राप्ति के प्रयास पीड़ितों को सहायता पहुंचाते हैं। संचार क्षमताओं की जल्दी बड़े पैमाने पर और अधिक स्थायी बनाने की जरूरत होती है, जबकि

मोबाइल समूह अभी भी पोर्टेबल संचार और बिजली की जरूरतों को पूरा करते हुए अन्य स्थानों के लिए सेवा प्रदान कर सकते हैं।

पुनर्निर्माण

जैसे ही स्थायी विकास और पुनर्निर्माण शुरू हो जाता है, संचार के लिए राहत एजेंसियों की आवश्यकताएं, और अधिक औपचारिक तथा जटिल हो जाती है। पुनर्निर्माण होने में कई वर्ष लग सकते हैं, लेकिन राहत संचार नेटवर्क को अधिक कार्यकर्ताओं और अधिक वीडियों, वीपीएन, फ़ाइल स्थानांतरण, वीओआईपी और इंटरनेट का उपयोग एवं व्यापार आदि महत्वपूर्ण अनुप्रयोगों के समर्थन हेतु शीघ्र विकसित करने की आवश्यकता होगी।

उपग्रह संचार प्रौद्योगिकी के लाभ

आपात राहत और आपदा पुनर्प्राप्ति में सफलता, त्वरित प्रतिक्रिया समय और वास्तविक समय संपर्क स्थापित करने की क्षमता से मापा जाता है। सैटेलाइट संचार नेटवर्क तेजी से उपलब्ध हो जाते हैं और संकट के समय के दौरान बचाव और सहायता की पहल के लिए अति के लिए सबसे सुरक्षित, पोर्टेबल, विश्वसनीय और सबसे तेजी से सुविधा उपलब्ध करवाने का साधन है। यह टेलीमेडिसिन केन्द्रों की स्थापना हेतु सबसे साबित साधनों में से भी एक है। उपग्रह संचार प्रौद्योगिकी निम्नलिखित प्रभावकारी लाभ प्रदान करती है–

- वृह भौगोलिक पहुँच क्षेत्र
- अधिक से अधिक आबादी तक पहुँचना
- स्वास्थ्य देखभाल हेतु दरवाजे–दरवाजे पर त्वरित वितरण
- बाद में रोगजनित रोगियों के लिए प्रभावी
- आपदा प्रबंधन और आपातकालीन राहत अभियान के दौरान अत्यंत सुविधाजनक
- संचालन और जल्दी

निष्कर्ष

उपग्रह प्रौद्योगिकी परंपरागत नेटवर्क से अलग स्वतंत्र रूप से संचालित होती है तथा एक स्थान से दुसरे स्थान तक हवा में सभी प्रकार की आवाजों, डाटा और वीडियो अनुप्रयोगों के लिए उच्च गति से कनेक्टिविटि प्रदान करती है। यह आदर्श आपदा राहत संगठनों में से है जो तेजी से, कहीं भी किसी भी समय और किसी भी स्थिति के तहत प्रभावी आपातकालीन प्रतिक्रिया सेवाएं देने की जरूरतों के लिए संचार समाधान है। इसके अलावा, इसमें निहित लचीलापन और सुविधाओं के लाभ के कारण यह आपदा राहत संगठनों के विभिन्न क्षेत्रों की सेवा में अद्वितीय चुनौतियों को पूरा करने में सक्षम है। ये प्रदित लक्षण, अतिरेक चौड़ा प्रणाली, चरम लचीलापन और मापनीयता, त्वरित तैनाती एवं विस्तारित गतिशीलता जैसी सुविधाओं पर काफी ध्यान केंद्रित करती है और आगे आपदा राहत संगठनों के आपदा पुनर्प्राप्ति प्रबंधन के सभी चरणों के दौरान किसी भी आपात स्थिति के लिए प्रतिक्रिया करने की क्षमता को मजबूत बनाती है।

सन्दर्भ

1. Alexander, D., 2002, Natural Disasters, London: Routledge, ISBN 1-85728-09406
2. Alexander, D., 2002, Principles of Emergency planning and Management, Harpended: Terra publishing, ISBN 1-903544-10-6.
3. Bruce R. Elbert, "The Satellite Communication Applications Handbook" Second Edition, Artech House, Inc. Boston, London.

सैन्य शक्ति वृद्धि का नया विकल्प–विद्युत चुम्बकीय बंदूक

उपिका मित्तल
पद्धति अध्ययन तथा विश्लेषण संस्थान, दिल्ली

सारांश

हर पल बदलते रक्षा क्षेत्र में नए–नए अस्त्र–शस्त्रों का निर्माण हो रहा है। नई सोच की उत्पत्ति हो रही है। नए अविष्कार हो रहे है। इसी में एक नया कदम है। Electro Magnitic Gun अर्थात विद्युत–चुम्बकीय बंदूक। यह एक तकनीक है जो नौसेना, थल सेना की क्षमता दस गुणा बढ़ाने में सहायक होगी। सन् 1970 में प्रस्तावित 'स्टार वार्स' (Star Wars) सामरिक सुरक्षा पहल के तहत, विद्युत–चुम्बकीय बंदूक (EM Gun) अब अतीत या ड्राइां ब्रोड पर सिर्फ एक विचार की बात नही है। EM gun प्रक्षेप्य को अपने निर्धारित लक्ष्य पर तीव्रता एवं अविश्वसनीय बल के साथ फैंकता है कि Warhead का प्रयोग करना जरुरी नहीं होता है।

विस्तार

विद्युत चुम्बकीय बंदूक प्रक्षेप्य त्वरक का एक प्रकार है जिसमें उच्च वेग से एक चुम्बकीय प्रक्षेप्य में तेजी लाने के लिए electro Magnets के रूप में coil (कुंड़ल) का प्रयोग होता है। EM gun प्रौद्योगिकी Hypervelocity प्रक्षेपण को सक्षम बनाती है। बुनियादी तौर से Hypervelocity 2 कारण से महत्वपूर्ण है:

(1) ऊर्जा वृद्धि – ऊर्जा सीधे–सीधे आनुपातिक है वेग के वर्ग से वेग

$E = MC^2$ [C = वर्ग (Velocity)]

(2) मारक क्षमता – किसी भी ऊर्जा के लिए वगे में वृद्धि से पहुँच (मारक) क्षमता में वृद्धि होती हैं दूरी हिन्दी में X V [V = वर्ग (Velocity)]

सिद्धांत

विद्युत–चुम्बकीय बंदूक में, लौह प्रक्षेप्य coil की तरफ आकर्षित होता है जब coil को सक्रिय किया जाता है। बिजली के प्रवाह से coil में चुम्बकीय क्षेत्र उत्पन्न होता है जिसकी दिशा Fleming Right Hand Rule से निर्धारित होती है। आकर्षण बल के कारण प्रक्षेप्य, coil की तरफ त्वरक होता है। जैसे ही, coil प्रक्षेप्य के मध्य में पहुँचता है, विद्युत प्रवाह को बंद कर दिया जाता है जिससे चुम्बकीय क्षेत्र भी नष्ट हो जाता है और प्रक्षेप्य भी पूर्ण आर्कषण बल के कारण चलता रहता है। परन्तु यदि यही विद्युत प्रवाह सही समय पर बंद न किया जाए तो प्रक्षेप्य को गति कम हो जाती है या वह उल्टी दिशा में लगते हुए बल (Backward force) के प्रभाव में अपनी दिशा बदल लेता है।

रचना/बनावट

विद्युत–चुम्बकीय बंदूक, एक बैरल पर व्यवस्थित coil को मिलाकर बनती है जहाँ coil को अनुक्रम में on/off करके प्रक्षेप्य को चुम्बकीय बलों के माध्यम से अति गति से फेंका जा सकता है। बैरल पर व्यरस्थित के एक छोर पर लौह–चुम्बकीय (Terromagnetic) प्रक्षेप्य रखा जाता है, जब प्रभावी Current swge/ Curent pulse coil से वहन करता है तब महबूत चुम्बकीय क्षेत्र का निर्माण होता है

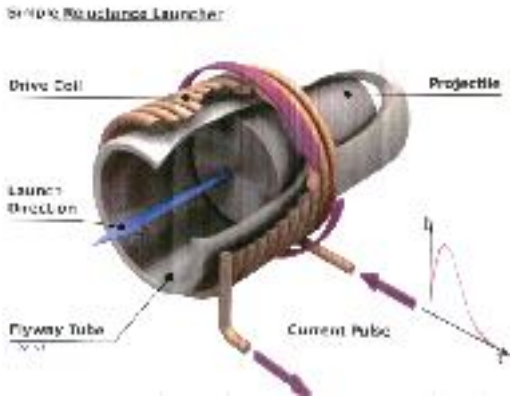

जो प्रक्षेप्य को के मध्यम तक आकर्षित करता है। जब प्रक्षेप्य के मध्यावली पहुँचता है तब विद्युत (Current) के प्रभाव को बंद कर दिया जाता है और प्रक्षेप्य त्वरण के कारण प्राप्त हुई गति से बैल से बाहर निकलती है। बंदूक में बैरल, एक ट्रेक जैसा काम करती है जिस पर प्रक्षेप्य सवार होता है। बंदूक को चलाने के लिए आम तौर से बैटरी (Battery) या उच्च क्षमता उच्च वोल्टेज Capaciters का प्रयोग किया जाता है जो तेजी से ऊर्जा निर्वहन में सक्षम हो। एक Diode का भी प्रयोग किया जाता है जो संवेदनशील घटकों जैसे Capaciters की रक्षा के लिए है ताकि विद्युत प्रवाह के बंद होने पर व्युत्क्रम Pelarity Vollage से नुकसान न हो। कुछ प्रयोगों में कैमरे में प्रयोग होने वाले Photoflash Capacitors या TV में प्रयोग होने वाले Capactors एवं कम उपपादन (Low undectonce) coil को प्रयोग पर प्रक्षेप्य को coil से आनो प्रेरित किया जाता है। EM gun में मुख्यतः एक बाधा है –वह है ऊर्जा शक्ति/Current का करना जिसे Suitching बोलते है। इसका प्रभावी उपाय है 1GBT या MOSFET का प्रयोग जो Mid pulse पद बंद हो सके (अर्यात जिसका rise line and tall tine) बहुत कम हो। विद्युत प्रतिरोध (Electrical Resistance) और Equivalent sirces resistance (ESR) भी EM Gun की दक्षता सीमित करते है।

प्रौद्योगिकी के लाभ

(1) उडान समय में कटौती (Less thight tine)
(2) प्रक्षेप्य की लंबी पहुच क्षमता (Greater Ranges)
(3) गोला–बारूद्ध/विस्फोटक पदार्थ न प्रयोग होने के कारण कम खतरे हैं।
(4) जलावन पद्धार्थ का प्रयोग न होने के कारण कोई IR Srgnature उत्पन्न नहीं होता जिसे शत्रु सेना ढूंढ पाये।
(5) इससे उच्च गति पर firing की जा सकती है।

इस तकनीक का उपयोग आने वाले समय में भारतीय थल सेना एव नौसेना में बहुत अच्छे से हो सकता है। उदाहरण के तौर पर अमेरिकी अजेंसी DARPA द्वारा संचालित कार्यक्रम EMTMP यह दर्शाता है कि अगर प्रक्षेप्य गति एवं बिजली आपूर्ति जैसी चुनौतियों का पर्याप्त रूप से ध्यान रखा जाए तो EM Gun सैनिक शक्ति में परिवर्तित हो सकती है। यह बंदूक अपेक्षाकृत शांत बैठे हुए, बिना धुआँ निकाले, विरोधी का अपनी दिशा–दशा बिना बताए काम कर सकती है। परन्तु अब केवल चुनौती है त्तकाल निधि–विनेष की, विशाल EM Gun विकसित करने की जो प्रक्षेप्य को बड़े वेग से गतिज ऊर्जा के साथ फेंक सकें।

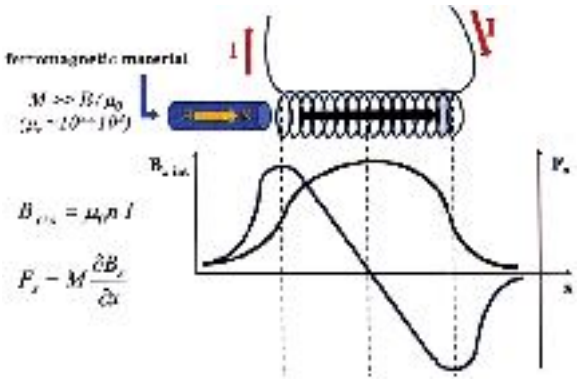

लेखकों के बारे में...

श्री सुरेश कुमार जिन्दल, वर्तमान में रक्षा वैज्ञानिक सूचना तथा प्रलेखन केन्द्र (डेसीडॉक), दिल्ली के निदेशक के रूप में कार्य कर रहे हैं। आपने थापर अभियांत्रिकी तथा प्रौद्योगिकी संस्थान, पटियाला, पंजाब से इलैक्ट्रॉनिक्स तथा संचार विषय में अभियांत्रिकी स्नातक उपाधि प्राप्त की। आपने भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान (आई आई टी), खड़गपुर से दूरसंचार विषय में प्रौद्योगिकी स्नातकोत्तर उपाधि प्राप्त की। आपको ऑपरेशन रिसर्च में प्रबंधन स्नातकोत्तर उपाधि भी प्राप्त है। आप सामरिक संचार के क्षेत्र में उत्कृष्ट विशेषज्ञता रखते हैं। आपने राष्ट्र हेतु स्वदेशी प्रौद्योगिकियों के विकास में विशेषतः संचार नेटवर्कों के अभिकल्पन तथा स्थापन में विशिष्ट योगदान दिया है। आपने राष्ट्र में प्रथम बार सुवाह्य संचार की नींव रखी। आपने नारद परियोजना के अंतर्गत रक्षा सेवाओं हेतु उपग्रह संचार तथा नेटवर्किंग के अभिकल्पन, विकास तथा स्थापन में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया। इस संचार प्रणाली का उपयोग श्रीलंका में भारतीय शांति सेना तथा भारतीय सेना के मध्य संचार हेतु किया गया। यह उस समय भारतीय सैन्य मुख्यालय तथा भारतीय शांति सेना के मध्य एकमात्र संचार की व्यवस्था थी। आपने कॉम्बैट नैट रेडियो (सी एन आर) के परियोजना निदेशक के रूप में भारत इलैक्ट्रॉनिक्स लिमिटेड को यह प्रौद्योगिक हस्तांतरित की।

आपने राष्ट्रीय महत्त्व के विभिन्न कार्यक्रमों, जिनमें एकीकृत प्रक्षेपास्त्र विकास कार्यक्रम भी शामिल है, के लिए सामरिक संचार आवश्यकताओं की पूर्ति में योगदान दिया। सामरिक संचार के परियोजना निदेशक के रूप में आपने 24X7X365 रूप में कार्य करने के लिए निर्मित विभिन्न संचार नेटवर्कों तथा प्रणालियों का अभिकल्पन, विकास तथा स्थापन राष्ट्र के विभिन्न स्थानों पर किया।

आपने 14 सम्पादित पुस्तकें प्रकाशित की हैं। आपको अनेक पुरस्कार प्राप्त हैं, इनमें 2007 में प्रधानमंत्री द्वारा सामरिक योगदान हेतु विशेष सम्मान, 2012 में संचार तथा सूचना प्रौद्योगिकी मंत्री द्वारा वेब रत्न सम्मान, तथा 2013 में राष्ट्र भाषा स्वाभिमान न्यास द्वारा राजभाषा रत्न सम्मान शामिल हैं। आपका नाम लिम्का बुक ऑफ रिकार्ड में सबसे बड़ा हिन्दी विज्ञान सम्मेलन आयोजित करने के लिए विश्व रिकार्ड की श्रेणी में दर्ज है। आपको वर्ष 2014 में लोकप्रिय विज्ञान संचार पुरस्कार प्रदान किया गया है। आपकी तीन पुस्तकें भी प्रकाशित हो चुकी हैं।

श्री फूलदीप कुमार, वर्तमान में रक्षा वैज्ञानिक सूचना तथा प्रलेखन केन्द्र (डेसीडॉक), दिल्ली में वैज्ञानिक के रूप में कार्य कर रहे हैं। आपने महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक, हरियाणा से 2002 में इलैक्ट्रॉनिक्स तथा संचार विषय में अभियांत्रिकी स्नातक उपाधि प्राप्त की। आपने 2005 में गुरू जम्भेशवर विश्वविद्यालय, हिसार, हरियाणा से पत्रकारिता एवं जनसंचार में स्नातकोत्तर उपाधि प्राप्त की। आप वर्ष 2005 से डी आर डी ओ में कार्यरत हैं। विज्ञान संचार, प्रलेखन तथा डिजिटल प्रकाशन आपकी विशेषज्ञता के क्षेत्र हैं। आप डी आर डी ओ समाचार (मासिक) तथा प्रौद्योगिकी विशेष (त्रैमासिक) प्रकाशनों के सम्पादक हैं। आपने राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में लगभग 60 शोध पत्र/आलेख प्रस्तुत किए हैं। आपने 18 सम्पादित पुस्तकें प्रकाशित की हैं। आप चार राष्ट्रीय सम्मेलनों तथा दो अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों के आयोजन में सम्मिलत रहे हैं। आपको 2009 में शिक्षक विकास परिषद, गोवा द्वारा विज्ञान संचारक सम्मान, वर्ष 2011 एवं 2013 में प्रौद्योगिकी समूह पुरस्कार, वर्ष 2012 में वर्ष का वैज्ञानिक पुरस्कार, वर्ष 2013 में ईशीर, जोधपुर द्वारा विज्ञान श्री सम्मान, तथा वर्ष 2014 में लोकप्रिय विज्ञान संचार पुरस्कार प्रदान किया गया। आपका नाम लिम्का बुक ऑफ रिकार्ड में सबसे बड़ा हिन्दी विज्ञान सम्मेलन आयोजित करने के लिए विश्व रिकार्ड की श्रेणी में दर्ज है। आपकी तीन पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं।